हृदयोदय

मनोज पाण्डेय

प्रकाशकः

ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान

ब्रह्मपुरा मिर्जापुर उत्तर प्रदेश

भारत

वितरकः

ज्ञान विज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान

वैदिक विश्वविद्यालय

ब्रह्मपुरा

© मनोज पाण्डेय

प्रथम संसकरण

इलेक्ट्रानिक 2018

मुल्यः - 75.00

सम्पर्क सुत्रः-

0 9467557954

Email manojpandey94@yahoo lcom

Email gyanviegyanbrhamgyan98@gmail lcom

विषय सुचि

प्रस्तावना

भुमिका

1 वैदिक महापुरुष नल

2 वैदिक महापुरुष राजा हरिश्चन्द्र

3 वैदिक महापुरुष मर्यादा पुरुषोत्म श्रीराम

4 वैदिक महापुरुष योगेश्वर कृष्ण

5 वैदिक इतिहास रामयण परिचय

6 वैदिक इतिहास महाभारत परिचय

7 वैदिक ऋषि व्यास

8 वैदिक ऋषि पुलुस्त

9 वैदिक ऋषि अगस्त

10 वैदिक ऋषि अंगिऋषि

11 वैदिक महापुरुष मनु

12 वैदिक वैज्ञानिक ऋषि विश्वामित्र

13 राज कुमार और उसके बलीदान कि कहानी

14 ब्रह्मचर्य महिमा

15 पंचतन्त्र कि कहानी

16 पुरुषार्थ और विद्या

17 पंचतन्त्र मित्रलाभ

18 श्रेष्ठ मनुष्य कौन

19 कहानी क्षुद्रवुद्धि कि

20 दयालु हृदय

21 कन्फ्युशियस के शिष्य

22 तीन भिक्षु

23 कहानी माधो चमार कि

24 परमार्थ कि सुक्ष्म यात्रा

25 अनुभूतियों का अगम्य सागर

प्रस्तावना

आज के आधुनिक समय में जब कम्प्युटर, मोबाइल और इन्टरनेट कि महत्त्वकांक्षा अत्यधिक बढ़ चुकी है, लोगों का इसके बिना आज आधुनिक युग में के जीना असंभव-सा प्रतित हो रहा है। एक प्रकार से आज लोगों का जीवन काफी हद तक इन संसाधनों पर निर्भर-सा हो गया है और हर व्यक्ति अपने ज़रूरत कि सभी जानकारियों के लिये व्यापार के लिये या किसी प्रकार कि ज्ञान कि जिज्ञासा को शान्त करने के लिये भी इस मोबाईल, कम्प्युट का भरपुर सहयोग ले रहा है और इसका हर एक क्षेत्र में प्रयोग है रहा है धड़ल्ले से, एक तरफ इसकी व्यापकता के साथ अत्यधिक विस्तार हो रहा है। जिसके कारण सभी प्रकार कि भौतिक दूरिया कम हो रही है, मनुष्य ने पृथ्वी के सिमा को पार करके अपने पैर अंतरिक्ष और सूदूर दूसरें मंगल, चादादि ग्रहों पर अपने पैर जमाने के लिये भर सक प्रयास रत है और इसके विपरित इसके कारण होने वाले विकार से हमारे समाज को बहुत बड़ा नुकसान उठाना पड़ रहा है। जैसा कि हम सब जानते है कि किसी भी वैज्ञानिक खोज का शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के परिणाम भी आते है जिनसे बचने का उपाय भी तलासना पड़ता है, जिस प्रकार से सूर्य कि गर्मी पृथ्वी के सभी प्राणियों को ना मिले तो उनाक जीवन यहाँ पर रहना संभव नहीं है और यदि अधिक गर्मि सूर्य से मिलने लगे तो भी जीना बहुत कठिन है। दोनों स्थित में सबसे अधिक खतरा जीवन को ही उठाना पड़ेगा। सूर्य को इससे कोई नुकसान नहीं है, जिस प्रकार से चाकु तरवुज पर गिरे या तरवुज चाकु पर गिरे नुकसाना या कटना तो तरवुज को ही है। चाकु का नुकसान नहीं होगा। इसी प्रकार से इन सभी आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों का मानव जीवन में अत्यधिक समावेश होने का कारण और जब इनका कोई सिमित दायरा नहीं है। और यह जब संतुलन के अस्तर से अधिक हो कर मानव को अपने जालिम पंजों में फंसा लेती है। तो उसके दुस्परिणाम भी सामने आने लगते है। जैसे समाज में भयंकर हिंशा उपद्रव, मानशिक अशान्ति और प्रत्येक प्रकार के आन्तरिक सद्गुणों का लोप हो रहा है। लोगों के अन्दर के जगत के परम आनन्द से अत्यधिक दूर निरंतर होते जा रहे है। जिसके कारण ही समाज में अत्यधिक अज्ञान का प्रचार प्रसार बढ़ रहा है। आधुनिकता के नाम पर लोग पशुओं के समान जीवन जीने के लिये निरंतर अग्रसर किया जा रहा है। लोगों का झुकाव दिन प्रतिदिन चारित्रिक पतन कि तरफ बढ़ रहा है। जीवन में सदाचार भक्ति भावना सद्गुणों का आभाव होता जारहा है। सारे रिस्ते, नाते, सम्बंध प्रेम भाव का आभाव और सम्बंध टुट कर एकांगी जीवन में परिवर्तित होते जा जारहे है। लोगों कि गोपनियता समाप्त हो रही है, लोगों में भरोशा विश्वास के भावों का आभाव तिब्रता से हो रहा है। लोग इनके अस्थान पर नशें का शिकार और अनेक प्ररकार कि उच्छृखलता और स्वछन्दता को अपना आधार बना रहें है। जिसके के कारण सब कुछ जीवन का जो मुख्य आधार है। वह सब विखर रहा है। प्रेम, करुणा, दया, स्नेह, सहानुभुति, आस्था दैविय शक्तियों के प्रति अविश्वास जिसके कारण अस्थान-अस्थान पर निरंतर वैमनस्यता का ही विस्तार हो रहा है। यह सब एक प्रकार कि ऐसी असाध्य विमारियाँ है जिसका इलाज आज के आधुनिक विज्ञान और उसके द्वारा उतपन्न संसाधनों के द्वारा संभव नहीं प्रतित हो रहा है। इन सब का समाधान हमारें पुरुषों ने बहुत पहले ही हम सब को सुझाया है, जैसा कि हमारी संस्कृति के मुख्य आधार भुत स्तम्भ वेद, वेदांङ्ग, उपनिषद, दर्शन, रामायण, महाभारत, पुराणादि जो हमारी मानविय संवदनावों को समझने वालों ने, मानव जाती के कल्याण के लिये कठिन तपस्या और साधना से ज्ञान अज्ञान में अन्तर करने के लिये निश्चित किया है। और हम सब लोगों के जीवन को सुन्दर, सुरम्य और आनन्दपूर्ण बनाने के लिये ही, इन नैतिक विचार और नैतिक सद्गुणों के उद्भव विस्तार से ही किसी भी प्राणि का कल्याण संभव है। उसके प्रति लोगों का ध्यान आकर्सित हो और लोगों के जीवन में सूमधुरता आयें। इस प्रयोजन के लिये यह सारे मार्ग हमारे महापुरुषों नें हमें सुझाये है। आज ज़रूरत आगई है कि हम सब उनके सुझाये मार्ग का अनुसरण करें और उसको हृदयंगम करके जीवन को सउन्नत करे, और हर प्रकार उत्थान के लिये अग्रसर हो और अपने जीवन कि उन समस्या का समाधान प्राप्त करें जिनका समाधान विज्ञान के पास नहीं है।

मनोज पाण्डेय,

महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर हरयाण, भारत

भूमिका

भारत बहुत प्राचीन एवं विविधताओं से भरा देश है। भारत में हर धर्म के लोग निवास करते है यहाँ बहुधर्मी लोगो की कमी नहीं है। इसलिए भारत सबसे प्राचीन और महान देश है। लेकिन क्या आप जानते है? आज हम जिस भारत को देखते हैं अतीत में भारत ऐसा नहीं था। भारत बहुत विशाल देश हुआ करता था। ईरान से लेकर इंडोनेशिया तक सारा भारत ही था, लेकिन समय के साथ-साथ भारत के टुकड़े होते चले गये जिससे भारत की संस्कृति का अलग-अलग जगहों में बटवारां हो गया। आज हम आपको उन देशों को नाम बतायेंगे जो कभी भारत का हिस्सा हुआ करते थे।

बता दें सांस्कृतिक दृष्टि से प्राचीन भारत की सीमाएं विश्व में दूर-दूर तक फैली हुई थीं। भारत ने राजनीतिक आक्रमण तो कहीं नहीं किए परंतु सांस्कृतिक दिग्विजय अभियान के लिए भारतीय मनीषी विश्वभर में गए। शायद इसीलिए भारतीय संस्कृति और सभ्यता के चिन्ह विश्व के अधिकतर देशों में मिलते हैं। आज हम आपको बता रहे हैं कि हमारा प्राचीन सांस्कृतिक भारत कहां तक था।

1. ईरान – ईरान में आर्य संस्कृति का उद्भव 2000 ई. पू. उस वक्त हुआ जब ब्लूचिस्तान के मार्ग से आर्य ईरान पहुंचे और अपनी सभ्यता व संस्कृति का प्रचार वहां किया। उन्हीं के नाम पर इस देश का नाम आर्याना पड़ा। 644 ई. में अरबों ने ईरान पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। 2. कम्बोडिया – माना जाता है कि प्रथम शताब्दी में कौंडिन्य नामक एक ब्राह्मण ने हिन्द-चीन में हिन्दू राज्य की स्थापना की। इन्हीं के नाम पर कम्बोडिया देश हुआ। हिन्द-चीन ने मिलकर यहां खमेर साम्राज्य की स्थापना की थी। यह भी माना जाता है कि भारतीय राज्य कम्बोज के उपनिवेश के रूप में कम्बोडिया की स्थापना हुई थी। कम्बोडिया को पहले कंपूचिया और उससे पहले कम्बोज के नाम से जाना जाता था, यह दक्षिण-पूर्व एशिया का एक प्रमुख देश है। पहले यह हिन्दू राष्ट्र था, अब बौद्ध राष्ट्र है। लगभग 600 वर्षों तक फूनान ने इस प्रदेश में हिन्दू संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार करने में महत्वपूर्ण योग दिया, तत्पश्चात इस क्षेत्र में कम्बुज या कम्बोज का महान राज्य स्थापित हुआ। 3. वियतनाम – वियतनाम का पुराना नाम चम्पा था। दूसरी शताब्दी में स्थापित चम्पा भारतीय संस्कृति का प्रमुख केंद्र था। यहां के चम लोगों ने भारतीय धर्म, भाषा, सभ्यता ग्रहण की थी। 1825 में चम्पा के महान हिन्दू राज्य का अन्त हुआ। 4. मलेशिया – प्रथम शताब्दी में साहसी भारतीयों ने मलेशिया पहुंचकर वहां के निवासियों को भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित करवाया। कालान्तर में मलेशिया में शैव, वैष्णव तथा बौद्ध धर्म का प्रचलन हो गया। 1948 में अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हो यह सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य बना। 5. इण्डोनेशिया – इण्डोनिशिया भी किसी समय में भारत का एक सम्पन्न राज्य था। आज इण्डोनेशिया में बाली द्वीप को छोड़कर शेष सभी द्वीपों पर मुसलमान बहुसंख्यक हैं। फिर भी यहाँ के लोग हिन्दू धर्म एवं हिन्दू देवी-देवताओं से से जुड़े हुए है एवं हिन्दू संस्कृति का निर्वहन कर रहे है। इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता जाने वाले यात्रियों के लिए उत्तर-पश्चिम तट पर स्थित शहर के बीचोंबीच भव्य निर्मित अनेक घोड़ों से खिंचने वाले रथ पर श्री कृष्ण-अर्जुन की प्रतिमा सर्वाधिक आकर्षित करने वाली है। इस शहर में जगह-जगह आपको हिंदू स्थपत्य कला का दर्शन होता रहेगा। वहीं इंडोनेशिया में पांच बड़े-बड़े हिंदू मंदिर भी हैं। भारत के भगवान राम और अन्य कई देवताओं की मूर्तियां या मंदिर आपको सहज ही मिल जाएंगे जो की इंडोनेशिया को भारत की संस्कृति से कहीं न कहीं जोडने का कार्य करते हैं। 7. फिलीपींस – फिलीपींस में किसी समय भारतीय संस्कृति का पूर्ण प्रभाव था पर 15 वीं शताब्दी में मुसलमानों ने आक्रमण कर वहां आधिपत्य जमा लिया। आज भी फिलीपींस में कुछ हिन्दू रीति-रिवाज प्रचलित हैं। 8. अफगानिस्तान – अफगानिस्तान 350 इ.पू. तक भारत का एक अंग था। सातवीं शताब्दी में इस्लाम के आगमन के बाद अफगानिस्तान धीरे-धीरे राजनीतिक और बाद में सांस्कृतिक रूप से भारत से अलग हो गया। 9. नेपाल – नेपाल विश्व का एक मात्र हिन्दू देश है, जिसका एकीकरण गोरखा राजा ने 1769 ई. में किया था। पूर्व में यह प्राय: भारतीय राज्यों का ही अंग रहा।

10. भूटान – प्राचीन काल में भूटान भद्र देश के नाम से जाना जाता था। 8 अगस्त 1949 में भारत-भूटान संधि हुई जिससे स्वतंत्र प्रभुता सम्पन्न भूटान की पहचान बनी। 11. तिब्बत – तिब्बत का उल्लेख हमारे ग्रन्थों में त्रिविष्टप के नाम से आता है। यहां बौद्ध धर्म का प्रचार चौथी शताब्दी में शुरू हुआ। तिब्बत प्राचीन भारत के सांस्कृतिक प्रभाव क्षेत्र में था। भारतीय कांग्रेसी नेताओं

की अदूरदर्शिता के कारण चीन ने 1957 में तिब्बत पर कब्जा कर लिया। 12. श्रीलंका – श्रीलंका का प्राचीन नाम ताम्रपर्णी था। श्रीलंका भारत का प्रमुख अंग था। 1505 में पुर्तगाली, 1606 में डच और 1795 में अंग्रेजों ने लंका पर अधिकार किया। 1935 ई. में अंग्रेजों ने लंका को भारत से अलग कर दिया। 13. म्यांमार (बर्मा) – अराकान की अनुश्रुतियों के अनुसार यहां का प्रथम राजा वाराणसी का एक राजकुमार था। 1852 में अंग्रेजों का बर्मा पर अधिकार हो गया। 1937 में भारत से इसे अलग कर दिया गया। 14. पाकिस्तान – 15 अगस्त, 1947 के पहले पाकिस्तान भारत का एक अंग था। हालांकि बटवारे के बाद पाकिस्तान में बहुत से हिन्दू मंदिर तोड़ दिये गये हैं, जो बचे भी हैं उनकी हालत बहुत ही जर्जर है। बांग्लादेश – बांग्लादेश भी 15 अगस्त 1947 के पहले भारत का अंग था। देश विभाजन के बाद पूर्वी पाकिस्तान के रूप में यह भारत से अलग हो गया। 1971 में यह पाकिस्तान से भी अलग हो गया। इसके अलावा भारतीय संस्कृति चीन, जापान, मंगोलिया, लाओस, हॉन्गकॉन्ग, ताइवान, मकाउ, सिंगापुर, दक्षिण कोरिया एवं उत्तर कोरिया सहित विश्व के अनेकों देशों में फैली हुई थी। बौद्ध धर्म विश्व का दूसरा सबसे बड़ा धर्म है और इस धर्म का जन्म ई.पू. छठी शताब्दी में भारत में हुआ था।

''विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रंधया शासद व्रतान्।'' यह ऋग्वेद का मंत्र 1/51/8 है तथा 'उत शूद्र उतार्ये।' यह अथर्ववेद का प्रमाण है। कि आर्य नाम धार्मिक, विद्वान, आप्त पुरुषों का और इन से विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकु, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ी है। जब वेद ऐसे कहता है, तो दूसरे विदेशियों के कपोलकल्पित को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते। और देवासुर संग्राम में आर्यावर्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ आदि, हिमालय पहाड़ में आर्य और दस्यु-मलेच्छ-असुरों का जो युद्ध हुआ था, उसमें देव अर्थात् आर्यों की रक्षा और असुरों के पराजय करने को सहायक हुए थे। (अर्जुन व दशरथ के काल अलग अलग होने से यह भी सम्भावना लगती है कि यह देवासुर संग्राम अनेक बार हुआ)। इससे यही सिद्ध होता है कि आर्यावर्त्त के बाहर चारों ओर जो हिमालय के पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, देश में मनुष्य रहते हैं, उन्हीं का नाम असुर सिद्ध होता है। क्योंकि जब जब हिमालय प्रदेशस्थ आर्यों पर (विदेशी दस्यु व असुर) लड़ने को चढ़ाई करते थे, तब तब यहां के राजा-महाराजा लोग उन्हीं उत्तर आदि देशों में आर्यों के सहायक होते। और जो श्री रामचन्द्र जी से दक्षिण में युद्ध हुआ है, उसका नाम देवासुर संग्राम नहीं है, किन्तु उस को राम-रावण अथवा आर्य और राक्षसों का संग्राम कहते हैं। किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा है कि आर्य लोग ईरान से आये और वहां के जंगलियों को लड़कर, विजय पा के, निकाल के, इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का (पक्षपात से पूर्ण) लेख माननीय कैसे हो सकता है? (अर्थात् नहीं हो सकता)। महर्षि दयानन्द ने अपने वचनों में सृष्टि की आदि में मनुष्य की उत्पत्ति के स्थान को तिब्बत बताया है। अन्य प्राचीन प्रमाणों से भी यही स्थान सिद्ध होता है। इसके लिए विख्यात विद्वान स्वामी विद्यानन्द सरस्वती जी की पुस्तक 'आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता' पठनीय है। महर्षि दयानन्द जी ने अंग्रेजों की इस मिथ्या मान्यता का भी सप्रमाण प्रतिवाद कर दिया है कि आर्य इस आर्यावर्त्त के मूल निवासी नहीं हैं। उनके अनुसार आर्य किसी अन्य देश में आकर यहां आर्यावर्त्त भारत में नहीं बसे अपितु सृष्टि की आदि में, जब पूरा भूलोक व पृथिवी खाली पड़ी थी, तिब्बत से सीधे यहां आकर बसे व इसको उन्होंने ही बसाया था। अंग्रेजों ने जो आर्यों के ईरान व अन्य किसी देश से आने की मान्यता प्रचलित थी, उसके पीछे उनका निजी स्वार्थ था। वह यह प्रचारित करना चाहते थे कि जिस प्रकार हम विदेशी हैं उसी प्रकार से वर्ण व आश्रम धर्म-व्यवस्था को मानने वाले आर्य भी हैं। महर्षि दयानन्द का अंग्रेजों की इस स्वार्थपूर्ण मान्यता का सप्रमाण खण्डन उनकी ऐतिहासिक तथ्यों पर सूक्ष्म तथ्यात्मक दृष्टि व दूरदर्शिता सहित देशहितैषी होने का प्रमाण है। हम आशा करते हैं कि लेख के पाठक महर्षि दयानन्द के दोनों ही निष्कर्षों से सहमत होंगे। आवश्यकता इस बात की है कि महर्षि दयानन्द की मान्यता का डिन्डिम घोष से प्रचार व प्रसार हो और भारत सरकार इस तथ्यात्मक मान्यता को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल कर न्याय करे। भारत ही सर्वप्रथम एक ऐसा देश था जो इस सम्पूर्ण भुमंडल पर अधिकार करता था। इसके अन्दर अज्ञान का विस्तार होने के कारण ही सिकुड़ते सिकुड़ते भारत आज कि स्थिती को प्राप्त हुआ है। इन सब को एक करने का कारण भारतिय सांस्कृतिक सभ्यता और प्राचिन वैदिक संस्कृत परंपरा थी। जिसके पतन के कारण ही भारत का पतन भी हो गया, इससे अभी और खतरा बढ़ गया है क्योंक हमने स्वयं को स्वयं की जड़ से अलग कर रखा है। हमें अपनी जड़ों से जुणने के लिये पुनः हम सब को अपने प्राचिनतम ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान के प्रमुख श्रोतों से जुणना होग। जिसके लिये हि यह एक बहुत क्षुद्र प्रयास है, जैसा कि अंधकार से आच्छदित कंदरा में व्याप्त घोर अंधकार को दूर करने के लिये सूर्य भी जहां कमजोर सिद्ध हो रहा है वहां दिपक समर्थ हो सकता है। ऐसी कामना के साथ आप सुधि जनों को यह संकलन भारतिय प्राचिन कहानियों का संकलन प्रस्तुत किया जा रहा है।

13. 02.2018

मनोज पाण्डेय

1 - वैदिक महापुरुष

1 नल दमयन्ती की सुक्ष्म कथा

निषध देश में वीरसेन के पुत्र नल नाम के एक राजा थे। बहुत सुन्दर और गुणवान थे। वे सभी तरह की अस्त्र विद्या में भी बहुत निपुण थे। उन्हें जूआ खेलने का भी थोड़ा शौक था। उन्हीं दिनों विदभग् देश में भीमक नाम के एक राजा राज्य करते थे। वे भी नल के समान ही सर्वगुण सम्पन्न थे। उन्होंने दमन ऋषि को प्रसन्न करके उनके वरदान से चार संतान प्राप्त की थी-तीन पुत्र और एक कन्या। पुत्रों के नाम थे दम, दान्त व दमन पुत्री का नाम था दमयन्ती। दमयन्ती लक्ष्मी के समान रूपवन्ती थी। बड़ी-बड़ी आंखे थी। उस समय देवताओं और यक्षों में कोई भी कन्या इतनी रूपवती नहीं थी।

उन दिनों कितने ही लोग उस देश में आते और राजा नल से दमयन्ती के गुणों का बखान करते। एक दिन राजा नल ने अपने महल के उद्यान में कुछ हंसों को देखा। उन्होंने एक हंसे को पकड़ लिया। हंस ने कहा आप मुझे छोड़ दीजिए तो हम लोग दमयन्ती के पास जाकर आपके गुणों का ऐसा वर्णन करेंगे कि वह आपको ज़रूर वर लेगी। वे सब हंस उड़कर राजकुमारी दमयन्ती के पास गए। दमयन्ती उन्हें देखकर बहुत खुश हुई। हंसों को पकडने के लिए दौडने लगी। दमयन्ती जिस हंस को पकड़कर दौड़ती। वही हंस बोल उठता-रानी दमयन्ती निषध देश का एक नल नाम का राजा है। वह राजा बहुत सुन्दर है। मनुष्यों में उसके समान सुंदर और कोई नहीं है। वह मानो साक्षात कामदेव का स्वरूप है। यदि तुम उसकी पत्नी बन जाओ तो तुम्हारा जन्म और रूप दोनों सफल हो जाए। वह अश्विनी कुमार के समान सुन्दर है। मनुष्यों में उसके समान सुंदर और कोई नहीं है। जैसे तुम स्त्रियों में रत्न हो, वैसे ही नल पुरुषों को भूषण है। तुम दोनों की जोड़ी बहुत सुंदर है। दमयन्ती ने कहा-हंस तुम नल से भी ऐसी ही बात कहना। हंस ने लौटकर राजा नल को उनका संदेश दिया। दमयन्ती हंस के मुंह से राजा नल की कीर्ति सुनकर उनसे प्रेम करने लगी। उसकी आसक्ति इतनी बढ़ गई कि वह रात दिन उनका ही ध्यान करती रहती। शरीर धूमिल और दुबला हो गया। वे कमजोर-सी दिखने लगी। सहेलियों ने दमयन्ती के मन के भाव जानकर राजा से निवेदन किया कि आपकी पुत्री अस्वस्थ्य हो गई हैं। राजा ने बहुत विचार किया और अंत में इस निर्णय पर पहुंचा कि मेरी पुत्री विवाह योग्य हो गई है। दमयन्ती के पिता ने सभी देशों के राजा को स्वयंवर के लिए निमंत्रण पत्र भेज दिया और सूचित कर दिया। सभी देश के राजा हाथी व घोड़ों के रथों से वहाँ पहुंचने लगे। नारद और पर्वत से सभी देवताओं को भी दमयन्ती के स्वयंवर का समाचार मिल गया। इन्द्र और सभी लोकपाल भी अपने वाहनों सहित रवाना हुए। राजा नल को भी संदेश मिला तो वे भी दमयन्ती से स्वयंवर के लिए वहाँ पहुंचे। नल के रूप को देखकर इंद्र ने रास्ते में अपने विमान को खड़ा कर दिया और नीचे उतरकर कहा कि राजा नल आप बहुत सत्यव्रती हैं।

आप हम लोगों के दूत बन जाइए। नल ने प्रतिज्ञा कर ली और कहा कि करूंगा। फिर पूछा कि आप कौन है? तो इन्द्र ने कहा हम लोग देवता है। हम लोग दमयन्ती के लिए यहाँ आएँ हैं। आप हमारे दूत बनकर दमयन्ती के पास जाइए और कहिए कि इन्द्र, वरुण, अग्नि और यम देवता तुम्हारे पास आकर तुमसे विवाह करना चाहते हैं। इनमें से तुम चाहो उस देवता को अपना पति स्वीकार कर लो।

नल ने दोनों हाथ जोड़कर कहा कि देवराज वहाँ आप लोगों का और मेरे जाने का एक ही प्रायोजन है। इसलिए आप मुझे वहाँ दूत बनाकर भेजे यह उचित नहीं है। जिसकी किसी स्त्री को पत्नी के रूप में पाने की इच्छा हो चुकी हो वह भला उसको कैसे छोड़ सकता है? और उसके पास जाकर ऐसी बात कह ही कैसे सकता है? आप लोग कृपया इस विषय में मुझे क्षमा कीजिए। देवताओं ने कहा नल तुम पहले हम लोगों से प्रतिज्ञा कर चुके हो कि मैं तुम्हारा काम करूंगा। अब प्रतिज्ञा मत तोड़ो। अविलम्ब वहाँ चले जाओ। नल ने कहा-राजमहल में निरंतर कड़ा पहरा रहता है मैं कैसे जा सकुंगा? और राजकुमारी ने कह दी अपने दिल की बात इन्द्र की आज्ञा से नल ने राजमहल में

बिना रोक टोक के प्रवेश किया। दमयन्ती और उसकी सहेलियाँ भी उसे देखकर मुग्ध हो गयी और लज्जित होकर कुछ बोल न सकी। तुम देखने में बड़े सुंदर और निर्दोष जान पड़ते हो। पहले यहाँ आते समय द्वारपालों ने तुम्हे देखा क्यों नहीं? उनसे तनिक भी चूक हो जाने पर मेरे पिता बहुत कड़ा दण्ड देते हैं। नल ने कहा-मैं नल हूं। लोकपालों का दूत बनकर तुम्हारे पास आया हूं।

सुन्दरी ये देवता तुम्हारे साथ विवाह करना चाहते हैं। तुम इनमें से किसी एक देवता के साथ विवाह कर लो। यही संदेश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूं। उन देवताओं के प्रभाव से जब मैंने तुम्हारे महल में प्रवेश किया तो मुझे कोई देख नहीं पाया। मैंने तुमसे देवताओं का संदेश कह दिया है अब जो कहना है कह दो। अब तुम्हारी जो इच्छा हो करो। दमयन्ती ने बड़ी श्रद्धा के साथ देवताओं को प्रणाम करके मन्द मुस्कान के साथ कहा स्वामी मैं तो आपको ही अपना सर्वस्व मानकर अपने आप को आपके चरणों में सौंपना चाहती हूं। जिस दिन से मैंने हंसों की बात सुनी तभी से मैं आपके लिए व्याकुल हूं। आपके लिए ही मैंने राजाओं की भीड़ इकट्ठी की है। यदि आप मुझ दासी की प्रार्थना अस्वीकार कर देंगे तो मैं जहर खाकर मर जाऊंगी।

दमयन्ती की खुशी का ठिकाना ना रहा जब राजा नल ने दमयन्ती से कहा-जब बड़े-बड़े लोकपाल तुमसे शादी करना चाहते हैं फिर तुम मुझ मनुष्य से क्यों शादी करना चाहती हो? मैं तो उन देवताओं के चरणों की धूल के बराबर भी नहीं हूं। तुम अपना मन उन्हीं में लगाओ। देवताओं का अप्रिय करने पर इंसान की मृत्यु हो सकती है। तुम मेरी रक्षा करो और उनको वरण कर लो। नल की बात सुनकर दमयन्ती घबरा गई। उसकी आंखों में आंसु छलक आए। उस समय दमयन्ती का शरीर कांप रहा था हाथ जुड़े हुए थे। उसने कहा मैं आपको वचन देती हूँ कि मैं आपको ही पति के रूप में वरण करूंगी।

राजा नल ने कहा-अच्छा तब तो तुम ऐसा ही करो परंतु यह बतलाओ कि मैं यहाँ उनका दूत बनकर आया हूं। अगर इस समय मैं अपने स्वार्थ की बात करने लगूं तो यह कितनी बुरी बात है। मैं तो अपना स्वार्थ तभी बना सकता हूँ जब वह धर्म के विरूद्ध ना हो। तब दमयन्ती ने गदगद कण्ठ से कहा राजा इसके लिए एक निर्दोष उपाय है। उसके अनुसार काम करने पर आपको दोष नहीं लगेगा। वह यह उपाय है कि आप सभी लोकपालों के साथ स्वयंवर मंडप में आए। मैं आपको वर लुंगी। तब आपको दोष भी नहीं लगेगा। देवताओं के पूछने पर उन्होंने कहा मैं दमयन्ती के पास गया तो मुझे देखकर वे और उनकी सखियाँ सभी मुझ पर मोहित हो गई और आप लोगों के प्रस्ताव को उनके सामने रखने के बाद भी वे मुझे ही वरण करने पर तुली हैं।

दमयन्ती ने कैसे पहचाना असली राजा नल को? स्वयंवर की घड़ी आई। राजा भीमक ने सभी को बुलवाया। शुभ मुहूर्त में स्वयंवर रखा। सब राजा अपने-अपने निवास स्थान से आकर स्वयंवर में यथास्थान बैठ गए। तभी दमयन्ती वहाँ आई। सभी राजाओं का परिचय दिया जाने लगा। दमयन्ती एक-एक को देखकर आगे बढऩे दिया जाने लगा। आगे एक ही स्थान पर नल के समान ही वेषभुषा वाले पांच राजकुमार खड़े दिखाई दिए। यह देखकर दमयन्ती को संदेह हो गया, वह जिसकी और देखती उन्हें सिर्फ़ राजा नल ही दिखाई देते। इसलिए विचार करने लगी कि मैं देवताओं को कैसे पहचानूं और ये राजा है यह कैसे जानूं? उसे बड़ा दुख हुआ। अन्त में दमयन्ती ने यही निश्चय किया कि देवताओं की शरण में जाना ही उचित है। हाथ जोड़कर प्रणामपूर्वक स्तुति करने लगी। देवताओं हंसों के मुंह से नल का वर्णन सुनकर मैंने उन्हें पतिरूपण से वरण कर लिया है।

मैंने नल की आराधना के लिए ही यह व्रत शुरू कर लिया है। आप लोग अपना रूप प्रकट कर दें, जिससे में राजा नल को पहचान लूं। देवताओं ने दमयन्ती की बात सुनकर उसके दृढ़-निश्चय को देखकर उन्होंने उसे ऐसी शक्ति दी जिससे वह देवता और मनुष्य में अंतर कर सके। दमयन्ती ने देखा कि शरीर पर पसीना नहीं है। पलके गिरती नहीं हैं। माला कुम्हलाई नहीं है। शरीर स्थिर है। शरीर पर धूल व पसीना भी नहीं है। दमयन्ती ने इन लक्षणों को देखकर ही दमयन्ती ने राजा नल को पहचान लिया।

और कलयुग नल के शरीर में प्रवेश कर गया

जिस समय दमयंती के स्वयंवर से लौटकर इन्द्र व अन्य लोकपाल अपने-अपने लोकों को जा रहे थे। उस समय उनकी मार्ग में ही कलयुग और द्वापर से भेंट हो गई। इन्द्र ने पूछा कलयुग कहा जा रहे हो? कलियुग ने कहा-मैं दमयन्ती के स्वयंवर में उससे विवाह करने के लिए जा रहा हूं। इन्द्र ने कहा अरे स्वयंवर तो कब का पूरा हो गया। दमयन्ती ने राजा नल का वरण कर लिया है।

हम लोग देखते ही रह गए। कलयुग ने क्रोध में भरकर कहा–तब तो यह अनर्थ हो गया। उसने देवताओं की उपेक्षा करके मनुष्य को अपनाया, इसलिए उसको दण्ड देना चाहिए। देवताओं ने कहा-दमयन्ती ने हमारी आज्ञा प्राप्त करके ही नल को वरण किया है। वास्तव में नल सर्वगुण सम्पन्न और उसके योग्य है। वे समस्त धर्मों के जानकार हैं।

उन्होंने इतिहास पुराणों सहित वेदों का भी अध्ययन किया है। उनको शाप देना तो नरक में धधकती आग में गिरने के समान है। अब कलयुग ने द्वापर से कहा मैं अपने क्रोध को शान्त नहीं कर सकता। इसलिए मैं नल के शरीर में निवास करूंगा। मैं उसे राज्यच्युत कर दूंगा। तब वह दमयन्ती के साथ नहीं रह सकेगा। इसलिए तुम भी जूए के पासों में प्रवेश करके मेरी सहायता करना।

द्वापर ने उसकी बात स्वीकार ली। द्वापर और कलयुग दोनों ही नल की राजधानी में आ बसे। बारह वर्ष तक वे इस बात की प्रतीक्षा में रहे कि नल में कोई दोष दिख जाए। एक दिन राजा नल संध्या के समय लघुशंका से निवृत होकर पैर धोए बिना ही आचमन करके संध्यावंदन करने बैठ गए। यह अपवित्र अवस्था देखकर कलियुग उनके शरीर में प्रवेश कर गया।

जूए में राजा नल सबकुछ हार गए तब

कलयुग दूसरा रूप धारण करके वह पुष्कर बनकर उसकी बात स्वीकार करके वह पुष्कर के पास गया और बोला तुम नल के साथ जुआं खेलो मेरी सहायता करो। जूए में जीतकर निषध राज का राज्य प्राप्त कर लो। पुष्कर उसकी बात स्वीकार करके नल के-के पास गया। द्वापर भी पासे का रूप धारण करके उसके साथ चला। जब पुष्कर ने राजा नल को जूआ खेलने का आग्रह किया। तब राजा नल दमयन्ती के सामने अपने भाई की बार–बार की ललकार सह ना सके। उन्होंने पासे खेलने का निश्चय किया। उस समय नल के शरीर में कलयुग घुसा हुआ था, इसीलिए नल जो कुछ भी जूए में लगाते हार जाते। प्रजा और मंत्रियों ने राजा को रोकना चाहा लेकिन जब वे नहीं माने तो मंत्रियों ने द्वारपाल को रानी दमयंती तक राजा को रोकने का संदेश पहुंचवाया। तब रानी नल दमयन्ती को बोली आपकी पूरी प्रजा आपके दुख के कारण अचेत हुई जा रही है। इतना कहकर दमयंती भी रोने लगी। लेकिन राजा नल कलयुग के प्रभाव में थे।

इसीलिए जो पासे फेंकते वही उनके प्रतिकुल पड़ते। जब दमयंती ने यह सब देखा तो उसने धाय को बुलवाया और उसके द्वारा राजा नल के सारथि वाष्र्णेय को बुलवाया। उन्होंने ने उससे कहा सारथि तुम जानते हो कि महाराज बहुत संकट में है। अब यह बात तुम से छिपी नहीं है। तुम रथ जोड़ लो और मेरे बच्चों को रथ में बैठाकर कुंडिनगर ले जाओ। उसके बाद पुष्कर ने राजा नल का सारा धन ले लिया और बोला तुम्हारे पास दावं पर लगाने के लिए और कुछ है या नहीं। यदि तुम दमयंती को दावं पर लगाने के लायक समझो तो उसे लगा दो।

क्योंकि पत्नी का यही धर्म है

एक दिन राजा नल ने देखा कि बहुत से पक्षी उनके पास ही बैठे है। उनके पंख सोने के समान दमक रहे हैं। नल ने सोचा कि इनकी पांख से कुछ धन मिलेगा। ऐसा सोचकर उन्हें पकडऩे के लिए नल ने उन पर अपना

पहनने का वस्त्र डाल दिया। पक्षी उनका वस्त्र लेकर उड़ गए। अब नल नंगे होकर बड़ी दीनता के साथ मुंह नीचे करके खड़ा हो गए।

पक्षियों ने कहा तु नगर से एक वस्त्र पहनकर निकला था। उसे देखकर हमें बड़ा दुख हुआ था ले अब हम तेरे शरीर का वस्त्र लिए जा रहे है। हम पक्षी नहीं जूए के पासे हैं। नल ने दमयन्ती से पासे की बात कह दी। तुम देख रही हो, यहाँ बहुत से रास्ते है। एक अवन्ती की ओर जाता है। दूसरा पर्वत होकर दक्षिण देश को। सामने विन्ध्याचल पर्वत है। यह पयोष्णी नदी समुद्र में मिलती है। सामने का रास्ता विदर्भ देश को जाता है। यह कौसल देश का मार्ग है।

इस प्रकार राजा नल दुख और शोक से भरकर बड़ी ही सावधानी के साथ दमयन्ती को भिन्न-भिन्न आश्रम मार्ग बताने लगे। दमयन्ती की आंखें आंसु से भर गई। दमयन्ती ने राजा नल से कहा क्या आपको लगता है कि मैं आपको छोड़कर अकेली कहीं जा सकती हूं। मैं आपके साथ रहकर आप के दुःख को दूर करूंगी। दुःख के अवसरो पर पत्नी पुरुष के लिए औषधी के समान है। वह धैर्य देकर पति के दुःख को कम करती है।

राजा नल ने क्यों किया दमयंती को छोडने का फैसला?

उस समय नल के शरीर पर वस्त्र नहीं था। धरती पर बिछाने के लिए एक चटाई भी नहीं थी। शरीर पर धूल से लथपथ हो रहा था। भूख-प्यास से परेशान राजा नल जमीन पर ही सो गए। दमयन्ती भी उनके साथ ये सारे दुख झेल रही थी। राजा नल भी जमीन पर ही सो गए। दमयन्ती के सो जाने पर राजा नल की नींद टूटी। सच्ची बात तो यह थी कि वे दुख और शोक की के कारण सुख की नींद सो भी नहीं सकते थे। वे सोचने लगे कि दमयंती मुझ से बड़ा प्रेम करती है। प्रेम के कारण ही उसे इतना दुख झेलना पड़ेगा। यदि मैं इसे छोड़कर चला जाऊँ तो संभव है कि इसे सुख भी मिल जाए। अन्त में राजा नल ने यही निश्चय कि इसे सुख भी मिल जाए।

दमयन्ती सच्ची पतिव्रता है। इसके सतीत्व को कोई भंग नहीं कर सकता। इस प्रकार त्यागने का निश्चय करके और सतीत्व की ओर से निश्चिन्त होकर राजा नल ने यह विचार किया कि मैं नंगा हूँ और दमयन्ती के शरीर पर भी केवल एक वस्त्र है। फिर भी इसके वस्त्रों में से आधा फाड़ लेना ही श्रेयस्कर है लेकिन फांडू कैसे? शायद यह जाग जाए? राजा नल ने यह सोचकर दमयंती को धीरे से उठाकर उसके शरीर का आधा वस्त्र फाड़कर शरीर ढक लिया। दमयंती नींद में थी। राजा नल उसे छोड़कर निकल पड़े। थोड़ी देर बाद वे शांत हुए और वे फिर धर्मशाला लौट आए।

और मगर ने रानी को निगलने के लिए जकड़ लिया

थोड़ी देर बाद जब राजा नल का हृदय शांत हुआ, तब वे फिर धर्मशाला में इधर-उधर घूमने लगे और सोचने लगे कि अब तक दमयन्ती परदे में रहती थी, इसे कोई छू भी नहीं सकता था। आज यह अनाथ के समान आधा वस्त्र पहने धूल में सो रही है। यह मेरे बिना दुखी होकर वन में कैसे रहेगी? मैं तुम्हे छोड़कर जा रहा हूँ सभी देवता तुम्हारी रक्षा करें। उस समय राजा नल का दिल दुख के मारे टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा था।

शरीर में कलियुग का प्रवेश होने के कारण उनकी बुद्धि नष्ट हो गई थी। इसीलिए वे अपनी पत्नी को वन में अकेली छोड़कर वहाँ से चले गए। जब दमयंती की नींद टूटी, तब उसने देखा कि राजा नल वहाँ नहीं है। यह देखकर वे चौंक गई और राजा नल को पुकारने लगी। जब दमयंती को राजा नल बहुत देर तक नहीं दिखाई पड़ें तो वे विलाप करने लगी। वे भटकती हुई जंगल के बीच जा पहुंची। वहाँ अजगर दमयंती को निगलने लगा। दमयंती मदद के लिए चिल्लाने लगी तो एक व्याध के कान में पड़ी। वह उधर ही घूम रहा था। वह वहाँ दौड़कर आया और

यह देखकर दमयंती को अजगर निगल रहा है। अपने तेज शस्त्र से उसने अजगर का मुंह चीर डाला। उसने दमयन्ती को छुड़ाकर नहलाया, आश्वासन देकर भोजन करवाया।

रानी ने क्यों दिया मुसीबत से बचाने वाले को ही शाप?

दमयन्ती जब कुछ शांत हुई। व्याध ने पूछा सुन्दरी तुम कौन हो? किस कष्ट में पड़कर किस उद्देश्य से तुम यहाँ आई हो? दमयन्ती की सुन्दरता, बोल-चाल और मनोहरता देखकर व्याध मोहित हो गया। वह दमयंती से मीठी-मीठी बातें करके उसे अपने बस में करने की कोशिश करने लगा। दमयन्ती उसके मन के भाव समझ गई। दमयंती ने उसके बलात्कार करने की चेष्टा को बहुत रोकना चाहा लेकिन जब वह किसी प्रकार नहीं माना तो उसने शाप दे दिया कि मैंने राजा नल के अलावा किसी और का चिंतन कभी नहीं किया हो तो यह व्याध मरकर गिर पड़े। दमयंती के इतना कहते ही व्याध के प्राण पखेरू उड़ गए। व्याध के मर जाने के बाद दमयंती एक निर्जन और भयंकर वन में जा पहुंची।

राजा नल का पता पूछती हुई वह उत्तर की ओर बढने लगी। तीन दिन रात दिन रात बीत जाने के बाद दमयंती ने देखा कि सामने ही एक बहुत सुन्दर तपोवन है। जहाँ बहुत से ऋषि निवास करते हैं। उसने आश्रम में जाकर बड़ी नम्रता के साथ प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। ऋषियों को प्रणाम किया। ऋषियों ने दमयन्ती का सत्कार किया और उसे बैठने को कहा-दमयन्ती ने एक भद्र स्त्री के समान सभी के हालचाल पूछे। फिर ऋषियों ने पूछा आप कौन है? तब दमयंती ने अपना पूरा परिचय दिया और अपनी सारी कहानी ऋषियों को सुनाई। तब सारे तपस्वी उसे आशीर्वाद देते हैं कि थोड़े ही समय में निषध के राजा को उनका राज्य वापस मिल जाएगा। उसके शत्रु भयभीत होंगे व मित्र प्रसन्न होंगे और कुटुंबी आनंदित होंगे। इतना कहकर सभी ऋषि अंर्तध्यान हो गए।

रानी ने मुश्किल समय में भी रख दी शर्त क्योंकि।

दमयंती रोती हुई एक अशोक के वृक्ष के पास पहुंचकर बोली तू मेरा शोक मिटा दे। शोक रहित अशोक तू मेरा शोक मिटा दे। क्या कहीं तूने राजा नल को शोक रहित देखा है। तू अपने शोकनाशक नाम को सार्थक कर। दमयन्ती ने अशोक की परिक्रमा की और वह आगे बढ़ी। उसके बाद आगे बड़ी तो बहुत दूर निकल गई। वहाँ उसने देखा कि हाथी घोड़ों और रथों के साथ व्यापारियों का एक झुंड आगे बढ़ रहा है। व्यापारियों के प्रधान से बातचीत करके दमयंती को जब यह पता चला कि वे सभी चेदीदेश जा रहे हैं तो वह भी उनके साथ हो गई। कई दिनों तक चलने के बाद वे व्यापारी एक भयंकर वन में पहुंचे। वहा एक बहुत सुंदर सरोवर था। लंबी यात्रा के कारण वे लोग थक चुके थे। इसलिए उन लोगों ने वहीं पड़ाव डाल दिया। रात के समय जंगली हाथियों का झुंड आया। आवाज सुनकर दमयंती की नींद टूट गई। वह इस मांसाहार के दृश्य को देखकर समझ नहीं पा रही थी कि वह क्या करे? वे सभी व्यापारी मर गए वह वहाँ से भाग निकली और दमयंती भागकर उन ब्राह्मणों के पास पहुंची और उनके साथ चलने लगी शाम के समय वह राजा सुबाहु के यहाँ जा पहुंची। वहाँ उसे सब बावली समझ रहे थे। उसे बच्चे परेशान कर रहे थे।

उस समय राज माता महल के बाहर खिड़की से देख रही थी उन्होंने अपनी दासी से कहा देखो तो वह स्त्री बहुत दुखी मालुम होती है। तुम जाओ और मेरे पास ले आओ। दासी दमयंती को रानी के पास ले गई। रानी ने दमयंती स पूछा तुम्हे डर नहीं लगता ऐसे घुमते हुए। तब दमयंती ने बोला में एक पतिव्रता स्त्री हूं। मैं हूँ तो कुलीन पर दासी का काम करती हूं। तब रानी ने बोला ठीक है तुम महल में ही रह जाओ। तब दमयंती कहती है कि मैं यहाँ रह तो जाऊंगी पर मेरी तीन शर्त है मैं झूठा नहीं खाऊंगी, पैर नहीं धोऊंगी और परपुरुष से बात नहीं करुंगी। रानी ने कहा ठीक है हमें आपकी शर्ते मंजुर है।

जैसे ही राजा ने कहा दश सांप ने डंस दिया।

जिस समय राजा नल दमयन्ती को सोती छोड़कर आगे बढ़े, उस समय वन में आग लग रही थी। तभी नल को आवाज आई। राजा नल शीघ्र दौड़ो। मुझे बचाओ। नागराज कुंडली बांधकर पड़ा हुआ था। उसने नल से कहा-राजन मैं कर्कोटक नाम का सर्प हूं। मैंने नारद मुनि को धोखा दिया था। उन्होंने शाप दिया कि जब तक राजा नल तुम्हे न उठावे, तब तक यहीं पड़े रहना। उनके उठाने पर तू शाप से छूट जाएगा। उनके शाप के कारण मैं यहाँ से एक भी कदम आगे नहीं बढ़ सकता। तुम इस शाप से मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हे हित की बात बताऊंगा और तुम्हारा मित्र बन जाऊंगा। मेरे भार से डरो मत मैं अभी हल्का हो जाता हूँ वह अंगूठे के बराबर हो गया। नल उसे उठाकर दावानल से बाहर ले आए। कार्कोटक ने कहा तुम अभी मुझे जमीन पर मत डालो। कुछ कदम गिनकर चलो। राजा नल ने ज्यो ही पृथ्वी पर दसवां कदम चला और उन्होंने कहा दश तो ही कर्कोटक ने उन्हें डस लिया। उसका नियम था कि जब कोई बोले दश तभी वह डंसता था।

आश्चर्य चकित नल से उसने कहा महाराज तुम्हे कोई पहचान ना सके इसलिए मैंने डस के तुम्हारा रूप बदल दिया है। कलियुग ने तुम्हे बहुत दुःख दिया है। अब मेरे विष से वह तुम्हारे शरीर में बहुत दुःखी रहेगा। तुमने मेरी रक्षा की है। अब तुम्हे हिंसक पशु-पक्षी शत्रु का कोई भय नहीं रहेगा। अब तुम पर किसी भी विष का प्रभाव नहीं होगा और युद्ध में हमेशा तुम्हारी जीत होगी।

और राजा बन गया सारथी

यह कहकर कर्कोटक ने दो दिव्य वस्त्र दिए और वह अंर्तध्यान हो गया। राजा नल वहाँ से चलकर दसवें दिन राजा ऋतुपर्ण की राजधानी अयोध्या में पहुंच गया। उन्होंने वहाँ राजदरबार में निवेदन किया कि मेरा नाम बाहुक है। मैं घोड़ों को हांकने और उन्हें तरह-तरह की चालें सिखाने का काम करता हूं। घोड़ो की विद्या मेरे जैसा निपुण इस समय पृथ्वी पर कोई नहीं है। रसोई बनाने में भी में बहुत चतुर हूं, हस्तकौशल के सभी काम और दूसरे कठिन काम करने की चेष्ठा करूंगा। आप मेरी आजीविका निश्चित करके मुझे रख लीजिए। उसकी सारी बात सुनकर राजा ऋतुपर्ण ने कहा बाहुक मैं सारा काम तुम्हें सौंपता हूं। लेकिन मैं शीघ्रगामी सवारी को विशेष पसंद करता हूं। तुम्हे हर महीने सोने की दस हजार मुहरें मिला करेंगी। लेकिन तुम कुछ ऐसा करो कि मेरे घोड़ों कि चाल तेज हो जाए। इसके अलावा तुम्हारे साथ वाष्र्णेय और जीवल हमेशा उपस्थित रहेंगें। राजा नल रोज दमयन्ती को याद करते और दुःखी होते कि दमयन्ती भूख-प्यास से परेशान ना जाने किस स्थिति में होगी। इसी तरह राजा नल ने दमयंती के बारे में सोचते हुए कई दिन बिता दिए। ऋतुपर्ण के पास रहते हुए उन्हें कोई ना पहचान सका। जब राजा विदर्भ को यह समाचार मिला कि मेरे दामाद नल और पुत्री राज पाठ विहिन होकर वन में चले गए हैं।

राजमाता ने कैसे पहचाना रानी को?

तब उन्होंने सुदेव नाम के एक ब्राह्मण को नल-दमयंती का पता लगाने के लिए चेदिनरेश के राज्य में भेजा। उसने एक दिन राज महल में दमयंती को देख लिया। उस समय राजा के महल में पुण्याहवाचन हो रहा था। दमयंती-सुनन्दा एक साथ बैठकर ही वह कार्यक्रम देख रही थी। सुदेव ब्राह्मण ने दमयंती को देखकर सोचा कि वास्तव में यही भीमक नन्दिनी है। मैंने इसका जैसा रूप पहले देखा था। वैसा अब भी देख रहा हूं। बड़ा अच्छा हुआ, इसे देख लेने से मेरी पुरी यात्रा सफल हो गई। सुदेव दमयंती के पास गया और उससे बोला दमयंती मैं तुम्हारे भाई का मित्र सुदेव हूं। मैं तुम्हारें भाई की आज्ञा से तुम्हे ढूढने यहाँ आया हूं। दमयंती ने ब्राह्मण को पहचान लिया। वह सबका कुशल-मंगल पूछने लगी और पूछते ही पूछते रो पड़ी।

सुनन्दा दमयंती को रोता देख घबरा गई। उसने अपनी माता के पास जाकर उन्हें सारी बात बताई। राज माता तुरंत अपने महल से बाहर निकल कर आयी। ब्राह्मण के पास जाकर पूछने लगी महाराज ये किसकी पत्नी है? किसकी पुत्री है? अपने घर वालों से कैसे बिछुड़ गए? तब सुदेव ने उनका पूरा परिचय उसे दिया। सुनन्दा ने अपने

हाथों से दमयंती का ललाट धो दिया। जिससे उसकी भौहों के बीच का लाल चिह्न चन्द्रमा के समान प्रकट हो गया। उसके ललाट का वह तिल देखकर सुनन्दा व राजमाता दोनों ही रो पड़े। राजमाता ने कहा मैंने इस तिल को देखकर पहचान लिया कि तुम मेरी बहन की पुत्री हो। उसके बाद दमयंती अपने पिता के घर चली गई।

तब खत्म हुई रानी की खोज

अपने पिता के घर एक दिन विश्राम करके दमयंती अपनी माता से कहा कि माँ मैं आपसे सच कहती हूं। यदि आप मुझे जीवित रखना चाहती हैं तो आप मेरे पतिदेव को ढूंढवा दीजिए। रानी ने उनकी बात सुनकर नल को ढूंढवाने के लिए ब्राह्मणों को नियुक्त किया। ब्राह्मणों से दमयंती ने कहा आप लोग जहाँ भी जाए वहाँ भीड़ में जाकर यह कहे कि मेरे प्यारे छलिया, तुम मेरी साड़ी में से आधी फाड़कर अपनी दासी को उसी अवस्था में आधी साड़ी में आपका इंतजार कर रही है। मेरी दशा का वर्णन कर दीजिएगा और ऐसी बात कहिएगा।

जिससे वे प्रसन्न हो और मुझ पर कृपा करे। बहुत दिनों के बाद एक ब्राह्मण वापस आया। उसने दमयंती से कहा मैंने राजा ऋतुपर्ण के पास जाकर भरी सभा में आपकी बात दोहराई तो किसी ने कुछ जवाब नहीं दिया। जब मैं चलने लगा तब बाहुक नाम के सारथि ने मुझे एकान्त में बुलाया उसके हाथ छोटे व शरीर कुरूप है। वह लम्बी सांस लेकर रोता हुआ मुझसे कहने लगा।

उच्च कुल की स्त्रियों के पति उन्हें छोड़ भी देते हैं तो भी वे अपने शील की रक्षा करती हैं। त्याग करने वाला पुरुष विपत्ति के कारण दुःखी और अचेत हो रहा था। इसीलिए उस पर क्रोध करना उचित नहीं है। लेकिन वह उस समय बहुत परेशान था। जब वह अपनी प्राणरक्षा के लिए जीविका चाह रहा था। तब पक्षी उसके वस्त्र लेकर उड़ गए। जब ब्राह्मण ने यह बात बताई तो दमयंती समझ गई कि वे राजा नल ही हैं।

इसलिए रानी ने फिर से रचाया स्वयंवर

ब्राह्मण की बात सुनकर दमयंती की आंखों में आंसु भर आए। उसने अपनी माता को सारी बात बताई। तब उन्होंने कहा आप यह बात अब अपने पिताजी से ना कहे। मैं सुदैव ब्राह्मण को इस काम के लिए नियुक्त करती हूं। तब दमयंती ने सुदेव से कहा-ब्राह्मण देवता आप जल्दी से जल्दी अयोध्या नगरी पहुंचे। राजा ऋतुपर्ण से यह बात कहिए कि दमयंती ने फिर से स्वेच्छानुसार पति का चुनाव करना चाहती है।

बड़े-बड़े राजा और राजकुमार जा रहे हैं। स्वयंवर की तिथि कल ही है। इसलिए यदि आप पहुंच सकें तो वहाँ जाइए। नल के जीने अथवा मरने का किसी को पता नहीं है, इसलिए वह इसीलिए कल वे सूर्योदय पूर्व ही पति वरण करेंगी। दमयंती की बात सुनकर सुदेव अयोध्या गए और उन्होंने राजा ऋतुपर्ण से सब बातें कह दी। सुदेव की बातें सुनाकर बाहुक को बुलाया और कहा बाहुक कल दमयंती का स्वयंवर है और हमें जल्दी से जल्दी वहाँ पहुंचना है। यदि तुम मुझे जल्दी वहाँ पहुंच जाना संभव समझो तभी मैं वहाँ जाऊंगा।

ऋतुपर्ण की बात सुनकर नल का कलेजा फटने लगा। सोचा कि दमयंती ने दुःखी और अचेत होकर ही ऐसा किया होगा। संभव है वह ऐसा करना चाहती हो। नल ने शीघ्रगामी रथ में चार श्रेष्ठ घोड़े जोत लिए। राजा ऋतुपर्ण रथ पर सवार हो गए। रास्ते में ऋतुपर्ण ने उसे पासें पर वशीकरण की विद्या सिखाई क्योंकि उसे घोड़ों की विद्या सीखने का लालच था। जिस समय राजा नल ने यह विद्या सीखी उसी समय कलियुग राजा नल के शरीर से बाहर आ गया।

रानी ने राजा को पहचानने के लिए क्या किया?

कलियुग ने नल का पीछा छोड़ दिया था। लेकिन अभी उनका रूप नहीं बदला था। उन्होंने अपने रथ को जोर से हांका और शाम होते-होते वे विदर्भ देश में पहुंचे। राजा भीमक के पास समाचार भेजा गया। उन्होंने ऋतुपर्ण को

अपने यहाँ बुला लिया ऋतुपर्ण के रथ की गुंज से दिशाएँ गुंज उठी। दमयंती रथ की घरघराहट से समझ गई कि ज़रूर इसको हांकने वाले मेरे पति देव हैं। यदि आज वे मेरे पास नहीं आएंगे तो मैं आग में कुद जाऊंगी।

उसके बाद अयोध्या नरेश ऋतुपर्ण जब राजा भीमक के दरबार में पहुंचे तो उनका बहुत आदर सत्कार हुआ। भीमक को इस बात का बिल्कुल पता नहीं था कि वे स्वयंवर का निमंत्रण पाकर यहाँ आए हैं। जब ऋतुपर्ण ने स्वयंवर की कोई तैयारी नहीं देखी तो उन्होंने स्वयंवर की बात दबा दी और कहा मैं तो सिर्फ़ आपको प्रणाम करने चला आया। भीमक सोचने लगे कि सौ-योजन से अधिक दूर कोई प्रणाम कहने तो नहीं आ सकता। लेकिन वे यह सोच छोड़कर भीमक के सत्कार में लग गए। बाहुक वाष्र्णेय के साथ अश्वशाला में ठहरकर घोड़ो की सेवा में लग गया। दमयंती आकुल हो गई कि रथ कि ध्वनि तो सुनाई दे रही है पर कहीं भी

मेरे पति के दर्शन नहीं हो रहे। हो ना हो वाष्र्णेय ने उनसे रथ विद्या सीख ली होगी। तब उसने अपनी दासी से कहा हे दासी तु जा और इस बात का पता लगा कि यह कुरूप पुरुष कौन है? संभव है कि यही हमारे पतिदेव हों। मैंने ब्राह्मणों द्वारा जो संदेश भेजा था। वही उसे बतलाना और उसका उत्तर मुझसे कहना। तब दासी ने बाहुक से जाकर पूछा राजा नल कहा है क्या तुम उन्हें जानते हो या तुम्हारा सारथि वाष्र्णेय जानता है? बाहुक ने कहा मुझे उसके सम्बंध में कुछ भी मालुम नहीं है सिर्फ़ इतना ही पता है कि इस समय नल का रूप बदल गया है। वे छिपकर रहते हैं। उन्हें या तो दमयंती या स्वयं वे ही पहचान सकते हैं या उनकी पत्नी दमयंती क्योंकि वे अपने गुप्त चिन्हों को दूसरों के सामने प्रकट नहीं करना चाहते हैं।

इस तरह हुआ अमर प्रेम कहानी का सुखद अंत

अब दमयंती की आशंका और बढ़ गई और दृढ़ होने लगी कि यही राजा नल है। उसने दासी से कहा तुम फिर बाहुक के पास जाओ और उसके पास बिना कुछ बोले खड़ी रहो। उसकी चेष्टाओं पर ध्यान दो। अब आग मांगे तो मत देना जल मांगे तो देर कर देना। उसका एक-एक चरित्र मुझे आकर बताओ। फिर वह मनुष्यों और देवताओं से उसमें बहुत से चरित्र देखकर वह दमयंती के पास आई और बोली बाहुक ने हर तरह से अग्नि, जल व थल पर विजय प्राप्त कर ली है। मैंने आज तक ऐसा पुरुष नहीं देखा। तब दमयंती को विश्वास हो जाता है कि वह बाहुक ही राजा नल है। अब दमयंती ने सारी बात अपनी माता को बताकर कहा कि अब मैं स्वयं उस बाहुक की परीक्षा लेना चाहती हूं। इसलिए आप बाहुक को मेरे महल में आने की आज्ञा दीजिए। आपकी इच्छा हो तो पिताजी को बता दीजिए। रानी ने अपने पति भीमक से अनुमति ली और बाहुक को रानीवास बुलवाने की आज्ञा दी। दमयंती ने बाहुक के सामने फिर सारी बात दोहराई। तब दमयंती के आखों से आंसू टपकते देखकर नल से रहा नहीं गया। नल ने कहा मैंने तुम्हे जानबुझकर नहीं छोड़ा। नहीं जूआ खेला यह सब कलियुग की करतूत है। दमयंती ने कहा कि मैं आपके चरणों को स्पर्श करके कहती हूँ कि मैंने कभी मन से पर पुरुष का चिंतन नहीं किया हो तो मेरे प्राणों का नाश हो जाए।

ऐसा अद्भुत दृश्य देखकर राजा नल ने अपना संदेह छोड़ दिया और कार्कोटक नाग के दिए वस्त्र को अपने ऊपर ओढ़कर उसका स्मरण करके वे फिर असली रूप में आ गए। दोनों ने सबका आशीर्वाद लिया दमयंती के मायके से उन्हें खुब धन देकर विदा किया गया। उसके बाद नल व दमयंती अपने राज्य में पहुंचे। राजा नल ने पुष्कर से फिर जूआं खेलने को कहा तो वह खुशी-खुशी तैयार हो गया और नल ने जूए की हर बाजी को जीत लिया। इस तरह नल व दमयंती को फिर से अपना राज्य व धन प्राप्त हो गया।

2- वैदिक महापुरुष सत्यवादि राजा हरिश्चन्द

राजा हरिश्चंद्र धार्मिक, सत्यप्रिय तथा न्यायी थे। एक बार उन्होंने स्त्रियों का आर्त्तनाद सुना। वे रक्षा के लिए पुकार रही थीं। हरिश्चंद्र ने उनकी रक्षा के निमित्त पग पढ़ाया तो उसके हृदय में विघ्नराज (संपूर्ण कार्यों में बाधा स्वरूप) ने प्रवेश किया, क्योंकि वह आर्त्तनाद उन विधाओं का ही था, जिनका विश्वामित्र अध्ययन करते थे। मौन और आत्मसंयम से जिन विधाओं को वे पहले सिद्ध नहीं कर पाये थे, वह नारी-रूप में उनके भय से पीड़ित होकर रो रही थीं। रुद्रकुमार विघ्नराज ने उनकी सहायता के निमित्त ही राजा के हृदय में प्रवेश किया था। हरिश्चंद्र ने अभिमान पूर्वक कहा—'वह कौन पापात्मा है जो हमारे राज्य में किसी को सता रहा है?' विश्वामित्र ने उसके अभिमान से रुष्ट होकर उससे पूछा—'दान किसे देना चाहिए? किसकी रक्षा करनी चाहिए और किससे युद्ध करना चाहिए?' राजा ने तीनों प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिया।

ब्राह्मण अथवा आजीविका विहीन को, भयभीत प्राणी को शत्रु से।

विश्वामित्र ने ब्राह्मण होने के नाते राजा से उसका समस्त दानस्वरूप ले लिया। तदनंतर उसे उस राज्य की सीमाएँ छोड़कर चले जाने को कहा और यह भी कहा कि एक माह के उपरांत हरिश्चंद्र उनके राजसूय यज्ञ के लिए दीक्षास्वरूप धन (दक्षिणा) भी प्रदान करे। राजा अपनी पत्नी तारामती (शैव्या) तथा पुत्र रोहिताश्व को साथ ले पैदल ही काशी की ओर चल दिया। तारामती धीरे-धीरे चल रही थी, अतः क्रुद्ध मुनि ने उस पर डंडे से प्रहार किया। कालांतर में वे लोग काशी पहुंचे। वहाँ विश्वामित्र दक्षिणा लेने के निमित्त पहले से ही विद्यमान थे। कोई और मार्ग न देख राजा ने शैव्या और रोहिताश्व को एक ब्राह्मण के हाथों बेच दिया। दक्षिणा के लिए धन पर्याप्त न होने के कारण स्वयं चांडाल के हाथों बिक गया। वास्तव में धर्म ने ही चांडाल का रूप धारण कर रखा था। हरिश्चंद्र का कार्य शवों के वस्त्र आदि एकत्र करना था। उसे श्मशान भूमि में ही रहना भी पड़ता था। कुछ समय उपरांत किसी सर्प ने रोहिताश्व का दंशन कर लिया। उसका शव लेकर शैव्या श्मशान पहुँची। हरिश्चंद्र और शैव्या ने परस्पर पहचाना तो अपने-अपने कष्ट की गाथा कह सुनायी। तदनंतर चिता तैयार करके बालक रोहिताश्व के साथ ही हरिश्चंद्र और शैव्या ने आत्मदाह का निश्चय कर किया। धर्म ने प्रकट होकर उन्हें प्राण त्यागने से रोका।

इन्द्र ने प्रकट होकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें स्वर्ग-लोक चलने के लिए कहा किंतु चांडाल की आज्ञा के बिना हरिश्चंद्र कहीं भी जाने के लिए तैयार नहीं था। रोहिताश्व चिता से जीता-जागता उठ खड़ा हुआ। धर्म ने बताया कि उसी ने चांडाल का रूप धारण किया था। तदुपरांत विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर रोहिताश्व को अयोध्या का राजा घोषित कर उसका राज्य-तिलक किया। राजा हरिश्चंद्र ने शैव्या तथा अपने राज्य के अन्य अनेक व्यक्तियों सहित स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया।

हरिश्चंद्र के पुरोहित वसिष्ठ थे। वे बारह वर्ष तक जल में रहने के बाद बाहर निकले तो हरिश्चंद्र के ऐहिक कष्ट तथा स्वर्ग गमन के विषय में सुनकर बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने विश्वामित्र को तिर्यक-योनि प्राप्त करने का शाप दिया। विश्वामित्र ने भी वसिष्ठ को वही शाप दिया, दोनो ने क्रमशः चील और बगुले का रूप प्राप्त किया। वे दोनों परस्पर लड़ने लगे, जिससे समस्त पृथ्वी तहस-नहस होने लगी। ब्रह्मा ने दोनों का पक्षी-रूप वापस ले लिया और उन्हें शांत कर फिर से मित्रता के सूत्र से आबद्ध किया।

देवी भागवत - एक बार इन्द्रलोक में विश्वामित्र वसिष्ठ से मिले। विश्वामित्र ने उनसे पूछा कि उन्हें इन्द्रलोक पहुंचने का पुण्य कैसे प्राप्त हुआ। वसिष्ठ ने कहा—'हरिश्चंद्र अत्यंत सत्यवादी हैं—उन्हीं के पुण्यों से इन्द्रलोक की प्राप्ति हुई है।' विश्वामित्र ने शेष घटना को स्मरण करके हरिश्चंद्र को मिथ्यावादी कहा। घर लौटकर उन्होंने अपना कथन सिद्ध

करने का निश्चय किया। एक दिन राजा मृगया के लिए वन गये, वहाँ एक सुंदरी रो रही थी। उससे ज्ञात हुआ कि वह सिद्धिरुपिणी थी। उसे प्राप्त करने के लिए विश्वामित्र घोर तप कर रहे थे, अतः वह क्लेश पा रही थी। राजा ने उसका दुःख हरने के लिए विश्वामित्र को तपस्या छोड़ने के लिए कहा।

विश्वामित्र तपस्या भंग होने से बहुत क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने एक भंयकर दानव को शूकर का रूप देकर राजा के राज्य में भेजा। प्रजा के त्रास की निवृति के लिए राजा धनुष-वाण लेकर उसका पीछा करते हुए जंगल में गंगा तटीय एक तीर्थ स्थान पर पहुंच गये। नगर का मार्ग पूछते हुए राजा को विश्वामित्र ने तीर्थस्थान करने के लिए प्रेरित किया। तदनंतर दक्षिणा स्वरूप अपने मायावी पुत्र के विवाह में राजा ने समस्त राज्य देने को कहा। राजा दान देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध थे। अतः उन्होंने राज्य प्रदान किया। विश्वामित्र ने ब्राह्मण के रूप ही फिर ढाई भार स्वर्ण की दक्षिणा मांगी। राजा ने दक्षिणा देना का वायदा तो कर लिया किंतु अब उसके पास स्वर्ण अथवा मुद्रा नहीं थी। अतः उसने पत्नी के कहने पर उसे बेचने का निश्चय किया।

विश्वामित्र ने एक बूढ़े ब्राह्मण का रूप धरकर उसकी पत्नी तथा बालक रोहिताश्व को ख़रीद लिया तथा एक चांडाल के हाथों राजा को बेचकर पर्याप्त मुद्रा प्राप्त कर ली। चांडाल का नाम वीरबाहु था। उसने राजा को श्मशान में मृत व्यक्तियों के वस्त्र लेने के लिए नियुक्त कर दिया। एक दिन रोहिताश्व बच्चों के साथ खेल रहा था। सांप के डंस लेने से उसका निधन हो गया। माँ अत्यंत दीनहीन स्थिति में विलाप करने लगी। नगर के लोग एकत्र हो गये। उनके परिचय पूछने पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया, अतः सबने उसे मायावी राक्षसी जानकर चांडाल से कहा कि उसका वध कर दे। चांडाल ने पाशबद्ध करके हरिश्चंद्र को वध करने के निमित्त बुलाया।

शैव्या ने अपने पुत्र का दाह-संस्कार करने तक उसे रुकने के लिए कहा। रोहिताश्व को देखने किए उपरांत राजा ने रानी को तथा शैव्या ने चांड़ाल वेशी राजा को पहचाना। दोनों ने विलाप करते हुए बालक का शव चिता पर रखा। तभी इन्द्र, विष्णु तथा विश्वामित्र सहित समस्त देवताओं ने वहाँ प्रकट होकर उन दोनों को सहनशीलता की सराहना की। धर्म ने हरिश्चंद्र को स्वर्ग प्रदान किया। राजा चांडाल से आज्ञा लेना नहीं भूले। धर्म ने कहा—'वास्तव में तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए मैंने ही ब्राह्माण, चांडाल तथा सर्प का रूप धारण किया था।' उनके आशीर्वाद से रोहिताश्व भी पुनर्जीवित हो उठा। राजा के कहने से उसकी समस्त प्रजा को भी स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

इक्ष्वाकु वंश में त्रिशंकु नामक राजा तथा उनकी पत्नी सत्यवती के पुत्र का नाम हरिश्चंद्र था। हरिश्चंद्र ने समस्त पृथ्वी को जीतकर राजसूय यज्ञ किया।

3 - वैदिक महापुरुष मर्यदा पुरुषत्तम श्री राम

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम हिन्दू धर्म में विष्णु के 10 अवतारों में से एक हैं। राम का जीवनकाल एवं पराक्रम, महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित, संस्कृत महाकाव्य रामायण के रूप में लिखा गया है। उनके उपर तुलसीदास ने भक्ति काव्य श्री रामचरितमानस रचा था। ख़ास तौर पर उत्तर भारत में राम बहुत अधिक पूजनीय माने जाते हैं। रामचन्द्र हिन्दुत्ववादियों के भी आदर्श पुरुष हैं। राम, अयोध्या के राजा दशरथ और रानी कौशल्या के सबसे बड़े पुत्र थे। राम की पत्नी का नाम सीता था (जो लक्ष्मी का अवतार मानी जाती है) और इनके तीन भाई थे, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। हनुमान, भगवान राम के, सबसे बड़े भक्त माने जाते हैं। राम ने राक्षस जाति के राजा रावण का वध किया।

मर्यादापुरुषोत्तमः- अनेक विद्वानों ने उन्हें 'मर्यादापुरुषोत्तम' की संज्ञा दी है। वाल्मीकि रामायण तथा पुराणादि ग्रंथों के अनुसार वे आज से कई लाख वर्ष पहले त्रेता युग में हुए थे। पाश्चात्य विद्वान् उनका समय ईसा से कुछ ही हज़ार वर्ष पूर्व मानते हैं। अपने शील और पराक्रम के कारण भारतीय समाज में उन्हें जैसी लोकपूजा मिली वैसी संसार के अन्य किसी धार्मिक या सामाजिक जननेता को शायद ही मिली हो। भारतीय समाज में उन्होंने जीवन का जो आदर्श रखा, स्नेह और सेवा के जिस पथ का अनुगमन किया, उसका महत्त्व आज भी समूचे भारत में अक्षुण्ण बना हुआ है। वे भारतीय जीवन दर्शन और भारतीय संस्कृति के सच्चे प्रतीक थे। भारत के कोटि-कोटि नर नारी आज भी उनके उच्चादर्शों से अनुप्राणित होकर संकट और असमंजस की स्थितियों में धैर्य एवं विश्वास के साथ आगे बढ़ते हुए कर्त्तव्यपालन का प्रयत्न करते हैं। उनके त्यागमय, सत्यनिष्ठ जीवन से भारत ही नहीं, विदेशों के भी मैक्समूलर, जोन्स, कीथ, ग्रिफिथ, बरान्निकोव आदि विद्वान् आकर्षित हुए हैं। उनके चरित्र से मानवता मात्र गौरवान्वित हुई है।

जीवन परिचय, जन्मः- हिन्दू धर्म के कई त्योहार, जैसे दशहरा और दीपावली, राम की जीवन-कथा से जुडे हुए है। माना जाता है कि राम का जन्म प्राचीन भारत में हुआ था। उनके जन्म के समय का अनुमान सही से नहीं लगाया जा सका है। आज के युग में राम का जन्म, रामनवमी के रूप में मनाया जाता है। राम चार भाईयो में से सबसे बड़े थे, इनके भाइयो के नाम लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न थे। राम बचपन से ही शान्त स्वभाव के वीर पुरुष थे। उन्होने मर्यादाओं को हमेशा सर्वोच्च स्थान दिया था। इसी कारण उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम राम के नाम से जाना जाता है। उनका राज्य न्यायप्रिय और ख़ुशहाल माना जाता था, इसलिए भारत में जब भी सुराज की बात होती है, रामराज या रामराज्य का उद्धरण दिया जाता है। धर्म के मार्ग पर चलने वाले राम ने अपने तीनो भाइयों के साथ गुरु वसिष्ठ से शिक्षा प्राप्त की।

राम के बचपन की विस्तार-पूर्वक विवरण स्वामी तुलसीदास की रामचरितमानस के बालकाण्ड से मिलती है। राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीः कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। राम कौशल्या के पुत्र थे, सुमित्रा के दो पुत्र, लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे और कैकेयी के पुत्र भरत थे। कैकेयी चाहती थी उनके पुत्र भरत राजा बनें, इसलिए उन्होंने राम को, दशरथ द्वारा 14 वर्ष का वनवास दिलाया। राम ने अपने पिता की आज्ञा का पालन किया। राम की पत्नी सीता और उनके भाई लक्ष्मण भी वनवास गये थे।

रामायण, रूप और सौंदर्यः- अपनी छवि और कांति से अगणित कामदेवों को लज्जित करने वाले राम के सौंदर्य का वर्णन भी रामायणादि ग्रंथों में यथेष्ट मात्रा में पाया जाता है। तुलसी के रामचरितमानस में तो स्थल-स्थल पर इस तरह के विवरण भरे पड़े हैं। राजा जनक जब विश्वामित्र मुनि से मिलने गए तो वहाँ राम की सुंदर छवि देखकर वह अपनी सुध वुध ही भूल गए, वे सचमुच ही विदेह हो गए। उके अलौकिक सौंदर्य का यहाँ तक प्रभाव पड़ा कि 'बरबस ब्रह्म

सुखहिं मन त्यागा।' जनक की पुष्पवाटिका में सीता की एक सखी ने राम को जब देखा तो वह भौंचक रह गई। सीता के निकट आकर वह केवल इतना ही कह सकी 'स्याम गौर किमि कहौं वखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।' उनके अंग प्रत्यंग का जो वर्णन किया गया है, वह अद्वितीय है। मखभूमि में तथा विवाहमंडप में भी राम के नखशिख का ऐसा ही सुंदर वर्णन मानस में दिया गया है। सामान्य लोगों की तो बात ही क्या, परशुराम जैसे दुर्धर्ष वीर को भी राम के अलौकिक सौंदर्य ने हक्का बक्का बना दिया। वे निर्निमेष नेत्रों से उन्हें देखते रह गए। ऐसा ही एक प्रसंग उस समय आया जब खर दूषण की सेना के वीर राम का रूप देखकर हथियार चलाना ही भूल गए। उनके नेता को स्वीकार करना पड़ा कि अपने जीवन में आज तक हमने ऐसा सौंदर्य कहीं देखा नहीं, इसलिए ' यद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा, वध लायक़ नहिं पुरुष अनूपा।

आदर्श चरित्रः- राम के चरित्र में भारत की संस्कृति के अनुरूप पारिवारिक और सामाजिक जीवन के उच्चतम आदर्श पाए जाते हैं। उनमें व्यक्तित्वविकास, लोकहित तथा सुव्यवस्थित राज्यसंचालन के सभी गुण विद्यमान थे। उन्होंने दीनों, असहायों, संतों और धर्मशीलों की रक्षा के लिए जो कार्य किए, आचारव्यवहार की जो परंपरा क़ायम की, सेवा और त्याग का जो उदाहरण प्रस्तुत किया तथा न्याय एवं सत्य की प्रतिष्ठा के लिए वे जिस तरह अनवरत प्रयत्नवान् रहे, जिससे उन्हें भारत के जन-जन के मानस मंदिर में अत्यंत पवित्र और उच्च आसन पर आसीन कर दिया है।

आदर्श पुत्रः- राम के पराक्रम सौंदर्य से भी अधिक व्याक प्रभाव उनके शील और आचार व्यवहार का पड़ा जिसके कारण उन्हें अपने जीवनकाल में ही नहीं, वरन् अनुवर्ती युग में भी ऐसी लोकप्रियता प्राप्त हुई जैसी विरले ही किसी व्यक्ति को प्राप्त हुई हो। वे आदर्श पुत्र, आदर्श पति, स्नेहशील भ्राता और लोकसेवानुरक्त, कर्तव्यपरायण राजा थे। माता पिता का वे पूर्ण समादर करते थे।

हनुमान, राम और लक्ष्मण को ले जाते हुएः- प्रातः काल उठकर पहले उन्हें प्रणाम करते, फिर नित्यकर्म स्नानादि से निवृत्त होकर उनकी आज्ञा ग्रहण कर अपने काम काज में जुट जाते थे। विवाह हो जाने के बाद राजा ने उन्हें युवराज बनाना चाहा, किंतु मंथरा दासी के बहकाने से विमाता कैकेयी ने जब उन्हें 14 वर्ष का वनवास देने का वर राजा से माँगा तो विरोध में एक शब्द भी न कहकर वे तुरंतवन जाने को तैयार हो गए। उन्होंने कैकेयी से कहा 'सुन जननी सोइ सुत बड़ भागी, जो पितृ मातु वचन अनुरागी।' वाल्मीकि के अनुसार राम ने यहाँ तक कह दिया कि दिया कि 'राजा यदि अग्नि में कूदने को कहें तो कूदूँगा, विष खाने को कहें तो खाऊँगा।' निदान समस्त राजवैभव, उत्तुंग प्रासाद और बहुमूल्य वस्त्राभूषणों का परित्याग कर लक्ष्मण तथा सीता के साथ वे सहर्ष वन के लिए चल पड़े। जाने के पहले उन्होंने गुरु से कहलाकर ब्राह्मणों तथा विद्वानों के वर्षाशन की व्यवस्था करा दी और भरत के लिए संदेश दिया कि 'नीति न तजहिं राजपद पाये'। पिता और माताओं की सुख सुविधा का ध्यान रखने की प्रार्थना पुरजनों हितेच्छुओं से करते हुए उन्होंने कहा

'सोइ सब भाँति मोर हितकारी, जाते रहैं भुआल सुखारी' तथा 'मातु सकल मोरे विरह जेहि न होयँ दुखदीन, सो उपाय तुम करह सब पुरजन प्रजा प्रवीना'

आदर्श पति, जंगल में राम, सीता और लक्ष्मणः- राम जानते थे कि सीता अत्यंत सुकुमार हैं अतः उन्होंने उन्हें अयोध्या में ही रहने को बहुत समझाया पर जब वे नहीं मानीं तब उन्होंने उन्हें अपने साथ ले लिया और गर्मी, वर्षा, थकान आदि का बराबर ध्यान रखते हुए सहृदय, स्नेही पति के रूप में उन्हें भरसक कोई कष्ट नहीं होने दिया।

आदर्श भाईः- राम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण को भी पिता, माता ओर बड़े भाई का अनुराग देकर इस तरह आप्यायित करते रहे कि उन्हें अयोध्या तथा परिजनों के वियोगका दुः ख तनिक भी खलने नहीं पाया। मेघनाद के शक्तिबाण से लक्ष्मण के आहत होने पर राम को मर्मांताक पीड़ा हुई और वे फूट फूटकर रो पड़े। नारी के पीछे

भाई का प्राण जाने की आशंका से उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। धैर्यवान् होते हुए भी वे इस समय परम व्याकुल हो उठे। किंतु तभी संजीवनी बूटी लेकर हनुमान के लौट आने से किसी तरह लक्ष्मण की प्राणरक्षा हो सकी। भरत पर भी राम का ऐसा ही स्नेह उनकी साधुता एवं निश्छलता पर राम का पूरा विश्वास था। इसी से भरत भी उनका पूर्ण समादर करते थे और सर्वदा उनकी आज्ञा का पालन करते थे। भरत जब इन्हें लौट लाने के लिए चित्रकूट पहुँचे तब राम ने उन्हें सत्य और कर्तव्यनिष्ठा का उपदेश देते हुए बड़े प्रेम से समझाया और सहारे के लिए अपनी खड़ाउँ देकर सहृदयतापूर्वक विदा किया। वनवास की अवधि बीतने में केवल एक दिन शेष रहने पर भरत की दशा का स्मरण कर राम अत्यंत व्याकुल हो उठे और उन्होंने विभीषण से पुष्प विमान की याचना की, जिससे वे यथा समय अयोध्या पहुँच सकें।

राम के इन्हीं गुणों के कारण समस्त अयोध्यावासी और पशुपक्षी तक उनमें अनुरक्त थे। वनवास के लिए प्रस्थान करने पर भारी संख्या में लोग तमसा नदी तक उनके साथ-साथ दौड़ गए। राम को आधी रात के समय उन्हें सोते छोड़कर लुक छिपकर वहाँ से कूच कर देना पड़ा। जागने पर लोगों को बड़ा पछतावा हुआ। अत्यंत दु: खित होकर वे अयोध्या लौट आए वनवास की अवधि भर राम की मंगलकामना के उद्देश्य से नेमव्रत, देवोपासना आदि करते रहे। उधर नाव में बैठकर राम के गंगा पार चले जाने पर सुमंत्र मूर्छित हो गया और उसके रथ के घोड़े भी रामवियोग में व्याकुल हो उठे। उस समय यदि कोई व्यक्ति राम लक्ष्मण का नामोल्लेख कर देता था तो वे पशु विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखने लगते थे-'जे कहि रामलखन वैदेही, हिकरि-हिकरि पशु चितवहिं तेही।' पिता दशरथ ने तो पहले ही कह दिया था कि राम के बिना मेरा जीना संभव नहीं और यही हुआ भी। माता कौशल्या को इस बात का उतना दु: ख न था कि राम वन गमन की बात सुनकर भी मेरी वज्र की छाती विदीर्ण नहीं हुई, जितनी उन्हें इस बात की ग्लानि थी कि राम जैसे आज्ञाकारी, सुशील पुत्र की मुझ जैसी माता हुई। मतिभ्रम से पूर्व कैकेयी का भी राम से पूर्ण विश्वास था। इसी से उनके राज्याभिषेक की बात सुनकर उसने प्रसन्नता करते हुए कहा था।

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये। तस्मात्तृष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति। [1]

आदर्श राजाः- राम प्रजा को हर तरह से सुखी रखना राजा का परम कर्तव्य मानते थे। उनकी धारणा थी कि जिस राजा के शासन में प्रजा दु: खी रहती है, वह नृप अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है। जनकल्याण की भावना से ही उन्होंने राज्य का संचालन किया, जिससे प्रजा धनधान्य से पूर्ण, सुखी, धर्मशील एवं निरामय हो गई-'प्रहृष्ट मुदितो लोकस्तुष्ट: पुष्ट: सुधार्मिक:। निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जित:।'

तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में रामराज्य की विशद चर्चा की है। लोकानुरंजन के लिए वे अपने सर्वस्व का त्याग करने को तत्पर रहते थे। इसी से भवभूति ने उनके के मुँह से कहलाया है

'स्नेहं दयाँ च सौख्यं च, यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुंचतोनास्ति में व्यथा'।

अर्थात् 'यदि आवश्यकता हुई तो जानकी तक का परित्याग मैं कर सकता हूँ।' प्रजानुरंजन के लिए इतना बड़ा त्याग करने पर उन्हें कितनी मर्मांतक व्यथा हुई, सीता-विरह-कातर होकर किस तरह वे मुमूर्षुवत् हो गए, इसका अत्यंत करुणोत्पादक चित्रण महाकवि भवभूति की कुशल लेखनी ने 'उत्तररामचरित' में किया है

महापराक्रमी योद्धाः- राम अद्वितीय महापुरुष थे। वे अतुल्य बलशाली, सौंदर्यनिधान तथा उच्च शील के व्यक्ति थे। किशोरावस्था में ही उन्होंने धार्मिक अनुष्ठानों में रत विश्वामित्र मुनि के परित्राणार्थ ताड़का और सुबाहु राक्षस का वध किया। राजा जनक की स्वयंवर सभा में उन्होंने शिव का वह विशाल धनुष अनायास ही तोड़ डाला जिसके सामने बड़े-बड़े वीरपुंगवों को भी नतमस्तक होना पड़ा था। दंडक वन में शूर्पणखा के भड़काने से जब खर, दूषण, त्रिशिरादि

ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया तो अकेले ही युद्ध करते हुए उन्होंने थोड़े समय में ही उनका विनाश कर डाला। किष्किंधा में एक ही बाण से राम ने सात तालवृक्षों का छेदन कर दिया और बाद में बड़े भाई के त्रास से उत्पीड़ित सुग्रीव की रक्षा के लिए बालि जैसे महापराक्रमी योद्धा को भी धराशायी कर दिया। लंका में रावण, कुंभकर्ण आदि से हुआ उनका युद्ध तो पराक्रम की पराकाष्ठा का ऐसा उदाहरण है जिसकी मिसाल अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगी।

परमधामः- जब प्रभु श्रीराम, भरत और शत्रुघ्न ने सरयू नदी के 'गोप्रतार घाट' पर विष्णु स्वरूप में प्रवेश किया तो उनके साथ गया समस्त समूह, अर्थात राक्षस, मनुज, रीछ, पक्षी, वानर और ब्रह्माजी ये सब देखकर बहुत आह्लादित हुए और अपने धाम को चले गए। ऐसा मना जाता है कि राम 1100 सौ सालों तक जीवित थे क्योकि वैदिक ऐसी मान्यता है कि कोई भी चक्रवती राजा सौ सालों में केवल एक बार अश्वमेध यज्ञ कर सकता है राम ने अपने जीवन में कुल 11 बार अश्वमेंध यज्ञ किया था।

4 - वैदिक महापुरुष योगेश्वर कृष्ण

ब्रज या शूरसेन जनपद के इतिहास में श्रीकृष्ण का समय बड़े महत्त्व का है। इसी समय में प्रजातंत्र और नृपतंत्र के बीच कठोर संघर्ष हुए। मगध राज्य की शक्ति का विस्तार हुआ और भारत का वह महान् भीषण संग्राम हुआ, जिसे महाभारत युद्ध कहते हैं। इन राजनीतिक हलचलों के अतिरिक्त इस काल का सांस्कृतिक महत्त्व भी है। मथुरा नगरी इस महान् विभूति का जन्मस्थान होने के कारण धन्य हो गई। मथुरा ही नहीं, सारा शूरसेन या ब्रज जनपद आनंदकंद कृष्ण की मनोहर लीलाओं की क्रीड़ाभूमि होने के कारण गौरवान्वित हो गया। मथुरा और ब्रज को कालांतर में जो असाधारण महत्त्व प्राप्त हुआ, वह इस महापुरुष की जन्मभूमि और क्रीड़ाभूमि होने के कारण ही प्राप्त हुआ। श्रीकृष्ण भागवत धर्म के महान् स्रोत हुए। इस धर्म ने कोटि-कोटि भारतीय जन का अनुरंजन तो किया ही, साथ ही कितने है विदेशी इसके द्वारा प्रभावित हुए। प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का एक बड़ा भाग कृष्ण की मनोहर लीलाओं से ओत-प्रोत है। उनके लोकरंजक रूप ने भारतीय जनता के मानस-पटल पर जो छाप लगा दी है, वह अमिट है। ब्रज में भगवान श्रीकृष्ण को लोग कई नामों से पुकारते है-कान्हा, गोपाल, गिरधर, माधव, केशव, मधुसूदन, गिरधारी, रणछोड़, बंशीधर, नंदलाल, मुरलीधर आदि नामों से जाने जाते हैं।

कृष्ण जन्म का समय-वर्तमान ऐतिहासिक अनुसंधानों के आधार पर श्रीकृष्ण का जन्म लगभग ई। पू। 3000 माना जाता है। ये सम्भवत: 175 वर्ष से कुछ ऊपर की आयु तक जीवित रहे। अपने इस दीर्घ जीवन में उन्हें विविध प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहना पड़ा। उनका प्रारंभिक जीवन तो ब्रज में कटा और शेष द्वारका में व्यतीत हुआ। बीच-बीच में उन्हें अन्य अनेक जनपदों में भी जाना पड़ा। जो अनेक घटनाएँ उनके समय में घटीं, उनकी विस्तृत चर्चा पुराणों तथा महाभारत में मिलती है। वैदिक साहित्य में तो कृष्ण का उल्लेख बहुत कम मिलता है और उसमें उन्हें मानव-रूप में ही दिखाया गया है, न कि नारायण या विष्णु के अवतार रूप में।

सनातन धर्म के अनुसार भगवान विष्णु सर्वपापहारी पवित्र और समस्त मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले प्रमुख देवता हैं। जब-जब इस पृथ्वी पर असुर एवं राक्षसों के पापों का आतंक व्याप्त होता है, तब-तब भगवान विष्णु किसी न किसी रूप में अवतरित होकर पृथ्वी के भार को कम करते हैं। वैसे तो भगवान विष्णु ने अभी तक तेईस अवतारों को धारण किया। इन अवतारों में उनके सबसे महत्त्वपूर्ण अवतार 'श्रीराम' और 'श्रीकृष्ण' के ही माने जाते हैं। श्रीकृष्ण ऐतिहासिक पुरुष थे, इसका स्पष्ट प्रमाण 'छान्दोग्य उपनिषद' के एक उल्लेख में मिलता है। वहाँ कहा गया है कि "देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को महर्षिदेव: कोटी आंगिरस ने निष्काम कर्म रूप यज्ञ उपासना की शिक्षा दी थी,

जिसे ग्रहण कर श्रीकृष्ण 'तृप्त' अर्थात् पूर्ण पुरुष हो गए थे।" श्रीकृष्ण का जीवन, जैसा कि महाभारत में वर्णित है, इसी शिक्षा से अनुप्राणित था और 'गीता' में उसी शिक्षा का प्रतिपादन उनके ही माध्यम से किया गया है।

लीलाओं का संदेशः- कृष्ण लीलाओं का जो विस्तृत वर्णन भागवत ग्रंथ में किया गया है, उसका उद्देश्य क्या केवल कृष्ण भक्तों की श्रद्धा बढ़ाना है या मनुष्य मात्र के लिए इसका कुछ संदेश है? तार्किक मन को विचित्र-सी लगने वाली इन घटनाओं के वर्णन का उद्देश्य क्या ऐसे मन को अतिमानवीय पराशक्ति की रहस्यमयता से विमूढ़वत बना देना है अथवा उसे उसके तार्किक स्तर पर ही कुछ गहरा संदेश देना है, इस पर विचार करना चाहिए। श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं, इसका स्पष्ट प्रमाण 'छान्दोग्य उपनिषद' के एक उल्लेख में मिलता है। वहाँ [कहा गया है कि देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को महर्षिदेव: कोटी आंगिरस ने निष्काम कर्म रूप यज्ञ उपासना की शिक्षा दी थी, जिसे ग्रहण कर श्रीकृष्ण 'तृप्त' अर्थात् पूर्ण पुरुष हो गए थे।

श्रीकृष्ण का जीवन, जैसा कि महाभारत में वर्णित है, इसी शिक्षा से अनुप्राणित था और 'गीता' में उसी शिक्षा का प्रतिपादन उनके ही माध्यम से किया गया है। किंतु इनके जन्म और बाल-जीवन का जो वर्णन प्राप्त है, वह मूलतः श्रीमद्भागवत का है और वह ऐतिहासिक कम, आध्यात्मिक अधिक है और यह बात ग्रंथ के आध्यात्मिक स्वरूप के अनुसार ही है। ग्रंथ में चमत्कारी भौतिक वर्णनों के पर्दे के पीछे गहन आध्यात्मिक संकेत संजोए गए हैं। वस्तुतः भागवत में सृष्टि की संपूर्ण विकास प्रक्रिया का और उस प्रक्रिया को गति देने वाली परमात्म शक्ति का दर्शन कराया गया है। ग्रंथ के पूर्वार्ध में सृष्टि के क्रमिक विकास का और उत्तरार्ध (दशम स्कंध) में श्रीकृष्ण की लीलाओं के द्वारा व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास का वर्णन प्रतीक शैली में किया गया है।

श्रीकृष्ण को हिन्दू धर्म में भगवान विष्णु का अवतार माना जाता है। सनातन धर्म के अनुसार भगवान विष्णु सर्वपापहारी पवित्र और समस्त मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले प्रमुख देवता हैं। श्रीकृष्ण साधारण व्यक्ति न होकर 'युग पुरुष' थे। उनके व्यक्तित्व में भारत को एक प्रतिभा सम्पन्न 'राजनीतिवेत्ता' ही नही, एक महान् 'कर्मयोगी' और 'दार्शनिक' प्राप्त हुआ, जिसका 'गीता' ज्ञान समस्त मानव-जाति एवं सभी देश-काल के लिए पथ-प्रदर्शक है। कृष्ण की स्तुति लगभग सारे भारत में किसी न किसी रूप में की जाती है। वे लोग जिन्हें हम साधारण रूप में नास्तिक या धर्म निरपेक्ष की श्रेणी में रखते हैं, निश्चित रूप से 'श्रीमद् भगवद्गीता' से प्रभावित हैं। 'गीता' किसने और किस काल में कही या लिखी यह शोध का विषय है, किन्तु 'गीता' को कृष्ण से ही जोड़ा जाता है। यह आस्था का प्रश्न है और यूँ भी आस्था के प्रश्नों के उत्तर इतिहास में नहीं तलाशे जाते।

वैदिक महपुरुष योगेश्वर कृष्णः- अठारह दिन चले महाभारत के युद्ध में रक्तपात के सिवाय कुछ हासिल नहीं हुआ। इस युद्ध में कौरवों के समस्त कुल का नाश हुआ, साथ ही पाँचों पांडवों को छोड़कर पांडव कुल के अधिकाँश लोग मारे गए। लेकिन इस युद्ध के कारण, युद्ध के पश्चात एक और वंश का खात्मा हो गया वह था 'श्री कृष्ण जी का यदुवंश'।

गांधारी ने दिया था यदुवंश के नाश का श्राप:- महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद जब युधिष्ठर का राजतिलक हो रहा था तब कौरवों की माता गांधारी ने महाभारत युद्ध के लिए श्रीकृष्ण को दोषी ठहराते हुए श्राप दिया की जिस प्रकार कौरवों के वंश का नाश हुआ है ठीक उसी प्रकार यदुवंश का भी नाश होगा। गांधारी के श्राप से विनाशकाल आने के कारण श्रीकृष्ण द्वारिका लौटकर यदुवंशियों को लेकर प्रयास क्षेत्र में आ गये थे। यदुवंशी अपने साथ अन्न-भंडार भी ले आये थे। कृष्ण ने ब्राह्मणों को अन्नदान देकर यदुवंशियों को मृत्यु का इंतजार करने का आदेश दिया था। कुछ दिनों बाद महाभारत-युद्ध की चर्चा करते हुए सात्यकि और कृतवर्मा में विवाद हो गया। सात्यकि ने गुस्से में आकर कृतवर्मा का सिर काट दिया। इससे उनमें आपसी युद्ध भड़क उठा और वे समूहों में विभाजित होकर एक-

दूसरे का संहार करने लगे। इस लड़ाई में श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और मित्र सात्यकि समेत सभी यदुवंशी मारे गये थे, केवल बब्रु और दारूक ही बचे रह गये थे। यदुवंश के नाश के बाद कृष्ण के ज्येष्ठ भाई बलराम समुद्र तट पर बैठ गए और एकाग्रचित्त होकर परमात्मा में लीन हो गए। इस प्रकार शेषनाग के अवतार बलरामजी ने देह त्यागी और स्वधाम लौट गए।

बहेलिये का तीर लगने से हुई श्रीकृष्ण की मृत्युः- बलराम जी के देह त्यागने के बाद जब एक दिन श्रीकृष्ण जी पीपल के नीचे ध्यान की मुद्रा में बैठे हुए थे, तब उस क्षेत्र में एक ज़रा नाम का बहेलिया आया हुआ था। ज़रा एक शिकारी था और वह हिरण का शिकार करना चाहता था। ज़रा को दूर से हिरण के मुख के समान श्रीकृष्ण का तलवा दिखाई दिया। बहेलिए ने बिना कोई विचार किए वहीं से एक तीर छोड़ दिया जो कि श्रीकृष्ण के तलवे में जाकर लगा। जब वह पास गया तो उसने देखा कि श्रीकृष्ण के पैरों में उसने तीर मार दिया है। इसके बाद उसे बहुत पश्चाताप हुआ और वह क्षमायाचना करने लगा। तब श्रीकृष्ण ने बहेलिए से कहा कि ज़रा तू डर मत, तूने मेरे मन का काम किया है। अब तू मेरी आज्ञा से स्वर्गलोक प्राप्त करेगा।

बहेलिए के जाने के बाद वहाँ श्रीकृष्ण का सारथी दारुक पहुंच गया। दारुक को देखकर श्रीकृष्ण ने कहा कि वह द्वारिका जाकर सभी को यह बताए कि पूरा यदुवंश नष्ट हो चुका है और बलराम के साथ कृष्ण भी स्वधाम लौट चुके हैं। अत: सभी लोग द्वारिका छोड़ दो, क्योंकि यह नगरी अब जल मग्न होने वाली है। मेरी माता, पिता और सभी प्रियजन इंद्रप्रस्थ को चले जाएं। यह संदेश लेकर दारुक वहाँ से चला गया। इसके बाद उस क्षेत्र में सभी देवता और स्वर्ग की अप्सराएं, यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदि आए और उन्होंने श्रीकृष्ण की आराधना की। आराधना के बाद श्रीकृष्ण ने अपने नेत्र बंद कर लिए और वे सशरीर ही अपने धाम को लौट गए।

श्रीमद भागवत के अनुसार जब श्रीकृष्ण और बलराम के स्वधाम गमन की सूचना इनके प्रियजनों तक पहुंची तो उन्होंने भी इस दुख से प्राण त्याग दिए। देवकी, रोहिणी, वसुदेव, बलरामजी की पत्नियां, श्रीकृष्ण की पटरानियाँ आदि सभी ने शरीर त्याग दिए। इसके बाद अर्जुन ने यदुवंश के निमित्त पिण्डदान और श्राद्ध आदि संस्कार किए।

इन संस्कारों के बाद यदुवंश के बचे हुए लोगों को लेकर अर्जुन इंद्रप्रस्थ लौट आए। इसके बाद श्रीकृष्ण के निवास स्थान को छोड़कर शेष द्वारिका समुद्र में डूब गई। श्रीकृष्ण के स्वधाम लौटने की सूचना पाकर सभी पाण्डवों ने भी हिमालय की ओर यात्रा प्रारंभ कर दी थी। इसी यात्रा में ही एक-एक करके पांडव भी शरीर का त्याग करते गए। अंत में युधिष्ठिर सशरीर स्वर्ग पहुंचे थे।

वानर राज बाली ही था ज़रा बहेलियाः-

संत लोग यह भी कहते हैं कि प्रभु ने त्रेता में राम के रूप में अवतार लेकर बाली को छुपकर तीर मारा था। कृष्णावतार के समय भगवान ने उसी बाली को ज़रा नामक बहेलिया बनाया और अपने लिए वैसी ही मृत्यु चुनी, जैसी बाली को दी थी।

5 - वैदिक इतिहास संक्षीप्त रामायण की कहानीः-

वैसे तो रामायण की कहानी बहुत लम्बी है परन्तु आज हम आपके सामने इस कहानी का एक संक्षिप्त रूप रेखा प्रस्तुत कर रहे हैं। रामायण श्री राम की एक अद्भुत अमर कहानी है जो हमें विचारधारा, भक्ति, कर्तव्य, रिश्ते, धर्म और कर्म को सही मायने में सिखाता है।

श्री राम अयोध्या के राजा दशरथ के जेष्ट पुत्र थे और माता सीता उनकी धर्मपत्नी थी। राम बहुत ही साहसी, बुद्धिमान और आज्ञाकारी और सीता बहुत ही सुन्दर, उदार और पुण्यात्मा थी। माता सीता की मुलाकात श्री राम से उनके स्वयंवर में हुई जो सीता माता के पिता, मिथिला के राजा जनक द्वारा संयोजित किया गया था। यह स्वयंवर माता सीता के लिए अच्छे वर की खोज में आयोजित किया गया था।

उस आयोजन में कई राज्यों के राजकुमारों और राजाओं को आमंत्रित किया गया था। शर्त यह थी की जो कोई भी शिव धनुष को उठा कर धनुष के तार को खीच सकेगा उसी का विवाह सीता से होगा। सभी राजाओं ने कोशिश किया परन्तु वे धनुष को हिला भी ना सके। जब श्री राम की बारी आई तो श्री राम ने एक ही हाथ से धनुष उठा लिया और जैस ही उसके तार को खीचने की कोशिश की वह धनुष दो टुकड़ों में टूट गया। इस प्रकार श्री राम और सीता का मिलन / विवाह हुआ।

अयोध्या राज घराने में षड्यंत्रः- अयोध्या के राजा दशरथ के तीन पत्नियाँ और चार पुत्र थे। राम सभी भाइयों में बड़े थे और उनकी माता का नाम कौशल्या था। भरत राजा दशरथ के दूसरी और प्रिय पत्नी कैकेयी के पुत्र थे। दुसरे दो भाई थे, लक्ष्मण और सत्रुघन जिनकी माता का नाम था सुमित्रा।

जब राम को एक तरफ राज तिलक करने की तैयारी हो रही थी तभी उसकी सौतेली माँ कैकेयी, अपने पुत्र भरत को अयोध्या का राजा बनाने का षड्यंत्र रच रही थी। यह षड्यंत्र बूढी मंथरा के द्वारा किया गया था। रानी कैकेयी ने एक बार राजा दशरथ की जीवन की रक्षा की थी तब राजा दशरथ ने उन्हें कुछ भी मांगने के लिए पुछा था पर कैकेयी ने कहा समय आने पर मैं मांग लूंगी।

उसी वचन के बल पर कैकेयी ने राजा दशरथ से पुत्र भरत के लिए अयोध्या का सिंघासन और राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास माँगा। श्री राम तो आज्ञाकारी थे इसलिए उन्होंने अपने सौतेली माँ कैकेयी की बातों को आशीर्वाद माना और माता सीता और प्रिय भाई लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष का वनवास व्यतीत करने के लिए राज्य छोड़ कर चले गए।

इस असीम दुख को राजा दशरथ सह नहीं पाए और उनकी मृत्यु हो गयी। कैकेयी के पुत्र भरत को जब यह बात पता चली तो उसने भी राज गद्दी लेने से इंकार कर दिया।

चौदह वर्ष का वनवासः- राम, सीता और लक्ष्मण वनवास के लिए निकल पड़े। रास्ते में उन्होंने कई असुरों का संहार किया और कई पवित्र और अच्छे लोगों से भी वे मिले। वे वन चित्रकूट में एक कुटिया बना कर रहने लगे। एक बार की बात है लंका के असुर राजा रावण की छोटी बहन शूर्पनखा ने राम को देखा और वह मोहित हो गयी।

उसने राम को पाने की कोशिश की पर राम ने उत्तर दिया–मैं तो विवाहित हूँ मेरे भाई लक्ष्मण से पूछ के देखो। तब शूर्पनखा लक्ष्मण के पास जा कर विवाह का प्रस्ताव रखने लगी पर लक्ष्मण ने साफ़ इनकार कर दिया। तब शूर्पनखा ने क्रोधित हो कर माता सीता पर आक्रमण कर दिया। यह देख कर लक्ष्मण ने चाकू से शूर्पनखा का नाक काट दिया। कटी हुई नाक के साथ रोते हुए जब शूर्पनखा लंका पहुंची तो सारी बातें जान कर रावण को बहुत क्रोध आया। उसने बाद रावण ने सीता हरण की योजना बनायीं।

सीता हरणः- योजना के तहत रावण ने मारीच राक्षश को चित्रकूट के कुटिया के पास एक सुन्दर हिरन के रूप में भेजा। जब मारीच को माता सीता ने देखा तो उन्होंने श्री राम से उस हिरण को पकड़ के लाने के लिए कहा। सीता की बात को मान कर राम उस हिरण को पकड़ने उसके पीछे-पीछे गए और लक्ष्मण को आदेश दिया की वह सीता को छोड़ कर कहीं ना जाए। बहुत पिचा करने के बाद राम ने उस हिरण को बाण से मारा। जैसे ही राम का

बाण हिरण बने मारीच को लगा वह अपने असली राक्षस रूप में आ गया और राम के आवाज़ में सीता और लक्ष्मण को मदद के लिए पुकारने लगा।

सीता ने जब राम के आवाज़ में उस राक्षश के विलाप को देखा तो वह घबरा गयी और उसने लक्ष्मण को राम की मदद के लिए वन जाने को कहा। लक्ष्मण ने सीता माता के कुटिया को चारों और से "लक्ष्मण रेखा" से सुरक्षित किया और वह श्री राम की खोज करने वन में चले गए।

योजना के अनुसार रावण एक साधू के रूप में कुटिया पहुंचा और भिक्षाम देहि का स्वर लगाने लगा। जैसे ही रावण ने कुटिया के पास लक्ष्मण रेखा पर अपना पैर रखा उसका पैर जलने लगा यह देखकर रावण ने माता सीता को बाहर आकर भोजन देने के लिए कहा। जैसे ही माता सीता लक्ष्मण रेखा से बाहर निकली रावण ने पुष्पक विमान में उनका अपहरण कर लिया।

जब राम और लक्ष्मण को यह पता चला की उनके साथ छल हुआ है तो वह कुटिया की और भागे पर वहाँ उन्हें कोई नहीं मिला। जब रावण सीता को पुष्पक विमान में लेकर जा रहा था तब बूढ़े जटायु पक्षी ने रावण से सीता माता को छुड़ाने के लिए युद्ध किया परन्तु रावण ने जटायु का पंख काट डाला। जब राम और लक्ष्मण सीता को ढूँढते हुए जा रहे थे तो रास्ते में जटायु का शारीर पड़ा था और वह राम-राम विलाप कर रहा था। जब राम और लक्ष्मण ने उनसे सीता के विषय में पुछा तो जटायु ने उन्हें बताया की रावण माता सीता को उठा ले गया है और यह बताते-बताते उसकी मृत्यु हो गयी।

राम और हनुमानः- हनुमान किसकिन्धा के राजा सुग्रीव की वानर सेना के मंत्री थे। राम और हनुमान पहली बार रिशिमुख पर्वत पर मिले जहाँ सुग्रीव और उनके साथी रहते थे। सुग्रीव के भाई बाली ने उससे उसका राज्य भी छीन लिया और उसकी पत्नी को भी बंदी बना कर रखा था।

जब सुग्रीव राम से मिले वे दोनों मित्र बन गए। जब रावण पुष्पक विमान में सीता माता को ले जा रहा था तब माता सीता ने निशानी के लिए अपने अलंकर फैक दिए थे वह सुग्रीव की सेना के कुछ वानरों को मिला था। जब उन्होंने श्री राम को वह अलंकर दिखाये तो राम और लक्ष्मण के आँखों में आंसू आगये।

श्री राम ने बाली का वध करके सुग्रीव को किसकिन्धा का राजा दोबारा बना दिया। सुग्रीव ने भी मित्रता निभाते हुए राम को वचन दिया की वह और उनकी वानर सेना भी सीता माता को रावण के चंगुल से छुडाने के लिए पूरी जी जान लगा देंगे।

वानर सेनाः- उसके बाद हनुमान, सुग्रीव, जामवंत, ने मिल कर सुग्रीव की वानर सेना का नेतृत्व किया और चारों दिशाओं में अपनी सेना को भेजा। सभी दिशाओं में ढूँढने के बाद भी कुछ ना मिलने पर ज्यादातर सेना वापस लौट आये। दक्षिण की तरफ हनुमान एक सेना लेकर गए जिसका नेतृत्व अंगद कर रहे थे। जब वे दक्षिण के समुंद तट पर पहुंचे तो वे भी उदास होकर विन्द्य पर्वत पर इसके विषय में बात कर रहे थे।

वहीँ कोने में एक बड़ा पक्षी बैठा था जिसका नाम था सम्पाती। सम्पति वानरों को देखकर बहुत खुश हो गया और भगवान् का शुक्रिया करने लगा इतना सारा भोजन देने के लिए। जब सभी वानरों को पता चला की वह उन्हें खाने की कोशिश करने वाला था तो सभी उसकी घोर आलोचना करने लगे और महान पक्षी जटायु का नाम लेकर उसकी वीरता की कहानी सुनाने लगे।

जैसे ही जटायु की मृत्यु की बात उसे पता चला वह ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने लगा। उसने वानर सेना को बताया की वह जटायु का भाई है और यह भी बताया की उसने और जटायु ने मिलकर स्वर्ग में जाकर इंद्र को भी युद्ध में हराया था। उसने यह भी बताया की सूर्य की तेज़ किरणों से जटायु की रक्षा करते समय उसके सभी पंख भी जल गए और वह उस पर्वत पर गिर गया।

सम्पाती ने वानरों से बताया कि वह बहुत ज़्यादा जगहों पर जा चूका है और उसने यह भी बताया की लंका का असुर राजा रावण ने सीता को अपहरण किया है और उसी दक्षिणी समुद्र के दूसरी ओर उसका राज्य है।

लंका की ओर हनुमान की समुद्र यात्राः- जामवंत ने हनुमान के सभी शक्तियों को ध्यान दिलाते हुए कहा कि हे हनुमान आप तो महा ज्ञानी, वानरों के स्वामी और पवन पुत्र हैं। यह सुन कर हनुमान का मन हर्षित हो गया और वे समुंद्र तट किनारे स्तिथ सभी लोगों से बोले आप सभी कंद मूल खाकर यही मेरा इंतज़ार करें जब तक में सीता माता को देखकर वापस ना लौट आऊं। ऐसा कहकर वे समुद्र के ऊपर से उड़ते हुए लंका की ओर चले गए।

रास्ते में जाते समय उन्हें सबसे पहले मेनका पर्वत आये। उन्होंने हनुमान जी से कुछ देर आराम करने के लिए कहा पर हनुमान ने उत्तर दिया–जब तक में श्री राम जी का कार्य पूर्ण ना कर लूं मेरे जीवन में विश्राम की कोई जगह नहीं है और वे उड़ाते हुए आगे चले गए।

देवताओं ने हनुमान की परीक्षा लेने के लिए सापों की माता सुरसा को भेजा। सुरसा ने हनुमान को खाने की कोशिश की पर हनुमान को वह खा ना सकी। हनुमान उसके मुख में जा कर दोबारा निकल आये और आगे चले गए।

समुंद्र में एक छाया को पकड़ कर खा लेने वाली राक्षसी रहती थी। उसने हनुमान को पकड़ लिया पर हनुमान ने उसे भी मार दिया।

हनुमान लंका दहन की कहानीः- समुद्र तट पर पहुँचने के बाद हनुमान एक पर्वत के ऊपर चढ़ गए और वहाँ से उन्होंने लंका की और देखा। लंका का राज्य उन्हें दिखा जिसके सामने एक बड़ा द्वार था और पूरा लंका सोने का बना हुआ था।

हनुमान ने एक छोटे मछर के आकार जितना रूप धारण किया और वह द्वार से अन्दर जाने लगे। उसी द्वार पर लंकिनी नामक राक्षसी रहती थी। उसने हनुमान का रास्ता रोका तो हनुमान ने एक ज़ोर का घूँसा दिया तो निचे जा कर गिरी। उसने डर के मारे हनुमान को हाथ जोड़ा और लंका के भीतर जाने दिया। हनुमान ने माता सीता को महल के हर जगह ढूँढा पर वह उन्हें नहीं मिली। थोड़ी दे बाद ढूँढने के बाद उन्हें एक ऐसा महल दिखाई दिया जिसमें एक छोटा-सा मंदिर था एक तुलसी का पौधा भी। हनुमान जी को यह देखकर अचंभे में पड गए औए उन्हें यह जानने की इच्छा हुई की आखिर ऐसा कौन है जो इन असुरों के बिच श्री राम का भक्त है। यह जानने के लिए हनुमान ने एक ब्राह्मण का रूप धारण किया और उन्हें पुकारा। विभीषण अपने महल से बाहर निकले और जब उन्होंने हनुमान को देखा तो वह बोले–हे महापुरुष आपको देख कर मेरे मन में अत्यंत सुख मिल रहा है, क्या आप स्वयं श्री राम हैं?

हनुमान ने पुछा आप कौन हैं? विभीषण ने उत्तर दिया–मैं रावण का भाई विभीषण हूँ।

यह सुन कर हनुमान अपने असली रूप में आगए और श्री रामचन्द्र जी के विषय में सभी बातें उन्हें बताया। विभीषण ने निवेदन किया-हे पवनपुत्र मुझे एक बार श्री राम से मिलवा दो। हनुमान ने उत्तर दिया–मैं श्री राम जी से ज़रूर मिलवा दूंगा परन्तु पहले मुझे यह बताये की मैं जानकी माता से कैसे मिल सकता हूँ?

अशोक वाटिका में हनुमान सीता भेटः- विभीषण ने हनुमान को बताया की रावण ने सीता माता को अशोक वाटिका में कैद करके रखा है। यह जानने के बाद हनुमान जी ने एक छोटा-सा रूप धारण किया और वह अशोक वाटिका पहुंचे। वहाँ पहुँचने के बाद उन्होंने देखा कि रावण अपने दसियों के साथ उसी समय अशोक वाटिका में-में पहुंचा और सीता माता को अपने ओर देखने के लिए साम दाम दंड भेद का उपयोग किया पर तब भी सीता जी ने एक बार भी उसकी ओर नहीं देखा। रावण ने सभी राक्षसियों को सीता को डराने के लिए कहा। पर त्रिजटा नामक एक राक्षसी ने माता सीता की बहुत मदद और देखभाल की और अन्य राक्षसियों को भी डराया जिससे अन्य सभी राक्षसी भी सीता की देखभाल करने लगे।

कुछ देर बाद हनुमान ने सीता जी के सामने श्री राम की अंगूठी डाल दी। श्री राम नामसे अंकित अंगूठी देख कर सीता माता के आँखों से ख़ुशी के अंशु निकल पड़े। परन्तु सीता माता को संदेह हुआ की कहीं यह रावण की कोई चाल तो नहीं। तब सीता माता ने पुकारा की कौन है जो यह अंगूठी ले कर आया है। उसके बाद हनुमान जी प्रकट हुए पर हनुमान जी को देखकर भी सीता माता को विश्वस नहीं हुआ। उसके बाद हनुमान जी ने मधुर वचनों के साथ रामचन्द्र के गुणों का वर्णन किया और बताया की वह श्री राम जी के दूत हैं। सीता ने व्याकुलता से श्री राम जी का हाल चाल पुछा। हनुमान जी ने उत्तर दिया–हे माते श्री राम जी ठीक हैं और वे आपको बहुत याद करते हैं। वे बहुत जल्द ही आपको लेने आयेंगे और में शीघ्र ही आपका सन्देश श्री राम जी के पास पहुंचा दूंगा।

तभी हनुमान ने सीता माता से श्री राम जी को दिखने के लिए चिह्न माँगा तो माता सीता ने हनुमान को अपने कंगन उतार कर दे दिए।

हनुमान लंका दहनः-हनुमान जी को बहुत भूख लग रहा था तो हनुमान अशोक वाटिका में लगे पेड़ों के फलों को खाने लगे। फलों को खाने के साथ-साथ हनुमान उन पेड़ों को तोड़ने लगे तभी रावण के सैनिकों ने हनुमान पर प्रहार किया पर हनुमान ने सबको मार डाला। जब रावण को इस बात का परा चला की कोई बन्दर अशोक वाटिका में उत्पात मचा रहा है तो उसने अपने पुत्र अक्षय कुमार को भेजा हनुमान का वध करने के लिए। पर हनुमान जी ने उसे क्षण भर में ऊपर पहुंचा दिया। कुछ देर बाद जब रावण को जब अपने पुत्र की मृत्यु का पता चला वह बहुत ज़्यादा क्रोधित हुआ। उसके बाद रावण ने अपने जेष्ट पुत्र मेघनाद को भेजा। हनुमान के साथ मेघनाद का बहुत ज़्यादा युद्ध हुआ परकुछ ना कर पाने के बाद मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र चला दिया। ब्रह्मास्त्र का सम्मान करते हुए हनुमान स्वयं बंधग बन गए। हनुमान को रावण की सभा में लाया गया। रावण हनुमान को देख कर हंसा और फिर क्रोधित हो कर उसने प्रश्न किया–रे वानर, तूने किस कारण अशोक वाटिका को तहस-नहस कर दिया? तूने किस कारण से मेरे सैनिकों और पुत्र का वध कर दिया क्या तुझे अपने प्राण जाने का डर नहीं है?

यह सुन कर हनुमान ने कहा–हे रावण, जिसने महान शिव धनुष को पल भर में तोड़ डाला, जिसने खर, दूषण, त्रिशिरा और बाली को मार गिराया, जिसकी प्रिय पत्नीका तुमने अपहरण किया, मैं उन्ही का दूत हूँ। मुजे भूख लग रहा था इसलिए मैंने फल खाए और तुम्हारे राक्षसों ने मुझे खाने नहीं दिया इसलिए मैंने उन्हें मार डाला। अभी भी समय है सीता माता को श्री राम को सौंप दो और क्षमा मांग लो।

रावण हनुमान की बता सुन कर हसने लगा और बोला–रे दुष्ट, तेरी मृत्यु तेरे सिर पर है। ऐसा कह कर रावण ने अपने मंत्रियों को हनुमान को मार डालने का आदेश दिया। यह सुन कर सभी मंत्री हनुमान को मारने दौड़े। तभी विभीषण वहाँ आ पहुंचे और बोले-रुको, दूत को मारना सही नहीं होगा यह निति के विरुद्ध है। कोई और भयानक दंड देना चाहिए।

सभी ने कहा बन्दर का पूंछ उसको सबसे प्यारा होता है क्यों ना तेल में कपडा डूबा कर इसकी पूंछ में बंध कर आग लगा दिया जाये। हनुमान की पूंछ पर तेल वाला कपडा बंध कर आग लगा दिया गया। जैसे ही पूंछ में

आग लगी हनुमान जी बंधन मुक्त हो कर एक छत से दुसरे में कूदते गए और पूरी सोने की लंका में आग लगा के समुद्र की और चले गए और वहाँ अपनी पूंछ पर लगी आग को बुझा दिया। वहाँ से सीधे हनुमान जी श्री राम के पास लौटे और वहाँ उन्होंने श्री राम को सीता माता के विषय में बताया और उनके कंगन भी दिखाए। सीता माता के निशानी को देख कर श्री राम भौवुक हो गए।

प्रभु राम सेतु बंधः-अब श्री राम और वानर सेना की चिंता का विषय था कैसे पूरी सेना समुद्र के दुसरे और जा सकेंगे। श्री राम जी ने समुद्र से निवेदन किया की वे रास्ता दें ताकि उनकी सेना समुद्र पार कर सके। परन्तु कई बार कहने पर भी समुद्र ने उनकी बात नहीं मानी तब राम ने लक्ष्मण से धनुष माँगा और अग्नि बाण को समुद्र पर साधा जिससे की पानी सुख जाये और वे आगे बढ़ सकें। जैसे ही श्री राम ने ऐसा किया समुद्र देव डरते हुए प्रकट हुए और श्री राम से माफ़ी मांगी और कहा हे नाथ, ऐसा ना करें आपके इस बाण से मेरे में रहते वाले सभी मछलियाँ और जीवित प्राणी का अंत हो जायेगा। श्री राम ने कहा–हे समुद्र देव हमें यह बताएँ की मेरी यह विशाल सेना इस समुद्र को कैसे पार कर सकते हैं। समुद्र देव ने उत्तर दिया–हे रघुनन्दन राम आपकी सेना में दो वानर हैं नल और नील उनके स्पर्श करके किसी भी बड़े से बड़े चीज को पानी में तैरा सकते हैं। यह कह कर समुद्र देव चले गए। उनकी सलाह के अनुसार नल और नील ने पत्थर पर श्री राम के नाम लिख कर समुद्र में फेंक के देखा तो पत्थर तैरने लगा। उसके बाद एक के बाद एक करके नल नील समुद्र में पत्थर को समुद्र में फेंकते रहे और समुद्र के अगले छोर तक पहुच गए।

लंका में श्री राम की वानर सेनाः-श्री राम ने अपनी सेना के साथ समुद्र किनारे डेरा डाला। जब इस बात का पता रावण की पत्नी मंदोदरी को पता चला तो वह घबरा गयी और उसने रावण को बहुत समझाया पर वह नहीं समझा और सभा में चले गया। रावण के भाई विभीषण ने भी रावण को सभा में समझाया और सीता माता को समान्पुर्वक श्री राम को सौंप देने के लिए कहा परन्तु यह सुन कर रावण क्रोधित हो गया और अपने ही भाई को लात मार दिया जिसके कारण विभीषण सीढियों से नीचे आ गिरे। विभीषण ने अपना राज्य छोड़ दिया और वह श्री राम के पास गए। राम ने भी ख़ुशी के साथ उन्हें स्वीकार किया और अपने डेरे में रहने की जगह दी। आखरी बार श्री राम ने बाली पुत्र अंगद कुमार को भेजा पर रावण तब भी नहीं माना।

युद्ध आरंभ हुआः- श्री राम और रावण की सेना के बिच भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में लक्ष्मण पर मेघनाद ने शक्ति बांण से प्रहार किया था जिसके कारण हनुमान जी संजीवनी बूटी लेने के लिए हिमालय पर्वत गए। परन्तु वे उस पौधे को पहेचन ना सके इसलिए वे पूरा हिमालय पर्वत ही उठा लाये थे।

इस युद्ध में रावण की सेना के श्री राम की सेना प्रसत कर देती है और अंत में श्री राम रावण के नाभि में बाण मार कर उसे मार देते हैं और सीता माता को छुड़ा लाते हैं। श्री राम विभीषण को लंका का राजा बनाते देते हैं। श्री राम माता सीता और भाई लक्ष्मण के साथ अपने राज्य 14वर्ष के वनवास से लौटते हैं

6 - वैदिक इतिहास महाभारत की सुक्ष्म कथाः-

महाभारत हिंदू संस्कृति की एक अमूल्य धरोहर है। शास्त्रों में इसे पांचवां वेद भी कहा गया है। इसके रचयिता महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास हैं। महर्षि वेदव्यास ने इस ग्रंथ के बारे में स्वयं कहा है-यन्नेहास्ति न कुत्रचित्। अर्थात जिस विषय की चर्चा इस ग्रंथ में नहीं की गई है, उसकी चर्चा अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। श्रीमद्भागवतगीता जैसा अमूल्य रत्न भी इसी महासागर की देन है।

परिचयः- महाभारत की रचना महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने की है, लेकिन इसका लेखन भगवान श्रीगणेश ने किया है। इस ग्रंथ में चंद्रवंश का वर्णन है। महाभारत में न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, ज्योतिष, युद्धनीति, योगशास्त्र, अर्थशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, कामशास्त्र, खगोलविद्या तथा धर्मशास्त्र का भी विस्तार से वर्णन किया गया हैं। यह महाकाव्य 'जय' , 'भारत' और 'महाभारत' इन तीन नामों से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ में कुल मिलाकर एक लाख श्लोक हैं, इसलिए इसे शतसाहस्त्री संहिता भी कहा जाता है। यह ग्रंथ स्मृति वर्ग में आता है। इसमें कुल 18 पर्व हैं जो इस प्रकार हैं- आदिपर्व, सभा पर्व, वनपर्व, विराट पर्व, उद्योग पर्व, भीष्म पर्व, द्रोण पर्व, कर्ण पर्व, शल्य पर्व, सौप्तिक पर्व, स्त्री पर्व, शांति पर्व, अनुशासन पर्व, आश्वमेधिक पर्व, आश्रमवासिक पर्व, मौसल पर्व, महाप्रास्थनिक पर्व व स्वर्गारोहण पर्व। आइए इस लेख में हम इन 18 पर्वों के माध्यम से जानते है सम्पूर्ण महाभारत।

1। आदिपर्वः- चंद्रवंश में शांतनु नाम के प्रतापी राजा हुए। शांतनु का विवाह देवी गंगा से हुआ। शांतनु व गंगा के पुत्र देवव्रत (भीष्म) हुए। अपने पिता की प्रसन्नता के लिए देवव्रत ने उनका विवाह सत्यवती से करवा दिया और स्वयं आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर ली। देवव्रत की इस भीषण प्रतिज्ञा के कारण ही उन्हें भीष्म कहा गया। शांतनु को सत्यवती से दो पुत्र हुए-चित्रांगद व विचित्रवीर्य। राजा शांतनु की मृत्यु के बाद चित्रांगद राजा बने। चित्रांगद के बाद विचित्रवीर्य गद्दी पर बैठे। विचित्रवीर्य का विवाह अंबिका एवं अंबालिका से हुआ। अंबिका से धृतराष्ट्र तथा अंबालिका से पांडु पैदा हुए। धृतराष्ट्र जन्म से अंधे थे, इसलिए पांडु को राजगद्दी पर बिठाया गया।

धृतराष्ट्र का विवाह गांधारी से तथा पांडु का विवाह कुंती व माद्री से हुआ। धृतराष्ट्र से गांधारी को सौ पुत्र हुए। इनमें सबसे बड़ा दुर्योधन था। पांडु को कुंती से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा माद्री से नकुल व सहदेव नामक पुत्र हुए। असमय पांडु की मृत्यु होने पर धृतराष्ट्र को राजा बनाया गया। कौरव (धृतराष्ट्र के पुत्र) तथा पांडव (पांडु के पुत्र) को द्रोणाचार्य ने शस्त्र विद्या सिखाई। एक बार जब सभी राजकुमार शस्त्र विद्या का प्रदर्शन कर रहे थे, तब कर्ण (यह कुंती का सबसे बड़ा पुत्र था, जिसे कुंती ने पैदा होते ही नदी में बहा दिया था।) ने अर्जुन से प्रतिस्पर्धा करनी चाही, लेकिन सूतपुत्र होने के कारण उसे मौका नहीं दिया गया। तब दुर्योधन ने उसे अंगदेश का राजा बना दिया।

एक बार दुर्योधन ने पांडवों को समाप्त करने के उद्देश्य से लाक्षागृह का निर्माण करवाया। दुर्योधन ने षड्यंत्रपूर्वक पांडवों को वहाँ भेज दिया। रात के समय दुर्योधन ने लाक्षागृह में आग लगवा दी, लेकिन पांडव वहाँ से बच निकले। जब पांडव जंगल में आराम कर रहे थे, तब हिंडिब नामक राक्षस उन्हें खाने के लिए आया, लेकिन भीम ने उसका वध कर दिया। हिंडिब की बहन हिडिंबा भीम पर मोहित हो गई। भीम ने उसके साथ विवाह किया। हिडिंबा को भीम से घटोत्कच नामक पुत्र हुआ। एक बार पांडव घूमते-घूमते पांचाल देश के राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर में गए। यहाँ अर्जुन ने स्वयंवर जीत कर द्रौपदी का वरण किया। जब अर्जुन द्रौपदी को अपनी माता कुंती के पास ले गए तो उन्होंने बिना देखे ही कह दिया कि पांचों भाई आपस में बांट लो। तब श्रीकृष्ण ने कहने पर पांचों भाइयों ने द्रौपदी से विवाह किया।

जब भीष्म, विदुर आदि को पता चला कि पांडव जीवित हैं तो उन्हें वापस हस्तिनापुर बुलाया गया। यहाँ आकर पांडवों ने अपना अलग राज्य बसाया, जिसका नाम इंद्रप्रस्थ रखा। एक बार नियम भंग होने के कारण अर्जुन को 12 वर्ष के वनवास पर जाना पड़ा।

वनवास के दौरान अर्जुन ने नागकन्या उलूपी अमेरिका, मणिपुर की राजकुमारी चित्रांगदा व श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा से विवाह किया। अर्जुन को सुभद्रा से अभिमन्यु तथा द्रौपदी से पांडवों को पांच पुत्र हुए। वनवास पूर्ण कर अर्जुन जब पुन: इंद्रप्रस्थ पहुंचे तो सभी बहुत प्रसन्न हुए। अर्जुन व श्रीकृष्ण के कहने पर ही मयासुर नामक दैत्य ने इंद्रप्रस्थ में एक सुंदर सभा भवन का निर्माण किया।

2। सभा पर्वः- मयासुर द्वारा निर्मित सभा भवन बहुत ही सुंदर व विचित्र था। एक बार नारद मुनि युधिष्ठिर के पास आए और उन्हें राजसूय यज्ञ करने की सलाह दी। युधिष्ठिर ने ऐसा ही किया। भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गए तथा सभी राजाओं को युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया। इसके बाद युधिष्ठिर ने समारोह पूर्वक राजसूय यज्ञ किया। इस समारोह में श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध कर दिया। युधिष्ठिर का ऐश्वर्य देखकर दुर्योधन के मन में ईष्र्या होने लगी। दुर्योधन ने पांडवों का राज-पाठ हथियाने के उद्देश्य से उन्हें हस्तिनापुर जुआ खेलने के लिए बुलाया। पांडव जुए में अपना राज-पाठ व धन आदि सबकुछ हार गए। इसके बाद युधिष्ठिर स्वयं के साथ अपने भाइयों व द्रौपदी को भी हार गए। भरी सभा में दु: शासन द्रौपदी को बालों से पकड़कर लाया और उसके वस्त्र खींचने लगा। किंतु श्रीकृष्ण की कृपा से द्रौपदी की लाज बच गई। द्रौपदी का अपमान देख भीम ने दु: शासन के हाथ उखाड़ कर उसका खून पीने और दुर्योधन की जंघा तोडऩे की प्रतिज्ञा की। यह देख धृतराष्ट्र डर गए और उन्होंने पांडवों को कौरवों के दासत्व से मुक्त कर दिया। इसके बाद धृतराष्ट्र ने पांडवों को उनका राज-पाठ भी लौटा दिया।

इसके बाद दुर्योधन ने पांडवों को दोबारा जुआ खेलने के लिए बुलाया। इस बार शर्त रखी कि जो जुए में हारेगा, वह अपने भाइयों के साथ तेरह वर्ष वन में बिताएगा, जिसमें अंतिम वर्ष अज्ञातवास होगा। इस बार भी दुर्योधन की ओर से शकुनि ने पासा फेंका तथा युधिष्ठिर को हरा दिया। शर्त के अनुसार पांडव तेरह वर्ष वनवास जाने के लिए विवश हुए और राज्य भी उनके हाथ से चला गया।

3। वन पर्वः- जुए की शर्त के अनुसार युधिष्ठिर को अपने भाइयों के साथ बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष के अज्ञातवास पर जाना पड़ा। पांडव वन में अपना जीवन बिताने लगे। वन में ही व्यासजी पांडवों से मिले तथा अर्जुन को दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए कहा। अर्जुन ने भगवान शिव से पाशुपास्त्र तथा अन्य देवताओं से भी दिव्यास्त्र प्राप्त किए। इसके लिए अर्जुन स्वर्ग भी गए। यहाँ किसी बात पर क्रोधित होकर उर्वशी नामक अप्सरा ने अर्जुन को नपुंसक होने का श्राप दे दिया।

तब इंद्र ने कहा कि अज्ञातवास के समय यह श्राप तुम्हारे लिए वरदान साबित होगा। इधर युधिष्ठिर आदि पांडव तीर्थयात्रा करते हुए बदरिका आश्रम आकर रहने लगे। यहीं गंधमादन पर्वत पर भीम की भेंट हनुमानजी से हुई। हनुमानजी ने प्रसन्न होकर भीम को वरदान दिया कि युद्ध के समय वे अर्जुन के रथ की ध्वजा पर बैठकर शत्रुओं को डराएंगे। कुछ दिनों बाद अर्जुन स्वर्ग से लौट आए। एक दिन जब द्रौपदी आश्रम में अकेली थी, तब राजा जयद्रथ (दुर्योधन की बहन दु: शला का पति) उसे बलपूर्वक उठा ले गया। पांडवों को जब पता चला तो उन्होंने उसे पकड़ लिया। जयद्रथ को दंड देने के लिए भीम ने उसका सिर मूंड दिया व पांच चोटियाँ रख कर छोड़ दिया।

एक बार यमराज ने पांडवों की परीक्षा ली। यमराज ने यक्ष बन कर भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव से अपने प्रश्नों के उत्तर जानने चाहे, लेकिन अभिमान वश इनमें से किसी ने भी यमराज के प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए। जिसके कारण यमराज ने इन सभी को मृतप्राय: कर दिया। अंत में युधिष्ठिर ने यमराज के सभी प्रश्नों के उत्तर दिए। प्रसन्न होकर यमराज ने सभी को पुनर्जीवित कर दिया।

4। विराट पर्वः- 12 वर्ष के वनवास के बाद पांडवों ने अज्ञातवास बिताने के लिए विराट नगर में रहने की योजना बनाई। सबसे पहले पांडवों ने अपने शस्त्र नगर के बाहर एक विशाल वृक्ष पर छिपा दिए। युधिष्ठिर राजा विराट के सभासद बन गए। भीम रसोइए के रूप में विराट नगर में रहने लगे। नकुल घोड़ों को देख-रेख करने लगे तथा सहदेव गायों की। अर्जुन बृहन्नला बनकर राजा विराट की पुत्री उत्तरा को नृत्य की शिक्षा देने लगे। द्रौपदी दासी बनकर राजा विराट की पत्नी की सेवा करने लगी। राजा विराट का साला कीचक द्रौपदी का रूप देखकर उस पर मोहित हो गया और उसके साथ दुराचार करना चाहा। प्रतिशोध स्वरूप भीम ने षड्यंत्रपूर्वक उसका वध कर दिया।

एक बार कौरवों ने विराट नगर पर हमले की योजना बनाई। पहले त्रिगर्तदेश के राजा सुशर्मा ने विराट नगर पर हमला किया। राजा विराट जब उससे युद्ध करने चला गया, उसी समय कौरवों ने भी विराट नगर पर हमला कर दिया। तब राजा विराट का पुत्र उत्तर बृहन्नला (अर्जुन) को सारथी बनाकर युद्ध करने आया।

उत्तर ने जब कौरवों की सेना देखी तो वह डर कर भागने लगा। उस समय अर्जुन ने उसे सारथी बनाया और स्वयं युद्ध किया। देखते ही देखते अर्जुन ने कौरवों को हरा दिया। तब तक पांडवों का अज्ञातवास समाप्त हो चुका था। अगले दिन सभी पांडव अपने वास्तविक स्वरूप में राजा विराट से मिले। पांडवों से मिलकर राजा विराट बहुत प्रसन्न हुए। राजा विराट ने अपनी पुत्री का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से करवा दिया।

5। उद्योग पर्वः- अज्ञातवास के बाद जब पांडव अपने वास्तविक स्वरूप में आए तो श्रीकृष्ण आदि सभी ने मिलकर ये निर्णय लिया कि शर्त के अनुसार अब कौरवों का पांडवों का राज्य लौटा देना चाहिए। तब पांडवों ने अपना एक दूत हस्तिनापुर भेजा, लेकिन दुर्योधन ने राज्य देने से इनकार कर दिया। भीष्म, द्रोणाचार्य आदि ने भी दुर्योधन को समझाने का प्रयास किया, लेकिन वह नहीं माना। तब पांडवों ने श्रीकृष्ण को अपना दूत बना कर भेजा, लेकिन दुर्योधन ने उनका भी अपमान कर दिया। जब कौरव व पांडवों में युद्ध होना तय हो गया तब पांडवों ने अपने सेनापति धृष्टद्युम्न (द्रौपदी का भाई) को बनाया। दुर्योधन ने अपना सेनापति पितामह भीष्म को नियुक्त किया। कौरव व पांडवों की सेनाएँ कुरुक्षेत्र में आ गईं। भीष्म पितामह ने दुर्योधन को बताया कि पांडवों की सेना में शिखंडी नाम का जो योद्धा है वह जन्म के समय एक स्त्री था इसलिए मैं उसके साथ युद्ध नहीं करूंगा। तब भीष्म पितामह ने ये भी बताया कि शिखंडी पूर्व जन्म में अंबा नामक राजकुमारी थी, जिसे मैं बलपूर्वक हर लाया था। उसी ने बदला लेने के उद्देश्य से पुनः जन्म लिया है।

6। भीष्म पर्वः- जब युद्ध प्रारंभ होने वाला था, उस समय शत्रुओं के दल में अपने परिजनों को देखकर अर्जुन हताश हो गए। तब श्रीकृष्ण ने उसे गीता का उपदेश दिया और अपना धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। देखते-ही देखते कौरव व पांडवों में घमासान युद्ध छिड़ गया। भीष्म लगातार 9 दिनों तक पांडव सेना का संहार करते रहे। तब श्रीकृष्ण ने पांडवों से कहा कि भीष्म की मृत्यु असंभव है इसलिए उन्हें युद्ध से हटाने का उपाय वे स्वयं ही बता सकते हैं। पांडवों के पूछने पर भीष्म ने बताया कि शिखंडी अगर मुझसे युद्ध करने आया तो मैं उस पर शस्त्र नहीं चलाऊंगा।

दसवें दिन के युद्ध में शिखंडी पांडवों की ओर से भीष्म पितामह के सामने आकर डट गया, जिसे देखते ही भीष्म ने अपने अस्त्रों का त्याग कर दिया। श्रीकृष्ण के कहने पर शिखंडी की आड़ लेकर अर्जुन ने अपने बाणों से भीष्म को घायल कर दिया।

अत्यधिक घायल होने के कारण भीष्म अपने रथ से नीचे गिर पड़े। शरीर में धंसे तीर ही उनके लिए शय्या बन गए। जब भीष्म ने देखा कि इस समय सूर्य दक्षिणायन है तो उन्हें प्राण नहीं त्यागे और तीरों की शय्या पर ही सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करने लगे।

7। द्रोण पर्वः- भीष्म पितामह के बाद दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को अपनी सेना का सेनापति नियुक्त किया। द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को जीवित पकडने के योजना बनाई। इसके लिए द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की और अर्जुन को युद्धभूमि से दूर ले गए। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु चक्रव्यूह में घुस गया और वीरतापूर्वक लड़ते-लड़ते मृत्यु को प्राप्त हुआ। तब यह बात अर्जुन को पता चली तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की क्योंकि जयद्रथ ने अभिमन्यु के चक्रव्यूह में प्रवेश करने के बाद उसका मार्ग बंद कर दिया था। युद्ध के चौदहवें दिन अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते हुए जयद्रथ का वध कर दिया। भीम का पुत्र घटोत्कच भी अपनी माया से युद्ध

करते हुए कौरवों का विनाश करने लगा। जब दुर्योधन ने देखा कि यदि घटोत्कच को रोका न गया तो ये आज ही कौरव सेना को हरा देगा, तब उसने कर्ण से उसे रोकने के लिए कहा।

कर्ण ने अपनी दिव्य शक्ति, जो उसने अर्जुन के वध के लिए बचा रखी थी, का प्रहार घटोत्कच पर कर उसका वध कर दिया। युद्ध के पंद्रहवें दिन धृष्टद्युम्न ने षड्यंत्रपूर्वक द्रोणाचार्य का वध कर दिया। जब यह बात अश्वत्थामा को पता चली तो उसने नारायण अस्त्र का प्रहार किया, लेकिन श्रीकृष्ण के कारण पांडव बच गए।

8। कर्ण पर्वः- द्रोणाचार्य के बाद दुर्योधन ने कर्ण को सेनापति बनाया। दो दिनों तक कर्ण ने पराक्रमपूर्वक पांडवों की सेना का विनाश किया। सत्रहवे दिन कर्ण राजा शल्य को अपना सारथि बना कर युद्ध करने आया। कर्ण जब अर्जुन से युद्ध कर रहा था उस समय भीम कौरव सेना का नाश कर रहा था। भीम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हुए दु: शासन के दोनों हाथ उखाड़ दिए। यह देख कर्ण ने युधिष्ठिर को घायल कर दिया। जब यह बात अर्जुन को पता चली तो वह कर्ण से युद्ध करने आए। अर्जुन और कर्ण के बीच भयंकर युद्ध होने लगा। तभी अचानक कर्ण के रथ का पहिया जमीन में धंस गया। जब कर्ण अपने रथ का पहिया जमीन से निकालने के लिए उतरे, उसी समय अर्जुन ने उनका वध कर दिया।

9। शल्य पर्वः- कर्ण की मृत्यु के बाद कृपाचार्य ने दुर्योधन को पांडवों से संधि करने के लिए समझाया, लेकिन वह नहीं माना। अगले दिन दुर्योधन ने राजा शल्य को सेनापति बनाया। राजा शल्य सेनापति बनते ही पांडवों की सेना पर टूट पड़े। यह युद्ध का 18वां दिन था। राजा शल्य ने युधिष्ठिर को बीच भयंकर युद्ध हुआ। अंत में युधिष्ठिर ने राजा शल्य का वध कर दिया। यह देख कौरव सेना भागने लगी। उसी समय सहदेव ने शकुनि तथा उसके पुत्र उलूक का वध कर दिया। यह देख दुर्योधन रणभूमि से भाग कर दूर एक सरोवर में जाकर छिप गया। पांडवों को जब पता चला कि दुर्योधन सरोवर में छिपा है तो उन्होंने जाकर उसे युद्ध के लिए ललकारा। दुर्योधन और भीम में भयंकर युद्ध हुआ। अंत में भीम ने दुर्योधन को पराजित कर दिया और मरणासन्न अवस्था में छोड़कर वहाँ से चले गए।

उस समय कौरवों के केवल तीन ही महारथी बचे थे-अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा। संध्या के समय जब उन्हें पता चला कि दुर्योधन मरणासन्न अवस्था में सरोवर के किनारे पड़े हैं, तो वे तीनों वहाँ पहुंचे। दुर्योधन उन्हें देखकर अपने अपमान से क्षुब्ध होकर विलाप कर रहा था। अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञा की कि मैं चाहे जैसे भी हो, पांडवों का वध अवश्य करूंगा। दुर्योधन ने वहीं अश्वत्थामा को सेनापति बना दिया।

10। सौप्तिक पर्वः- अश्वत्थामा, कृपाचार्य व कृतवर्मा रात के अंधेरे में पांडवों के शिविर में गए, लेकिन उन्हें ये नहीं पता था कि उस समय पांडव अपने शिविर में नहीं हैं। रात में उचित अवसर देखकर अश्वत्थामा हाथ में तलवार लेकर पांडवों के शिविर में घुस गया, उसने कृतवर्मा और कृपाचार्य से कहा कि यदि कोई शिविर से जीवित निकले तो तुम उसका वध कर देना। अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न, शिखंडी, उत्तमौजा आदि वीरों के साथ द्रौपदी के पांचों पुत्रों का भी वध कर दिया और शिविर में आग लगा दी।

जब यह बात अश्वत्थामा ने जाकर दुर्योधन को बताई तो वह उसके मन को शांति मिली और तभी उसके प्राण पखेरु उड़ गए। इस प्रकार दुर्योधन का अंत हो गया। जब पांडवों को पता चला कि अश्वत्थामा ने छल पूर्वक सोते हुए हमारे पुत्रों व परिजनों का वध कर दिया है तो उन्हें बहुत क्रोध आया। पांडव अश्वत्थामा को ढूंढने निकल पड़े। अश्वत्थामा को ढूंढते-ढूंढते पांडव महर्षि व्यास के आश्रम तक आ गए। तभी उन्हें यहाँ अश्वत्थामा दिखाई दिया। पांडवों को आता देख अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया।

उससे बचने के लिए अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र चलाया। दोनों अस्त्रों को टकराव से सृष्टि का नाश होने लगा। तभी महर्षि वेदव्यास ने अर्जुन और अश्वत्थामा को अपने-अपने शस्त्र लौटाने के लिए कहा। अर्जुन ने ऐसा ही किया किंतु अश्वत्थामा को अस्त्र लौटाने का विद्या नहीं आती थी। तब उसने अपने अस्त्र की दिशा बदल कर अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ की ओर कर दी। ताकि पांडवों के वंश का नाश हो जाए। तब श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा को सदियों तक पृथ्वी पर भटकते रहने का श्राप दिया और उसके मस्तक की मणि निकाल ली।

11। स्त्री पर्वः- जब कौरवों की हार और दुर्योधन की मृत्यु के बारे में धृतराष्ट्र, गांधारी आदि को पता चला तो हस्तिनापुर के महल में शोक छा गया। युद्ध में मृत्यु को प्राप्त वीरों की पत्नियाँ बिलख-बिलख कर रोने लगी। विदुर तथा संजय ने राजा धृतराष्ट्र को सांत्वना दी। अपने पुत्रों का संहार देखकर धृतराष्ट्र बेहोश हो गए। तब महर्षि वेदव्यास ने आकर उन्हें समझाया और सांत्वना प्रदान की। विदुरजी के कहने पर धृतराष्ट्र, गांधारी आदि कुरुकुल की स्त्रियाँ कुरुक्षेत्र चली गईं। कुरुक्षेत्र में आकर श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र को समझाया तथा पांडव भी उनसे मिलने आए। धृतराष्ट्र ने कहा कि वह भीम को गले लगाना चाहते हैं जिसने अकेले ही मेरे पुत्रों को मार दिया। श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि धृतराष्ट्र के मन में भीम के प्रति द्वेष है। इसलिए उन्होंने पहले ही भीम की लोहे की मूर्ति सामने खड़ी कर दी। धृतराष्ट्र ने उस मूर्ति को हृदय से लगाया तथा इतनी ज़ोर से दबाया कि वह चूर्ण हो गई। धृतराष्ट्र भीम को मरा समझकर रोने लगे, तब श्रीकृष्ण ने कहा कि वह भीम नहीं था, भीम की मूर्ति थी। यह जानकर धृतराष्ट्र बड़े लज्जित हुए।

श्रीकृष्ण पांडवों के साथ गांधारी के पास पहुंचे। वह दुर्योधन के शव से लिपट-लिपट कर रो रही थी। गांधारी ने श्रीकृष्ण को शाप दिया कि जिस तरह तुमने हमारे वंश का नाश कराया है, उसी तरह तुम्हारा भी परिवार नष्ट हो जाएगा। धृतराष्ट्र की आज्ञा से कौरव तथा पांडव वंश के सभी मृतकों का दाह-संस्कार कराया।

12। शान्ति पर्वः- मृतकों का अंतिम संस्कार करने के बाद युधिष्ठिर आदि सभी एक महीने तक गंगा तट पर ही रुके। इसके बाद सर्वसम्मति से युधिष्ठिर का राज्याभिषेक किया गया।

राज्याभिषेक होने के बाद युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को अलग-अलग दायित्व दिए तथा विदुर, संजय और युयुत्सु को धृतराष्ट्र की सेवा में रहने के लिए कहा। इसके बाद श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को बाणों की शय्या पर लेटे भीष्म पितामह के पास ले गए। यहाँ भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर के धर्म, राजनीति, राजकार्य व धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि जुड़े अनेक प्रश्नों के उत्तर दिए।

13। अनुशासन पर्वः- इस पर्व में भी भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को न्यायपूर्वक शासन करने का उपदेश दिया। सूर्य के उत्तरायण होने के बाद भीष्म अपनी इच्छा से मृत्यु का वरण करते हैं। पांडव पूरे विधि-विधान से भीष्म पितामह का अंतिम संस्कार करते हैं पुनः हस्तिनापुर लौट आते हैं।

14। आश्वमेधिक पर्वः- पितामह भीष्म की मृत्यु से युधिष्ठिर जब बहुत व्याकुल हो गए, तब महर्षि वेदव्यास युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने की सलाह देते हैं। तब युधिष्ठिर कहते हैं कि इस समय यज्ञ के लिए मेरे पास पर्याप्त धन नहीं है, तब महर्षि वेदव्यास ने बताया कि सत्ययुग में राजा मरुत्त थे। उनका धन आज भी हिमालय पर रखा है, यदि तुम वह धन ले आओ तो अश्वमेध यज्ञ कर सकते हो। युधिष्ठिर ऐसा ही करने का निर्णय करते हैं। शुभ मुहूर्त देखकर युधिष्ठिर अपने भाइयों व सेना के साथ राजा मरुत्त का धन लेने हिमालय जाते हैं। जब पांडव धन ला रहे होते हैं, उसी समय अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा एक मृत शिशु को जन्म देती है। जब यह बात श्रीकृष्ण को पता चलती है तो वह उस मृत शिशु को जीवित कर देते हैं। श्रीकृष्ण उस बालक का नाम परीक्षित रखते हैं।

जब पांडव धन लेकर लौटते हैं और उन्हें परीक्षित के जन्म का समाचार मिलता है तो वे बहुत प्रसन्न होते हैं। इसके बाद राजा युधिष्ठिर समारोहपूर्वक अश्वमेध यज्ञ प्रारंभ करते हैं। युधिष्ठिर अर्जुन को यज्ञ के घोड़े का रक्षक नियुक्त करते हैं। अंत में बिना किसी रूकावट के राजा युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ पूर्ण होता है।

15। आश्रमवासिक पर्वः- लगभग 15 वर्षों तक युधिष्ठिर के साथ रहने के बाद धृतराष्ट्र के मन में वैराग्य की उत्पत्ति होती है। तब धृतराष्ट्र के साथ गांधारी, कुंती, विदुर व संजय भी वन में तप करने चले जाते हैं। वन में रहते हुए धृतराष्ट्र, गांधारी व कुंती घोर तप करते हैं और विदुर तथा संजय इनकी सेवा करते थे। बहुत समय बीतने पर राजा युधिष्ठिर सपरिवार धृतराष्ट्र, गांधारी व अपनी माता कुंती से मिलने आते हैं। उसी समय वहाँ महर्षि वेदव्यास भी आते हैं। महर्षि वेदव्यास अपने तपोबल से एक रात के लिए युद्ध में मारे गए सभी वीरों को जीवित करते हैं। रात भर अपने परिजनों के साथ रहकर वे सभी पुन: अपने-अपने लोकों में लौट जाते हैं। कुछ दिन वन में रहकर युधिष्ठिर आदि सभी पुन: हस्तिनापुर लौट आते हैं। इस घटना के करीब दो वर्ष बाद नारद मुनि युधिष्ठिर के पास आते हैं और बताते हैं कि धृतराष्ट्र, गांधारी व कुंती की मृत्यु जंगल में लगी आग के कारण हो गई है। यह सुनकर पांडवों को बहुत दुख होता है और वे धृतराष्ट्र, गांधारी व कुंती की आत्मशांति के लिए तर्पण आदि करते हैं।

16। मौसल पर्वः- एक दिन महर्षि विश्वामित्र, कण्व आदि ऋषि द्वारिका आते हैं। वहाँ श्रीकृष्ण के पुत्र व अन्य युवक उनका अपमान कर देते हैं। क्रोधित होकर मुनि यदुवंशियों का नाश होने का श्राप देते हैं। एक दिन जब सभी यदुवंशी प्रभास क्षेत्र में एकत्रित होते हैं, तब वहाँ वे आपस में ही लड़कर मर जाते हैं। बलराम भी योगबल से अपना शरीर त्याग देते हैं। तब श्रीकृष्ण वन में एक पेड़ के नीचे बैठे होते हैं, तब एक शिकारी उनके पैर पर बाण चला देता है, जिससे श्रीकृष्ण भी शरीर त्याग कर स्वधाम चले जाते हैं। जब यह बात अर्जुन को पता चलती है तो वह द्वारिका आते हैं और यदुवंशियों के परिवार को अपने साथ हस्तिनापुर ले जाते हैं। मार्ग में उन पर लुटेरे हमला कर देते हैं और बहुत-सा धन व स्त्रियों को अपने साथ ले जाते हैं। यह देखकर अर्जुन बहुत लज्जित होते हैं। जब अर्जुन ये बात जाकर महर्षि वेदव्यास को बताते हैं तो वे पांडवों को परलोक यात्रा पर जाने के लिए कहते हैं।

17। महाप्रास्थानिक पर्वः- श्रीकृष्ण की मृत्यु के बाद पांडव भी अत्यंत उदासीन रहने लगे तथा उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने हिमालय की यात्रा करने का निश्चय किया। अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राजगद्दी सौंपकर युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों और द्रौपदी के साथ चले गए तथा हिमालय पहुंचे। उनके साथ एक कुत्ता भी था। कुछ दूर चलने पर द्रौपदी गिर पड़ी। इसके बाद नकुल, सहदेव, अर्जुन व भीम भी गिर गए। युधिष्ठिर तथा वह कुत्ता आगे बढ़ते रहे। युधिष्ठिर थोड़ा आगे बढ़े ही थे कि स्वयं देवराज इंद्र अपने रथ पर सवार होकर युधिष्ठिर को सशरीर स्वर्ग ले जाने आए। तब युधिष्ठिर ने कहा कि यह कुत्ता भी मेरे साथ यहाँ तक आया है। इसलिए यह भी मेरे साथ स्वर्ग जाएगा। देवराज इंद्र कुत्ते को अपने साथ ले जाने को तैयार नहीं हुए तो युधिष्ठिर ने भी स्वर्ग जाने से इनकार कर दिया। युधिष्ठिर को अपने धर्म में स्थित देख वह यमराज अपने वास्तविक स्वरूप में आ गए (कुत्ते के रूप में यमराज ही युधिष्ठिर के साथ थे) । इस प्रकार देवराज इंद्र युधिष्ठिर को सशरीर स्वर्ग ले गए।

18। स्वर्गारोहण पर्वः- देवराज इंद्र युधिष्ठिर को स्वर्ग ले गए, तब वहाँ उन्हें दुर्योधन तो दिखाई दिया, लेकिन अपने भाई नजर नहीं आए। तब युधिष्ठिर ने इंद्र से कहा कि मैं वहीं जाना चाहता हूं, जहाँ मेरे भाई हैं। तब इंद्र ने उन्हें एक बहुत ही दुर्गम स्थान पर भेज दिया। वहाँ जाकर युधिष्ठिर ने देखा कि भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव व द्रौपदी वहाँ नरक में हैं तो उन्होंने भी उसी स्थान पर रहने का निश्चय किया। तभी वहाँ देवराज इंद्र आते हैं और बताते हैं कि तुमने अश्वत्थामा के मरने की बात कहकर छल से द्रोणाचार्य को उनके पुत्र की मृत्यु का विश्वास दिलाया था।

इसी के परिणाम स्वरूप तुम्हें भी छल से ही कुछ देर नरक देखना पड़ा। इसके बाद युधिष्ठिर देवराज इंद्र के कहने पर गंगा नदी में स्नान कर, अपना शरीर त्यागते हैं और इसके बाद उस स्थान पर जाते हैं, जहाँ उनके चारों

भाई, कर्ण, भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रौपदी आदि आनंदपूर्वक विराजमान थे (वह भगवान का परमधाम था) । युधिष्ठिर को वहाँ भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं। इस प्रकार महाभारत कथा का अंत होता है।

महाभारत के कुछ सुने-अनसुने आख्यानः- यहाँ से एक बार वुद्धि में बिकार आने के कारण देवताओं के स्वर्ग पर बिपत्ति के बादल मंडराने लगा। यहाँ कारण एक ऋषि और एक चक्रवर्ती राजा के कारण हुआ। जैसा कि महाभारत में पांडवों को भयंकर बिपत्तियों और भयानक युद्ध का सामना करना पड़ा था। ऐसा ही एक बार राजा नल दमयन्ती के साथ हुआ था जब मानव बुद्धि में बिकार आता है तब सूर्य के प्रकाश में भी रास्ता बड़ी मुस्किल से दिखाइ देता है।

हम सब मानते है कि शकुनि कौरवों का सबसे बड़ा हितैषी था जबकि है इसका बिलकुल विपरीत। शकुनि ही कौरवों के विनाश का सबसे बड़ा कारण था, उसने ही कौरवों का वंश समाप्त करने के लिए महाभारत के युद्ध की पृष्टभूमि तैयार की थी। पर उसने ऐसा किया क्यों? इसका उत्तर जानने के लिए हमे ध्रतराष्ट्र और गांधारी के विवाह से कथा प्रारम्भ करनी पड़ेगी।

शकुनि ही थे कौरवों के विनाश का कारण:- एक साधु के कहे अनुसार गांधारी का विवाह पहले एक बकरे के साथ किया गया था। बाद में उस बकरे की बलि दे दी गयी थी। यह बात गांधारी के विवाह के समय छुपाई गयी थी। जब ध्रतराष्ट्र को इस बात का पता चला तो उसने गांधार नरेश सुबाला और उसके 100 पुत्रों को कारावास मैं डाल दिया और काफी यातनाएँ दी।

एक-एक करके सुबाला के सभी पुत्र मरने लगे। उन्हें खाने के लिये सिर्फ़ मुट्ठी भर चावल दिये जाते थे। सुबाला ने अपने सबसे छोटे बेटे शकुनि को प्रतिशोध के लिये तैयार किया। सब लोग अपने हिस्से के चावल शकुनि को देते थे ताकि वह जीवित रह कर कौरवों का नाश कर सके। मृत्यु से पहले सुबाला ने ध्रतराष्ट्र से शकुनि को छोड़ने की बिनती की जो ध्रतराष्ट्र ने मान ली। सुबाला ने शकुनि को अपनी रीढ़ की हड्डी के पासे बनाने के लिये कहा, वही पासे कौरव वंश के नाश का कारण बने। शकुनि ने हस्तिनापुर में सबका विश्वास जीता और 100 कौरवों का अभिवावक बना। उसने ना केवल दुर्योधन को युधिष्ठिर के खिलाफ भड़काया बल्कि महाभारत के युद्ध का आधार भी बनाया।

एक वरदान के कारण द्रोपदी बनी थी पांच पतियों की पत्नी:- द्रौपदी अपने पिछले जन्म मैं इन्द्रसेना नाम की ऋषि पत्नी थी। उसके पति संत मौद्गल्य का देहांत जल्दी ही हो गया था। अपनी इच्छाओं की पूर्ति की लिये उसने भगवान शिव से प्रार्थना की। जब शिव उसके सामने प्रकट हुए तो वह घबरा गयी और उसने 5 बार अपने लिए वर मांगा। भगवान शिव ने अगले जन्म मैं उसे पांच पति दिये।

एक श्राप के कारण धृतराष्ट्र जन्मे थे अंधे:- धृतराष्ट्र अपने पिछले जन्म में एक बहुत दुष्ट राजा था। एक दिन उसने देखा कि नदी में एक हंस अपने बच्चों के साथ आराम से विचरण कर रहा था। उसने आदेश दिया की उस हंस की आँख फोड़ दी जायें और उसके बच्चों को मार दिया जाये। इसी वजह से अगले जन्म में वह अंधा पैदा हुआ और उसके पुत्र भी उसी तरह मृत्यु को प्राप्त हुये जैसे उस हंस के।

अभिमन्यु था कालयवन राक्षस की आत्मा:- कहा जाता हे की अभिमन्यु एक कालयवन नामक राक्षस की आत्मा थी। कृष्ण ने कालयवन का वध कर, उसकी आत्मा को अपने अंगवस्त्र मैं बांध लिया था। वह उस वस्त्र को अपने साथ द्वारिका ले गये और एक अलमारी में रख दिया। सुभद्रा (अर्जुन की पत्नी) ने गलती से जब वह अलमारी खोली तो एक ज्योति उसके गर्भ मैं आगयी और वह बेहोश हो गयी। इसी वजह से अभिमन्यु को चक्रव्यूह भेदने का सिर्फ़ आधा ही तरीका बताया गया था।

एकलव्य ही बना था द्रोणाचार्ये की मृत्यु का कारण:- एकलव्य देवाश्रवा का पुत्र था। वह जंगल में खो गया था और उसको एक निषाद हिरण्यधनु ने बचाया था। एकलव्य रुक्मणी स्वंयवर के समय अपने पिता की जान बचाते हुए मारा गया। उसके इस बलिदान से प्रसन्न होकर श्री कृष्ण ने उसे वरदान दिया की वह अगले जन्म में द्रोणाचर्य से बदला ले पायेगा। अपने अगले जन्म में एकलव्य द्रष्टद्युम्न बनके पैदा हुआ और द्रोण की मृत्यु का कारण बना।

पाण्डु की इच्छा अनुसार पांडवो ने खाया था अपने पिता के मृत शरीर को:- पाण्डु ज्ञानी थे। उनकी अंतिम इच्छा थी की उनके पांचो बेटे उनके म्रत शरीर को खायैं ताकि उन्होंने जो ज्ञान अर्जित किया वह उनके पुत्रों मैं चला जाये। सिर्फ़ सहदेव ने पिता की इच्छा का पालन करते हुए उनके मस्तिष्क के तीन हिस्से खाये। पहले टुकड़े को खाते ही सहदेव को इतिहास का ज्ञान हुआ, दूसरे टुकड़े को खाने पर वर्तमान का और तीसरे टुकड़े को खाते ही भविष्य का। हालांकि ऐसी मान्यता भी है कि पांचो पांडवो ने ही मृत शरीर को खाया था पर सबसे ज़्यादा हिस्सा सहदेव ने खाया था।

कुरुक्षेत्र में आज भी है मिट्टी अजीब:- कुरुक्षेत्र में एक जगह है, जहाँ माना जाता है कि महाभारत का युद्ध हुआ था। उस जगह से कुछ 30 किलोमीटर के दायरे में मिट्टी संरचना बहुत अलग है। वैज्ञानिक समझ नहीं पा रहे है कि यह कैसे संभव है। क्योंकि इस तरह की मिट्टी सिर्फ़ तब हो सकती है अगर उस जगह पर बहुत ज़्यादा तेज़ गर्मी हो। बहुत से लोगों का मानना है कि लड़ाई की वजह से ही मिट्टी का परिवर्तन बदलाव हुआ है।

श्री कृष्ण ने ले लिया था बर्बरीक का शीश दान मेः- बर्बरीक भीम का पोता और घटोत्कच का पुत्र था। बर्बरीक को कोई नहीं हरा सकता था क्योंकि उसके पास कामाख्या देवी से प्राप्त हुए तीन तीर थे, जिनसे वह कोई भी युद्ध जीत सकता था। पर उसने शपथ ली थी की वह सिर्फ़ कमज़ोर पक्ष के लिये ही लड़ेगा। अब चुकी बर्बरीक जब वहाँ पहुंचा तब कौरव कमजोर थे इसलिए उसका उनकी तरफ से लड़ना तय था। जब यह बात श्री कृष्ण को पता चली तो उन्होंने उसका शीश ही दान में मांग लिया। तथा उसे वरदान दिया की तू कलयुग में मेरे नाम से जाना जाएगा। इसी बर्बरीक का मंदिर राजस्थान के सीकर जिले के खाटूश्यामजी में है जहाँ उनकी बाबा श्याम के नाम से पूजा होती है।

हर योद्धा का अलग था शंख:- सभी योधाओं के शंख बहुत शक्तिशाली होते थे। भागवत गीता के एक श्लोक में सभी शंखों के नाम हैं। अर्जुन के शंख का नाम देवदत्त था। भीम के शंख का नाम पौंड्रा था, उसकी आवाज़ से कान से सुनना बंद हो जाता था। कृष्णा के शंख का नाम पांचजन्य, युधिष्ठिर के शंख का नाम अनंतविजया, सहदेव के शंख का नाम पुष्पकौ और नकुल के शंख का नाम सुघोशमनी था।

अर्जुन एक बार और गए थे वनवास पर:- एक बार कुछ डाकुओं का पीछा करते हुए अर्जुन गलती से युधिष्ठिर और द्रौपदी के कमरे में दाखिल हो गया। अपनी गलती की सज़ा के लिये वह 12 साल के वनवास के लिये निकल गया। उस दौरान अर्जुन ने तीन विवाह किये–चित्रांगदा (मणिपुरा) , उलूपी (नागा) और सुभद्रा (कृष्ण की बहन) । इसी नाग कन्या उलूपी से उसे एक पुत्र हुआ जिसका नाम इरावन (अरावन) था। महाभारत के युद्ध में जब एक बार एक राजकुमार की स्वैच्छिक नर बलि की ज़रूरत पड़ी तो इरावन ने ही अपनी बलि दी थी। इरावन की तमिलनाडु में एक देवता के रूप में पूजा होती है तथा हिंजड़ों की उनसे शादी होती है।

यह कथा पांडव कुल के अंतिम सम्राट जनमेजय (अर्जुन के प्रपौत्र) से जुडी है। जनमेजय ने एक बार पृथ्वी से सांपो का अस्तित्व मिटाने के लिए सर्प मेध यज्ञ किया था जिसमे पृथ्वी पर उपस्तिथ लगभग सभी सांप समाप्त हो गए थे। हालंकि अंत में अस्तिका मुनि के हस्तक्षेप के कारण सांपो का सम्पूर्ण विनाश होने से रह गया था, अन्यथा आज

पृथ्वी पर सांपो का अस्तित्व नहीं होता। आइये जानते है कौन थे जनमेजय और क्यों उन्होंने सांपो के सम्पूर्ण विनाश की प्रतिज्ञा ली थी?

राजा परीक्षित को ऋषि ने दिया शापः- महाभारत के युद्ध के बाद कुछ सालों तक पांडवों ने हस्तिनापुर पर राज किया। लेकिन जब वह राजपाठ छोड़कर हिमालय जाने लगे तो राज का जिम्मा अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को दे दिया गया। परीक्षित ने पांडवों की परंपरा को आगे बढ़ाया। लेकिन यहाँ पर विधाता कोई और खेल, खेल रहा था। एक दिन मन उदास होने पर राजा परीक्षित शिकार के लिए जंगल गए थे। शिकार खेलते-खेलते वह ऋषि शमिक के आश्रम से होकर गुजरे।

ऋषि उस वक्त ब्रह्म ध्यान में आसन लगा कर बैठे हुए थे। उन्होंने राजा की ओर ध्यान नहीं दिया। इस पर परीक्षित को बहुत तेज गुस्सा आया और उन्होंने ऋषि के गले में एक मरा हुआ सांप डाल दिया। जब ऋषि का ध्यान हटा तो उन्हें भी बहुत गुस्सा आया और उन्होंने राजा परीक्षित को शाप दिया कि जाओ तुम्हारी मौत सांप के काटने से ही होगी। राजा परीक्षित ने इस शाप से मुक्ति के लिए तमाम कोशिशे की लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ।

कैसे हुई राजा परीक्षित की मौतः- राजा परीक्षित ने हर मुमकिन कोशिश की कि उनकी मौत सांप के डसने से न हो। उन्होंने सारे उपाय किए ऐसी जगह पर घर बनवाया जहाँ परिंदा तक पर न मार सके। लेकिन ऋषि का शाप झूठा नहीं हो सकता था। जब चारों तरफ से राजा परीक्षित ने अपने आपको सुरक्षित कर लिया तो एक दिन एक ब्राह्मण उनसे मिलने आए। उपहार के तौर पर ब्राह्मण ने राजा को फूल दिए और परीक्षित को डसने वला वह काल सर्प 'तक्षक' उसी फूल में एक छोटे कीड़े की शक्ल में बैठा था। तक्षक सांपो का राजा था। मौका मिलते ही उसने सर्प का रूप धारण कर लिया और राज परीक्षित को डस लिया।

राजा परीक्षित की मौत के बाद राजा जनमेजय हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठे। जनमेजय पांडव वंश के आखिरी राजा थे।

राजा जनमेजय का सर्प मेध यज्ञः- जनमेजय को जब अपने पिता की मौत की वजह का पता चला तो उसने धरती से सभी सांपों के सर्वनाश करने का प्रण ले लिया और इस प्रण को पूरा करने के लिए उसने सर्पमेध यज्ञ का आयोजन किया। इस यज्ञ के प्रभाव से ब्रह्मांड के सारे सांप हवन कुंड में आकर गिर रहे थे। लेकिन सांपों का राजा तक्षक, जिसके काटने से परीक्षित की मौत हुई थी, खुद को बचाने के लिए सूर्य देव के रथ से लिपट गया और उसका हवन कुंड में गिरने का अर्थ था सूर्य के अस्तित्व की समाप्ति जिसकी वजह से सृष्टि की गति समाप्त हो सकती थी।

कैसे खत्म हुआ सर्प मेध यज्ञः- सूर्यदेव और ब्रह्माण्ड की रक्षा के लिए सभी देवता जनमेजय से इस यज्ञ को रोकने का आग्रह करने लगे लेकिन जनमेजय किसी भी रूप में अपने पिता की हत्या का बदला लेना चाहता था। जनमेजय के यज्ञ को रोकने के लिए अस्तिका मुनि को हस्तक्षेप करना पड़ा, जिनके पिता एक ब्राह्मण और माँ एक नाग कन्या थी। अस्तिका मुनि की बात जनमेजय को माननी पड़ी और सर्पमेध यज्ञ को समाप्त कर तक्षक को मुक्त करना पड़ा।

7 - वैदिक ऋषियों का सामान्य परिचय

1 महर्षि व्यास का योगदान

व्यास अथवा वेदव्यास हिंदू धर्म ग्रंथों के अनुसार भगवान नारायण के ही कलावतार थे। व्यास जी के पिता का नाम पराशर ऋषि तथा माता का नाम सत्यवती था। जन्म लेते ही इन्होंने अपने पिता-माता से जंगल में जाकर तपस्या करने की इच्छा प्रकट की। प्रारम्भ में इनकी माता सत्यवती ने इन्हें रोकने का प्रयास किया, किन्तु अन्त में इनके माता के स्मरण करते ही लौट आने का वचन देने पर उन्होंने इनको वन जाने की आज्ञा दे दी। प्रत्येक द्वापर युग में विष्णु व्यास के रूप में अवतरित होकर वेदों के विभाग प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार अट्ठाईस बार वेदों का विभाजन किया गया। पहले द्वापर में स्वयं ब्रह्मा वेदव्यास हुए, दूसरे में प्रजापति, तीसरे द्वापर में शुक्राचार्य, चौथे में बृहस्पति वेदव्यास हुए. इसी प्रकार सूर्य, मृत्यु, इन्द्र, धनजंय, कृष्ण द्वैपायन अश्वत्थामा आदि अट्ठाईस वेदव्यास हुए. समय-समय पर वेदों का विभाजन किस प्रकार से हुआ, इसके लिए यह एक उदाहरण प्रस्तुत है। कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने ब्रह्मा की प्रेरणा से चार शिष्यों को चार वेद पढ़ाये-

मुनि पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद तथा सुमंतु को अथर्ववेद पढ़ाया।

व्यास का अर्थ है। यह उपाधि अनेक पुराने ग्रन्थकारों को प्रदान की गयी है, किन्तु विशेषकर वेदव्यास उपाधि वेदों को व्यवस्थित रूप प्रदान करने वाले उन महर्षि को दी गयी है जो चिरंजीव होने के कारण 'आश्वत' कहलाते हैं। यही नाम महाभारत के संकलनकर्ता, वेदान्तदर्शन के स्थापनकर्ता तथा पुराणों के व्यवस्थापक को भी दिया गया है। ये सभी व्यक्ति वेदव्यास कहे गये है। विद्वानों में इस बात पर मतभेद है कि ये सभी एक ही व्यक्ति थे अथवा विभिन्न। भारतीय परम्परा इन सबको एक ही व्यक्ति मानती है। महाभारतकार व्यास ऋषि पराशर एवं सत्यवती के पुत्र थे, ये साँवले रंग के थे तथा यमुना के बीच स्थित एक द्वीप में उत्पन्न हुए थे। अतएव ये साँवले रंग के कारण 'कृष्ण' तथा जन्मस्थान के कारण 'द्वैपायन' कहलाये। इनकी माता ने बाद में शान्तनु से विवाह किया, जिनसे उनके दो पुत्र हुए, जिनमें बड़ा चित्रांगद युद्ध में मारा गया और छोटा विचित्रवीर्य संतानहीन मर गया। कृष्ण द्वैपायन ने धार्मिक तथा वैराग्य का जीवन पसंद किया, किन्तु माता के आग्रह पर इन्होंने विचित्रवीर्य की दोनों सन्तानहीन रानियों द्वारा नियोग के नियम से दो पुत्र उत्पन्न किये जो धृतराष्ट्र तथा पाण्डु कहलाये, इनमें तीसरे विदुर भी थे। पुराणों में अठारह व्यासों का उल्लेख है जो ब्रह्मा या विष्णु के अवतार कहलाते हैं एवं पृथ्वी पर विभिन्न युगों में वेदों की व्याख्या व प्रचार करने के लिए अवतीर्ण होते हैं।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविस्वसेत्। विश्वासाद् भयमुत्पन्नमपि मूलानि कृन्तति॥

जो विश्वास्पात्र न हो, उस पर कभी विश्वास न करें और जो विश्वास्पात्र हो उस पर भी अधिक विश्वास न करें क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ भय मनुष्य का मूलोच्छेद कर देता है। -वेदव्यास (महाभारत शांति पर्व, 138.

अलौकिक शक्तिसम्पन्न महापुरुषः- भगवान् वेदव्यास एक अलौकिक शक्तिसम्पन्न महापुरुष थे। इनका जन्म एक द्वीप के अन्दर हुआ था और वर्ण श्याम था, अत: इनका एक नाम कृष्णीद्वैपायन भी है। वेदों का विस्तार करने के कारण ये वेदव्यास तथा बदरीवन में निवास करने कारण बादरायण भी कहे जाते हैं। इन्होंने वेदों के विस्तार के साथ महाभारत, अठारह महापुराणों तथा ब्रह्मसूत्र का भी प्रणयन किया। शास्त्रों की ऐसी मान्यता है कि भगवान् ने स्वयं व्यास के रूप में अवतार लेकर वेदों का विस्तार किया। अत: व्यासजी की गणना भगवान् के चौबीस अवतारों में की जाती है। व्यासस्मृति के नाम से इनके द्वारा प्रणीत एक स्मृतिग्रन्थ भी है। भारतीय वांड्मय एवं हिन्दू-संस्कृति व्यासजी की ऋणी है। संसार में जब तक हिन्दू-जाति एवं भारतीय संस्कृति जीवित है, तब तक व्यासजी का नाम अमर रहेगा। महर्षि व्यास त्रिकालदर्शी थे। जब पाण्डव एकचक्रा नगरी में निवास कर रहे थे, तब व्यासजी उनसे मिलने आये। उन्होंने पाण्डवों को द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाकर कहा कि 'यह कन्या विधाता के द्वारा तुम्हीं लोगों के लिये बनायी गयी है, अत: तुम लोगों को द्रौपदी-स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिये अब पांचाल नगरी की ओर जाना

चाहिये।' महाराज द्रुपद को भी इन्होंने द्रौपदी के पूर्वजन्म की बात बताकर उन्हें द्रौपदी का पाँचों पाण्डवों से विवाह करने की प्रेरणा दी थी।

विभिन्न नामः- यमुना के द्वीप में जन्म होने के कारण व्यास जी को कृष्णद्वैपायन तथा बदरीवन में तपस्या करने के कारण बदरायण व्यास भी कहा जाता है। इन्हें अंगों सहित सम्पूर्ण वेद, पुराण, इतिहास और परमात्मतत्त्व का ज्ञान स्वत: प्राप्त हो गया था। मनुष्यों की आयु क्षीण होते हुए देखकर इन्होंने वेदों का विस्तार किया। इसीलिये ये वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हुए. वेदान्त-दर्शन की शक्ति के साथ अनादि पुराण को लुप्त होते देखकर भगवान कृष्णद्वैपायन ने अठारह पुराणों का प्रणयन किया। इनके द्वारा प्रणीत महाभारत को पंचम वेद कहा जाता है। श्रीमद्भागवत के रूप में भक्ति का सार-सर्वस्व इन्होंने मानव मात्र को सुलभ कराया और ब्रह्मसूत्र के रूप में तत्त्वज्ञान का अनुपम ग्रन्थ-रत्न प्रदान किया।

महाभारत मेः- महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर व्यासजी अपने शिष्यों के साथ इन्द्रप्रस्थ पधारे। वहाँ इन्होंने युधिष्ठिर को बताया कि-'आज से तेरह वर्ष बाद क्षत्रियों का महासंहार होगा, उसमें दुर्योधन के विनाश में तुम्हीं निमित्त बनोगे।' पाण्डवों के वनवासकाल में भी जब दुर्योधन दु: शासन तथा शकुनि की सलाह से उन्हें मार डालने की योजना बना रहा था, तब व्यासजी ने अपनी दिव्य दृष्टि से उसे जान लिया। इन्होंने तत्काल पहुँचकर कौरवों को इस दुष्कृत्य से अवगत किया। इन्होंने धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहा-'तुमने जुए में पाण्डवों का सर्वस्व छीनकर और उन्हें वन भेजकर अच्छा नहीं किया। दुरात्मा दुर्योधन पाण्डवों को मार डालना चाहता है। तुम अपने लाडले बेटे को इस काम से रोको, अन्यथा इसे पाण्डवों के हाथ से मरने से कोई नहीं बचा पायगा।' भगवान व्यास जी ने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की, जिससे युद्ध-दर्शन के साथ उनमें भगवान् के विश्वरूप एवं दिव्य चतुर्भुजरूप के दर्शन की भी योग्यता आ गयी। उन्होंने कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्दसे नि: सृत श्रीमद्भगवद्गीता का श्रवण किया, जिसे अर्जुन के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं सुन पाया। द्विविधो जायते व्याधिः शारीरो मानसस्तथा। परस्परं तयोर्जन्म निर्द्वन्द्वं नोपलम्यते॥

मनुष्य को दो प्रकार की व्याधियाँ होती हैं–एक शारीरिक और दूसरी मानसिक। इन दोनों की उत्पत्ति एक दूसरे के आश्रित हैं, एक के बिना दूसरी का होना सम्भव नहीं है। -वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व। 16. 8)

एक बार जब धृतराष्ट्र वन में रहते थे, तब महाराज युधिष्ठिर अपने परिवार सहित उनसे मिलने गये। व्यासजी भी वहाँ आये। धृतराष्ट्र ने उनसे जानना चाहा कि महाभारत के युद्ध में मारे गये वीरों की क्या गति हुई? उन्होंने व्यासजी से एक बार अपने मरे हुए सम्बन्धियों का दर्शन कराने की प्रार्थना की। धृतराष्ट्र के प्रार्थना करने पर व्यासजी ने अपनी अलौकिक शक्ति के प्रभाव से गंगाजी में खड़े होकर युद्ध में मरे हुए वीरों का आवाहन किया युधिष्ठिर, कुन्ती तथा धृतराष्ट्र के सभी सम्बन्धियों का दर्शन कराया। वैशम्पायन के मुख से इस अद्भुत वृत्तान्त को सुनकर राजा जनमेजय के मन में भी अपने पिता महाराज परीक्षित का दर्शन करने की लालसा पैदा हुई. व्यासजी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने महाराज परीक्षित को वहाँ बुला दिया। जनमेजय ने यज्ञान्त स्नान के समय अपने पिता को भी स्नान कराया। तदनन्तर महाराज परीक्षित वहाँ से चले गये। अलौकिक शक्ति से सम्पन्न तथा महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास के चरणों में शत-शत नमन है।

सहृदय व्यासः- शुद्धात्मा व्यास जी विपत्ति ग्रस्त पाण्डवों की समय-समय पर पूरी सहायता करते रहे। इन्होंने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, जिससे संजय ने महाभारत का युद्ध प्रत्यक्ष देखने के साथ-साथ श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से नि: सृत श्रीमद्भगवद् गीता का भी श्रवण किया। महर्षि व्यास की शक्ति अलौकिक थी। एक बार जब ये वन में

धृतराष्ट्र और गान्धारी से मिलने गये, तब सपरिवार युधिष्टिर भी वहाँ उपस्थित थे। धृतराष्ट्र पुत्र शोक से अत्यन्त व्याकुल थे। उन्होंने श्रीव्यास जी से अपने मरे हुए कुटुम्बियों और स्वजनों को देखने की इच्छा प्रकट की। महर्षि व्यास के आदेशानुसार धृतराष्ट्र आदि गंगातट पर पहुँचे। व्यास जी ने गंगा जल में प्रवेश किया और दिवंगत योद्धाओं को पुकारा। जल में युद्धकाल-जैसा कोलाहल सुनायी देने लगा। देखते-ही-देखते भीष्म और द्रोण के साथ दोनों पक्षों के योद्धा निकल आये। सबकी वेष-भूषा और वाहनादि पूर्ववत थे। सभी ईर्ष्या-द्वेष से शून्य और दिव्य देहधारी थे। वे सभी लोग रात्रि में अपने पूर्व सम्बन्धियों से मिले और सूर्योदय से पूर्व भागीरथी गंगा में प्रवेश करके अपने दिव्य लोकों को चले गये। भगवान व्यास के इस चमत्कारिक प्रभाव को देखकर धृतराष्ट्र आदि आश्चर्यचकित रह गये।

भगवान व्यास आज भी अमर हैं। समय-समय पर प्रकट होकर ये अधिकारी पुरुषों को अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया करते हैं। भगवान आद्य शंकराचार्य और मण्डन मिश्र को उनके दर्शन हुए थे। मनुष्य जाति पर भगवान वेदव्यास के अनन्त उपकार हैं। सम्पूर्ण संसार उनका आभारी है।

प्रारम्भावस्था में वेद केवल एक ही था; एक ही वेद में अनेक ऋचाएँ थीं, जो "वेद-सूत्र" कहलाते थे; वेद में यज्ञ-विधि का वर्णन है; सम (गाने योग्य) पदावलियाँ है तथा लोकोपकारी अनेक ही छन्द हैं। इन समस्त विषयों से सम्पन्न एक ही वेद सत्युग और त्रेतायुग तक रहा; द्वापरयुग में महर्षि कृष्णद्वैपायन ने वेद को चार भागों में विभक्त किया। इस कारण महर्षि कृष्णद्वैपायन "वेदव्यास" कहलाने लगे। संस्कृत में विभाग को "व्यास" कहते हैं, अतः वेदों का व्यास करने के कारण कृष्णद्वैपायन "वेदव्यास" कहलाने लगे। महर्षि व्यास के पैल, वैशम्पायन, जैमिनी और सुमन्तु-यह चार शिष्य थे। महर्षि व्यास ने पैल को ऋग्वेद, वैशम्यापन को यजुर्वेद, जैमिनी को सामवेद और सुमन्तु को अथर्ववेद की शिक्षा दी।

8 - वैदिक ऋषि पुलस्त

पुलस्त्य को हिन्दू धार्मिक मान्यता और ग्रंथों के अनुसार ब्रह्मा के छह मानस पुत्रों में से एक माना जाता है। इनकी गणना शक्तिशाली महर्षियों में की जाती है। कर्दम प्रजापति की कन्या हविर्भुवा से इनका विवाह हुआ था। इन्हें दक्ष का दामाद और शंकर का साढू भी बताया गया है। दक्ष के यज्ञ-ध्वंस के समय ये जलकर मर गए थे। वैवस्वत मन्वंतर में ब्रह्मा के सभी मानस पुत्रों के साथ पुलस्त्य का भी पुनर्जन्म हुआ था।

अप्सराओं को शापः- एक बार पुलस्त्य मेरु पर्वत पर तपस्या कर रहे थे तो बार-बार परेशान करने वाली अप्सराओं को इन्होंने शाप दे दिया कि जो इनके सामने आएगी, वह गर्भवती हो जाएगी। वैशाली के राजा की कन्या इडविला असावधानी से इनके सामने आकर गर्भवती हो गई. बाद में उसका पुलस्त्य से विवाह हुआ और उसने 'विश्रवा' नामक पुत्र को जन्म दिया। रावण इन्हीं विश्रवा का पुत्र और पुलस्त्य का पौत्र था। विश्रवा पश्चिम भारत में नर्मदा के किनारे रहता था। इससे अनुमान लगाया जाता है कि पुलस्त्य का निवास भी वहीं रहा होगा।

धर्मवक्ताः- वृद्ध-याज्ञवल्क्य के अनुसार पुलस्त्य एक धर्मवक्ता हैं। विश्वरूप ने शरीर-शौच के सिलसिले में उनका एक श्लोक उद्धृत किया है। 'मिताक्षरा' ने एक उद्धरण में कहा है कि श्राद्ध में ब्राह्मण को मुनि का भोजन, क्षत्रिय एवं वैश्य को माँस तथा शूद्र को मधु खाना चाहिए. सन्ध्या, श्राद्ध, अशौच, यति-धर्म, प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में 'अपरार्क' ने पुलस्त्य से बहुत उद्धरण लिये हैं। आह्निक एवं श्राद्ध पर 'स्मृतिचन्द्रिका' ने पुलस्त्य का उल्लेख किया है। 'दानरत्नाकर' ने मृगचर्म-दान के बारे में पुलस्त्य का उद्धरण दिया है।

पुराणों में बताया गया है कि महर्षि अंगिरा ब्रह्मा जी के मानस पुत्र हैं तथा ये गुणों में ब्रह्मा जी के ही समान हैं। इन्हें प्रजापति भी कहा गया है और सप्तर्षियों में वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा मरीचि आदि के साथ इनका भी परिगणन हुआ है। इनके दिव्य अध्यात्मज्ञान, योगबल, तप-साधना एवं मन्त्रशक्ति की विशेष प्रतिष्ठा है। इनकी पत्नी दक्ष प्रजापति की पुत्री स्मृति (मतान्तर से श्रद्धा) थीं, जिनसे इनके वंश का विस्तार हुआ।

इनकी तपस्या और उपासना इतनी तीव्र थी कि इनका तेज और प्रभाव अग्नि की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गया। उस समय अग्निदेव भी जल में रहकर तपस्या कर रहे थे। जब उन्होंने देखा कि अंगिरा के तपोबल के सामने मेरी तपस्या और प्रतिष्ठा तुच्छ हो रही है तो वे दु: खी हो अंगिरा के पास गये और कहने लगे-'आप प्रथम अग्नि हैं, मैं आपके तेज़ की तुलना में अपेक्षाकृत न्यून होने से द्वितीय अग्नि हूँ। मेरा तेज़ आपके सामने फीका पड़ गया है, अब मुझे कोई अग्नि नहीं कहेगा।' तब महर्षि अंगिरा ने सम्मानपूर्वक उन्हें देवताओं को हवि पहुँचाने का कार्य सौंपा। साथ ही पुत्र रूप में अग्नि का वरण किया। तत्पश्चात् वे अग्नि देव ही बृहस्पति नाम से अंगिरा के पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हुए. उतथ्य तथा महर्षि संवर्त भी इन्हीं के पुत्र हैं। महर्षि अंगिरा की विशेष महिमा है। ये मन्त्रद्रष्टा, योगी, संत तथा महान् भक्त हैं। इनकी 'अंगिरा-स्मृति' में सुन्दर उपदेश तथा धर्माचरण की शिक्षा व्याप्त है।

सम्पूर्ण ऋग्वेद में महर्षि अंगिरा तथा उनके वंशधरों तथा शिष्य-प्रशिष्यों का जितना उल्लेख है, उतना अन्य किसी ऋषि के सम्बन्ध में नहीं हैं। विद्वानों का यह अभिमत है कि महर्षि अंगिरा से सम्बन्धित वेश और गोत्रकार ऋषि ऋग्वेद के नवम मण्डल के द्रष्टा हैं। नवम मण्डल के साथ ही ये अंगिरस ऋषि प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि अनेक मण्डलों के तथा कतिपय सूक्तों के द्रष्टा ऋषि हैं। जिनमें से महर्षि कुत्स, हिरण्यस्तूप, सप्तगु, नृमेध, शंकपूत, प्रियमेध, सिन्धुसित, वीतहव्य, अभीवर्त, अंगिरस, संवर्त तथा हविर्धान आदि मुख्य हैं।

ऋग्वेद का नवम मण्डल जो 114 सूक्तों में निबद्ध हैं, 'पवमान-मण्डल' के नाम से विख्यात है। इसकी ऋचाएँ पावमानी ऋचाएँ कहलाती हैं। इन ऋचाओं में सोम देवता की महिमापरक स्तुतियाँ हैं, जिनमें यह बताया गया है कि इन पावमानी ऋचाओं के पाठ से सोम देवताओं का आप्यायन होता है। महर्षि अत्रि वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। सम्पूर्ण ऋग्वेद दस मण्डलों में प्रविभक्त है। प्रत्येक मण्डल के मन्त्रों के ऋषि अलग-अलग हैं। उनमें से ऋग्वेद के पंचम मण्डल के द्रष्टा महर्षि अत्रि हैं। इसीलिये यह मण्डल 'आत्रेय मण्डल' कहलाता है। इस मण्डल में 87 सूक्त हैं। जिनमें महर्षि अत्रि द्वारा विशेष रूप से अग्नि, इन्द्र, मरूत, विश्वेदेव तथा सविता आदि देवों की महनीय स्तुतियाँ ग्रथित हैं। इन्द्र तथा अग्निदेवता के महनीय कर्मों का वर्णन है। अत्रि ब्रह्मा के पुत्र थे जो उनके नेत्रों से उत्पन्न हुए थे। ये सोम के पिता थे जो इनके नेत्र से आविर्भूत हुए थे। इन्होंने कर्दम की पुत्री अनुसूया से विवाह किया था। इन दोनों के पुत्र दत्तात्रेय थे। इन्होंने अलर्क, प्रह्लाद आदि को अन्वीक्षकी की शिक्षा दी थी। भीष्म जब शर-शैय्या पर पड़े थे, उस समय ये उनसे मिलने गये थे। परीक्षित जब प्रायोपवेश का अभ्यास कर रहे थे, तो ये उन्हें देखने गये थे। पुत्रोत्पत्ति के लिए इन्होंने ऋक्ष पर्वत पर पत्नी के साथ तप किया था। इन्होंने त्रिमूर्तियों की प्रार्थना की थी जिनसे त्रिदेवों के अशं रूप में दत्त (विष्णु) दुर्वासा (शिव) और सोम (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए थे। इन्होंने दो बार पृथु को घोड़े चुराकर भागते हुए इन्द्र को दिखाया था तथा हत्या करने को कहा था। ये वैवस्वत युग के मुनि थे। मन्त्रकार के रूप में इन्होंने उत्तानपाद को अपने पुत्र के रूप में ग्रहण किया था। इनके ब्रह्मावादिनी नाम की कन्या थी। परशुराम जब ध्यानावस्थित रूप में थे उस समय ये उनके पास गये थे। इन्होंने श्राद्ध द्वारा पितरों की अराधना की थी और सोम की राजक्ष्मा रोग से मुक्त किया था। ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि की रचना के लिए नियुक्त किये जाने पर इन्होंने 'अनुत्तम' तक किया था जब कि शिव इनसे मिले थे। सोम के राजसूय यज्ञ में इन्होंने होता का कार्य किया था। त्रिपुर के विनाश के लिए इन्होंने शिव की आराधना की थी। बनवास के समय राम अत्रि के आश्रम भी गये थे

वैदिक मन्त्रद्रष्टाः- पुराणों में इनके आविर्भाव का तथा उदात्त चरित्र का बड़ा ही सुन्दर वर्णन हुआ है। वहाँ के वर्णन के अनुसार महर्षि अत्रि ब्रह्मा जी के मानस-पुत्र हैं और उनके चक्षु भाग से इनका प्रादुर्भाव हुआ। सप्तर्षियों में महर्षि अत्रि का परिगणन है। साथ ही इन्हें 'प्रजापति' भी कहा गया है। महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूया जी हैं, जो कर्दम प्रजापति और देवहूति की पुत्री हैं। देवी अनुसूया पतिव्रताओं की आदर्शभूता और महान् दिव्यतेज से सम्पन्न हैं। महर्षि अत्रि जहाँ ज्ञान, तपस्या, सदाचार, भक्ति एवं मन्त्रशक्ति के मूर्तिमान स्वरूप हैं; वहीं देवी अनुसूया पतिव्रता धर्म एवं शील की मूर्तिमती विग्रह हैं। भगवान श्री राम अपने भक्त महर्षि अत्रि एवं देवी अनुसूया की भक्ति को सफल करने स्वयं उनके आश्रम पर पधारे। माता अनुसूया ने देवी सीता को पतिव्रत का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पतिव्रत के बल पर शैव्या ब्राह्माणी के मृत पति को जीवित कराया तथा बाधित सूर्य को उदित कराकर संसार का कल्याण किया। देवी अनुसूया का नाम ही बड़े महत्त्व का है। अनुसूया नाम है परदोष-दर्शन का–गुणों में भी दोष-बुद्धि का और जो इन विकारों से रहित हो, वही 'अनुसूया' है। इसी प्रकार महर्षि अत्रि भी 'अ+त्रि' हैं अर्थात् वे तीनों गुणों (सत्त्व, रजस, तमस) -से अतीत है-गुणातीत हैं। इस प्रकार महर्षि अत्रि-दम्पति एवं विध अपने नामानुरूप जीवन यापन करते हुए सदाचार परायण हो चित्रकूट के तपोवन में रहा करते थे। अत्रि पत्नी अनुसूया के तपोबल से ही भागीरथी गंगा की एक पवित्र धारा चित्रकूट में प्रविष्ट हुई और 'मंदाकिनी' नाम से प्रसिद्ध हुई.

सृष्टि के प्रारम्भ में जब इन दम्पति को ब्रह्मा जी ने सृष्टिवर्धन की आज्ञा दी तो इन्होंने उस ओर उन्मुख न हो तपस्या का ही आश्रय लिया। इनकी तपस्या से ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिया और दम्पति की प्रार्थना पर इनका पुत्र बनना स्वीकार किया। अत्रि-दम्पति की तपस्या और त्रिदेवों की प्रसन्नता के फलस्वरूप विष्णु के अंश से महायोगी दत्तात्रेय, ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा तथा शंकर के अंश से महामुनि दुर्वासा महर्षि अत्रि एवं देवी अनुसूया के पुत्र रूप में आविर्भूत हुए.

वेदों में उपर्युक्त वृत्तान्त यथावत नहीं मिलता है, कहीं-कहीं नामों में अन्तर भी है। ऋग्वेद में 'अत्रि: सांख्य:' कहा गया है। वेदों में यह स्पष्ट रूप से वर्णन है कि महर्षि अत्रि को अश्विनीकुमारों की कृपा प्राप्त थी। एक बार जब ये समाधिस्थ थे, तब दैत्यों ने इन्हें उठाकर शतद्वार यन्त्र में डाल दिया और आग लगाकर इन्हें जलाने का प्रयत्न किया, किंतु अत्रि को उसका कुछ भी ज्ञान नहीं था। उस समय अश्विनीकुमारों ने वहाँ पहुँचकर इन्हें बचाया। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 51वें तथा 112वें सूक्त में यह कथा आयी है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में महर्षि अत्रि के दीर्घ तपस्या के अनुष्ठान का वर्णन आया है और बताया गया है कि यज्ञ तथा तप आदि करते-करते जब अत्रि वृद्ध हो गये, तब अश्विनीकुमारों ने इन्हें नवयौवन प्रदान किया।

ऋग्वेद के पंचम मण्डल में अत्रि के वसूयु, सप्तवध्रि नामक अनेक पुत्रों का वृत्तान्त आया है, जो अनेक मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि रहे हैं। इसी प्रकार अत्रि के गोत्रज आत्रेयगण ऋग्वेद के बहुत से मन्त्रों के द्रष्टा हैं।

ऋग्वेद के पंचम 'आत्रेय मण्डल' का 'कल्याण सूक्त' ऋग्वेदीय 'स्वस्ति-सूक्त' है, वह महर्षि अत्रि की ऋतम्भरा प्रज्ञा से ही हमें प्राप्त हो सका है यह सूक्त 'कल्याण-सूक्त' , 'मंगल-सूक्त' तथा 'श्रेय-सूक्त' भी कहलाता है। जो आज भी प्रत्येक मांगलिक कार्यों, शुभ संस्कारों तथा पूजा, अनुष्ठानों में स्वस्ति-प्राप्ति, कल्याण-प्राप्ति, अभ्युदय-प्राप्ति, भगवत्कृपा-प्राप्ति तथा अमंगल के विनाश के लिये सस्वर पठित होता है।

इस मांगलिक सूक्त में अश्विनी, भग, अदिति, पूषा, द्यावा, पृथिवी, बृहस्पति, आदित्य, वैश्वानर, सविता तथा मित्रा वरुण और सूर्य-चंद्रमा आदि देवताओं से प्राणिमात्र के लिये स्वस्ति की प्रार्थना की गयी है। इससे महर्षि अत्रि के उदात्त-भाव तथा लोक-कल्याण की भावना का किंचित स्थापना होता है।

इसी प्रकार महर्षि अत्रि ने मण्डल की पूर्णता में भी सविता देव से यही प्रार्थना की है कि 'हे सविता देव! आप हमारे सम्पूर्ण दु: खों को-अनिष्टों को, शोक-कष्टों को दूर कर दें और हमारे लिये जो हितकर हो, कल्याणकारी हो, उसे उपलब्ध करायें'।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि महर्षि अत्रि की भावना अत्यन्त ही कल्याणकारी थी और उनमें त्याग, तपस्या, शौच, संतोष, अपरिग्रह, अनासक्ति तथा विश्व कल्याण की पराकष्ठा विद्यमान थी। एक ओर जहाँ उन्होंने वैदिक ऋचाओं का दर्शन किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपनी प्रजा को सदाचार और धर्माचरणपूर्वक एक उत्तम जीवनचर्या में प्रवृत्त होने के लिये प्रेरित किया है तथा कर्तव्या-कर्तव्य का निर्देश दिया है। इन शिक्षोपदेशों को उन्होंने अपने द्वारा निर्मित आत्रेय धर्मशास्त्र में उपनिबद्ध किया है। वहाँ इन्होंने वेदों के सूक्तों तथा मन्त्रों की अत्यन्त महिमा बतायी है। अत्रिस्मृति का छठा अध्याय वेदमन्त्रों की महिमा में ही पर्यवसित है। वहाँ अघमर्षण के मन्त्र, सूर्योपस्थान का यह 'उदु त्यं जातवेदसं, मन्त्र, पावमानी ऋचाएँ, शतरुद्रिय, गो-सूक्त, अश्व-सूक्त एवं इन्द्र-सूक्त आदि का निर्देश कर उनकी महिमा और पाठ का फल बताया गया है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि महर्षि अत्रि की वेद मन्त्रों पर कितनी दृढ़ निष्ठा थी। महर्षि अत्रि का कहना है कि वैदिक मन्त्रों के अधिकारपूर्वक जप से सभी प्रकार के पाप-क्लेशों का विनाश हो जाता है। पाठ कर्ता पवित्र हो जाता है, उसे जन्मान्तरीय ज्ञान हो जाता है-जाति-स्मरता प्राप्त हो जाती है और वह जो चाहता है, वह प्राप्त कर लेता है।

अपनी स्मृति के अन्तिम 9वें अध्याय में महर्षि अत्रि ने बहुत सुन्दर बात बताते हुए कहा है कि यदि विद्वेष भाव से वैरपूर्वक भी दमघोष के पुत्र शिशुपाल की तरह भगवान का स्मरण किया जाय तो उद्धार होने में कोई संदेह नहीं; फिर यदि तत्परायण होकर अनन्य भाव से भगवदाश्रय ग्रहण कर लिया जाय तो परम कल्याण में क्या संदेह?

इस प्रकार महर्षि अत्रि ने अपने द्वारा द्रष्ट मन्त्रों में, अपने धर्मसूत्रों में अथवा अपने सदाचरण से यही बात बतायी है कि व्यक्ति को सत्कर्म का ही अनुष्ठान करना चाहिये।

अदिति संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ 'असीम' है। दक्ष प्रजापति की पुत्री थीं और कश्यप ऋषि को ब्याही थीं। अदिति को 'देवमाता' कहा गया है। मित्र-वरुण, आदित्य, रुद्र, इन्द्र आदि इन्हीं की संतान बताए गये हैं। आधुनिक दृष्टि से देखें तो अंतरिक्ष से इनका बोध होता है जिसमें सभी आदित्य भ्रमण किया करते हैं।

पौराणिक कथाः- हिन्दू पौराणिक कथाओं के वैदिक युग में असीम या अनंत का मानवीकृत रूप और आदित्य नामक स्वर्ण के देवताओं के समूह की माता आदिम देवी के रूप में इन्हें विष्णु सहित कई देवताओं की जननी माना गया है। अदिति आकाश को अवलंब प्रदान करती हैं, सभी जीवों का पालन और पृथ्वी का पोषण करती हैं। पृथिवी को वैदिक भाषा में अदिती कहते है, सूर्य को आदित्य के मान से जानते है। इस रूप में इन्हें कभी-कभी गाय के रूप में भी दर्शाया जाता है।

अदिति के पुत्रः- आमतौर पर उनके पुत्र आदित्यों की संख्या 12 बताई जाती है। (जिन्हें आदित्य देवता के रूप में जानते है जो बारह महिने के रूप में जानते है।) वरुण इनमें प्रमुख हैं और उनकी ही तरह उन्हें ऋतु (दैवी श्रेणी)

का रक्षक माना जाता है। एक श्लोक में उनके नाम वरुण, मित्र आर्यमन, दक्ष, भग और अंश बताए गए हैं। इनमें से कई बार दक्ष को हटाकर इन्द्र, सवितृ (सूर्य) और धातृ को शामिल कर लिया जाता है। कभी-कभी इस शब्द के व्यापक अर्थ में सभी देवताओं को शामिल कर लिया जाता है। जहाँ आदित्यों की संख्या 12 मानी गई है, वहाँ उन्हें वर्ष के 12 सौर महीनों से जोड़ा जाता है। एकवचन के रूप में आदित्य, सूर्य का एक नाम है।

वेदों मेः- वेद में अदिति को सीमाहीन बताया गया है। पुराण तो आकाश, वायु, माता, पिता, सर्व देवता, सर्व मानव, भूत, वर्तमान, भविष्य सब कुछ अदिति को ही बताते हैं। कश्यप ऋषि की दो पत्नियाँ थीं-अदिति और दिति। अदिति के गर्भ से देव और दिति के गर्भ से दैत्य उत्पन्न हुए. श्रीकृष्ण की माता देवकी 'अदिति का अवतार' बताई जाती हैं।

सती अनुसूया महर्षि अत्रि की पत्नी थीं। अनुसूया का स्थान भारतवर्ष की सती-साध्वी नारियों में बहुत ऊँचा है। इनका जन्म अत्यन्त उच्च कुल में हुआ था। ब्रह्मा जी के मानस पुत्र परम तपस्वी महर्षि अत्रि को इन्होंने पति के रूप में प्राप्त किया था। अपनी सतत सेवा तथा प्रेम से इन्होंने महर्षि अत्रि के हृदय को जीत लिया था। अत्रि मुनि की पत्नी जो दक्ष प्रजापति की चौबीस कन्याओं में से एक थीं। इन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को तपस्या करके प्रसन्न किया और ये त्रिदेव क्रमशः सोम, दत्तात्रेय और दुर्वासा के नाम से उनके पुत्र बने। अनुसूया पतिव्रत धर्म के लिए प्रसिद्ध हैं। वनवास काल में जब राम, सीता और लक्ष्मण चित्रकूट में महर्षि अत्रि के आश्रम में पहुँचे तो अनुसूया ने सीता को पतिव्रत धर्म की शिक्षा दी थी।

कथाः- भगवान को अपने भक्तों का यश बढ़ाना होता है तो वे नाना प्रकार की लीलाएँ करते हैं। श्री लक्ष्मी जी, श्री सती जी और श्री सरस्वती जी को अपने पातिव्रत्य का बड़ा अभिमान था।

सती अनुसूया ने उनसे पूछा-मुनियो! मुझसे कौन-सा ऐसा अपराध हो गया, जो आप लोग मेरे द्वारा की हुई पूजा को ग्रहण नहीं कर रहे हैं? मुनियों ने कहा-देवि! यदि आप बिना वस्त्र के हमारा आतिथ्य करें तो हम आपके यहाँ भिक्षा ग्रहण करेंगे। यह सुनकर सती अनुसूया सोच में पड़ गयीं। उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो सारा रहस्य उनकी समझ में आ गया।

तीनों देवियों के अंहकार को नष्ट करने के लिये भगवान ने नारद जी के मन में प्रेरणा की। फलतः वे श्री लक्ष्मी जी के पास पहुँचे। नारद जी को देखकर लक्ष्मी जी का मुख-कमल खिल उठा। लक्ष्मी जी ने कहा-'आइये, नारद जी! आप तो बहुत दिनों बाद आये। कहिये, क्या हाल है?' नारद जी बोले-'माताजी! क्या बताऊँ, कुछ बताते नहीं बनता। अब की बार मैं घूमता हुआ चित्रकूट की ओर चला गया। वहाँ मैं महर्षि अत्रि के आश्रम पर पहुँचा। माताजी! मैं तो महर्षि की पत्नी अनुसूया जी का दर्शन करके कृतार्थ हो गया। तीनों लोकों में उनके समान पतिव्रता और कोई नहीं है।' लक्ष्मी जी को यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने पूछा-'नारद! क्या वह मुझसे भी बढ़कर पतिव्रता है?' नारद जी ने कहा-'माताजी!' आप ही नहीं, तीनों लोकों में कोई भी स्त्री सती अनुसूया की तुलना में किसी भी गिनती में नहीं है। ' इसी प्रकार देवर्षि नारद ने सती और सरस्वती के पास जाकर उनके मन में भी सती अनुसूया के प्रति ईर्ष्या की अग्नि जला दी। अन्त में तीनों देवियों ने त्रिदेवों से हठ करके उन्हें सती अनुसूया के सतीत्व की परीक्षा लेने के लिये बाध्य कर दिया। ब्रह्मा, विष्णु और महेश महर्षि अत्रि के आश्रम पर पहुँचे। तीनों देव मुनि वेष में थे। उस समय महर्षि अत्रि अपने आश्रम पर नहीं थे। अतिथि के रूप में आये हुए त्रिदेवों का सती अनुसूया ने स्वागत-सत्कार करना चाहा, किन्तु त्रिदेवों ने उसे अस्वीकार कर दिया।

त्रिदेव बन गए शिशुः- सती अनुसूया ने उनसे पूछा-'मुनियो! मुझसे कौन-सा ऐसा अपराध हो गया, जो आप लोग मेरे द्वारा की हुई पूजा को ग्रहण नहीं कर रहे हैं? मुनियों ने कहा-देवि! यदि आप बिना वस्त्र के हमारा आतिथ्य करें तो हम आपके यहाँ भिक्षा ग्रहण करेंगे।' यह सुनकर सती अनुसूया सोच में पड़ गयीं। उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो सारा रहस्य उनकी समझ में आ गया। वे बोलीं-'मैं आप लोगों का विवस्त्र होकर आतिथ्य करूँगी। यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ और मैंने कभी भी काम-भाव से किसी पर-पुरुष का चिन्तन नहीं किया हो तो आप तीनों छः-छः माह के बच्चे बन जाएँ।' पतिव्रता का इतना कहना था कि त्रिदेव छः-छः माह के बच्चे बन गये। माता अनुसूया ने विवस्त्र होकर उन्हें अपना स्तनपान कराया और उन्हें पालने में खेलने के लिये डाल दिया। इस प्रकार त्रिदेव माता अनुसूया के वात्सल्य प्रेम के बन्दी बन गये। इधर जब तीनों देवियों ने देखा कि हमारे पति तो आये ही नहीं तो वे चिन्तित हो गयीं। आख़िर तीनों अपने पतियों का पता लगाने के लिये चित्रकूट गयीं। संयोग से वहीं नारद जी से उनकी मुलाक़ात हो गयी। त्रिदेवियों ने उनसे अपने पतियों का पता पूछा। नारद ने कहा कि वे लोग तो आश्रम में बालक बनकर खेल रहे हैं। त्रिदेवियों ने अनुसूया जी से आश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा माँगी। अनुसूया जी ने उनसे उनका परिचय पूछा। त्रिदेवियों ने कहा-'माता जी! हम तो आपकी बहुएँ हैं। आप हमें क्षमा कर दें और हमारे पतियों को लौटा दें।' अनुसूया जी का हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने बच्चों पर जल छिड़ककर उन्हें उनका पूर्व रूप प्रदान किया और अन्ततः उन त्रिदेवों की पूजा-स्तुति की। त्रिदेवों ने प्रसन्न होकर अपने-अपने अंशों से अनुसूया के यहाँ पुत्र रूप में प्रकट होने का वरदान दिया।

संवरण हस्तिनापुर के प्रतापी राजा थे। वे राजा अजमीढ़ के वंशज थे। सुदास का संवरण से युद्ध हुआ था, जिसे कुछ विद्वान ऋग्वेद में वर्णित 'दाशराज्ञ युद्ध' मानते हैं। राजा सुदास के समय पंचाल राज्य का समुचित विस्तार हुआ था। बाद में संवरण के पुत्र 'कुरु' ने शक्ति बढ़ाकर पंचाल राज्य को अपने अधीन कर लिया, तभी से यह राज्य संयुक्त रूप से 'कुरु-पंचाल' कहलाया।

परिचयः- हिन्दू धार्मिक ग्रंथ 'महाभारत' के अनुसार हस्तिनापुर में एक प्रतापी राजा था, जिसका नाम संवरण था। संवरण वेदों को मानने वाला और सूर्यदेव का उपासक था। वह जब तक सूर्यदेव की उपासना नहीं कर लेता था, जल का एक घूंट भी कंठ के नीचे नहीं उतारता था।

ताप्ती से भेंटः- एक दिन संवरण हिम पर्वत पर हाथ में धनुष-बाण लेकर आखेट के लिए भ्रमण कर रहा था, तभी उसे एक अत्यंत सुंदर युवती दिखाई दी। वह युवती इतनी सुंदर थी कि संवरण उस पर आसक्त हो गया। वह उसके पास जाकर बोला-"तन्वंगी, तुम कौन हो? तुम देवी हो, गंधर्व हो या किन्नरी हो? तुम्हें देखकर मेरा चित्त चंचल और व्याकुल हो उठा। क्या तुम मेरे साथ गंधर्व विवाह करोगी? मैं सम्राट हूँ, तुम्हें हर तरह से सुखी रखूँगा।" युवती ने एक क्षण संवरण को देखा और फिर वह अदृश्य हो गई. युवती के अदृश्य हो जाने पर संवरण अत्यधिक व्याकुल हो गया। वह धनुष-बाण फेंककर उन्मत्तों की भांति विलाप करने लगा।

उसके विलाप के बाद युवती पुनः प्रकट हुई. वह संवरण की ओर देखती हुई बोली-"राजन! मैं स्वयं आप पर मुग्ध हूँ, किंतु मैं अपने पिता की आज्ञा के वश में हूँ। मैं सूर्यदेव की छोटी पुत्री हूँ। मेरा नाम ताप्ती है। जब तक मेरे पिता आज्ञा नहीं देंगे, मैं आपके साथ विवाह नहीं कर सकती। यदि आपको मुझे पाना है तो मेरे पिता को प्रसन्न कीजिए." युवती अपने कथन को समाप्त करती हुई पुनः अदृश्य हो गई. संवरण पुनः विलाप करने लगा। वह बेसुध होकर ताप्ती को पुकारते-पुकारते गिर पड़ा और बेहोश हो गया। होश में आने पर उसे ताप्ती के द्वारा कही गई बातें याद आईं और वह मन ही मन सोचता रहा कि वह ताप्ती को पाने के लिए सूर्यदेव की आराधना करेगा।

सूर्यदेव द्वारा परीक्षाः- संवरण उसी स्थान पर सूर्यदेव की आराधना करने लगा। धीरे-धीरे वर्षों बीत गए, संवरण तप करता रहा। अंत में सूर्यदेव के मन में संवरण की परीक्षा लेने का विचार उत्पन्न हुआ। रात्रि के समय संवरण आंखें बंद किए हुए ध्यानमग्न बैठा था। चारों ओर सन्नाटा था। तभी उसके कानों में किसी का स्वर सुनाई दिया-"संवरण, तू यहाँ तप में संलग्न है। तेरी राजधानी अग्नि में जल रही है।" संवरण बिल्कुल शांत अपनी जगह पर बैठा रहा। उसके मन में रंचमात्र भी दु: ख पैदा नहीं हुआ। उसके कानों में पुन: दूसरा स्वर गूँजा-"संवरण, तेरे कुटुंब के सभी लोग अग्नि में जलकर मर गए." किंतु फिर भी वह हिमालय-सा दृढ़ होकर अपनी जगह पर बैठा रहा। उसके कानों में पुन: तीसरी बार कंठ-स्वर पड़ा-"संवरण, तेरी प्रजा अकाल की अग्नि में जलकर भस्म हो रही है। तेरे नाम को सुनकर लोग थू-थू रहे हैं।" फिर भी वह दृढ़तापूर्वक तप में लगा रहा। उसकी दृढ़ता पर सूर्यदेव प्रसन्न हो उठे और उन्होंने प्रकट होकर कहा-"संवरण, मैं तुम्हारी दृढ़ता पर मुग्ध हूँ। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए?" संवरण सूर्यदेव को प्रणाम करता हुआ बोला-"देव! मुझे आपकी पुत्री ताप्ती को छोड़कर और कुछ नहीं चाहिए. कृपा करके मुझे ताप्ती को देकर मेरे जीवन को कृतार्थ कीजिए." सूर्यदेव ने प्रसन्नता की मुद्रा में उत्तर दिया, 'तथास्तु।'

कुरु का जन्मः- संवरण अपनी पत्नी ताप्ती के साथ उसी दूसरे राज्य के सुंदर क्षेत्र में रहने लगा और राग-रंग में अपनी प्रजा और राज्य को भी भूल गया। उधर संवरण के राज्य में भीषण अकाल पैदा हुआ और जैसा-जैसा सूर्यदेव ने कहा था, वैसा-वैसा होने लगा। संवरण के मंत्री ने अपने राजा की खोज की और उन्हें राज्य का संपूर्ण हाल बताया। मंत्री ने अपनी बुद्धिमानी से संवरण को स्वप्नलोक से बाहर निकाला और अपने राज्य के प्रति जिम्मेदारी का अहसास कराया। मंत्री की बातें सुनकर संवरण का हृदय कांप गया और उसे इस बात का बोध होने लगा की मैंने एक स्त्री के प्रति आसक्त होकर अपनी प्रजा और राज्य को छोड़ दिया। संवरण ने कहा-"मंत्रीजी. मैं आपका कृतज्ञ हूँ, आपने मुझे जगाकर बहुत अच्छा किया।" संवरण ताप्ती के साथ अपनी राजधानी पहुँचा। उसके राजधानी में पहुँचते ही जोरों की वर्षा हुई. सूखी हुई पृथ्वी हरियाली से ढंक गई. अकाल दूर हो गया। प्रजा सुख और शांति के साथ जीवन व्यतीत करने लगी। वह संवरण को परमात्मा और ताप्ती को देवी मानकर दोनों की पूजा करने लगी। संवरण और ताप्ती से ही 'कुरु' का जन्म हुआ।

9-वैदिक ऋषि महर्षि अगस्त

महर्षि अगस्त्य वैदिक ऋषि थे। ये वशिष्ठ मुनि के बड़े भाई थे। उनका जन्म श्रावण शुक्ल पंचमी को काशी में हुआ था। वर्तमान में यह स्थान अगस्त्यकुंड के नाम से प्रसिद्ध है। अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा विदर्भ देश की राजकुमारी थीं। अगस्त्य को सप्तर्षियों में से एक माना जाता है। देवताओं के अनुरोध पर उन्होंने काशी छोड़कर दक्षिण की यात्रा की और बाद में वहीं बस गये थे। ब्रह्मतेज के मूर्तिमान स्वरूप महामुनि अगस्त्य जी का पावन चरित्र अत्यन्त उदात्त तथा दिव्य है। वेदों में उनका वर्णन आया है।

ऋग्वेद का कथन है कि मित्र तथा वरुण नामक वेदताओं का अमोघ तेज एक दिव्य यज्ञिय कलश में पुंजीभूत हुआ और उसी कलश के मध्य भाग से दिव्य तेज: सम्पन्न महर्षि अगस्त्य का प्रादुर्भाव हुआ-

"सत्रे ह जाताविषिता नमोभि: कुंभे रेत: सिषिचतु: समानम्। ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो ज्ञातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्॥"

यहाँ पर यह स्पस्ट रूप से कहा जारहा है कि यह विज्ञान का एक तरिका है जिसको क्लोनिग के नाम से जानते है इसी प्रकार से सर्व प्रथम श्रृष्ठि के प्रारम्भ में सभी स्त्री पुरुष का जन्म हुआ यहाँ कुम्भ का मतलब है वैज्ञानिक प्रयोग शाला जो परखनली से कुछ उच्य गुणवत्ता वाली होती है। वेदों में किसी प्रकार का कोई इतिहास नहीं है वेद के प्रत्येक मंत्र में सुक्ष्म विज्ञान है वेदों के मंत्रों का अर्थ तिन प्रकार के निकलते है भौतिक, दैविक और आध्यत्मिक वेदों के शब्दों के आधार पर सभी वस्तुओं का नाम करण किया गया है।

इस ऋचा के भाष्य में आचार्य सायण ने लिखा हैः-

"ततो वासतीवरात् कुंभात् मध्यात् अगस्त्यो शमीप्रमाण उदियाप प्रादुर्बभूव। तत एव कुंभाद्वसिष्ठमप्यृषिं जातमाहुः॥"

इस प्रकार कुंभ से अगस्त्य तथा महर्षि वसिष्ठ का प्रादुर्भाव हुआ। एक यज्ञ सत्र में उर्वशी भी सम्मिलित हुई थ। (ज्ञान की कमी और बिना सोध के कारण अर्थ का अनर्थ कर दिया है उर्वशि का एक वैदिक आर्थ में पृथिवी भी होता है और मित्र वरुण सूर्य के द्वारा निकलने वाली विद्युतिय किरणें है जिन्हे हम सब एसी और डीसी के रूप में जानते है यह शक्ति का उर्जा का नाम करण है इनसे ही पृथिवी पर जीवन है इसको अस्लिल बनाया गया है ऐसे ही बहुत सारी पुराणों की कहानि के पिछे वैज्ञानिक जाकारियाँ है) मित्र वरुण ने उसकी ओर देखा तो इतने आसक्त हुए कि अपने वीर्य को रोक नहीं पाये। उर्वशी ने उपहासात्मक मुस्कराहट बिखेर दी। मित्र वरुण बहुत लज्जित हुए. कुंभ का स्थान, जल तथा कुंभ, सब ही अत्यंत पवित्र थे। यज्ञ के अंतराल में ही कुंभ में स्खलित वीर्य (विर्य को उर्जा या शक्ति भी कहते है) के कारण कुंभ से अगस्त्य, स्थल में वसष्टि तथा जक (जैविक प्रक्रिया का कारण जीन से) में मत्स्य का जन्म हुआ। उर्वशी इन तीनों की मानस जननी मानी गयी।

पुराणों में यह कथा आयी है कि महर्षि अगस्त्य (पुलस्त्य) की पत्नी महान् पतिव्रता तथा श्री विद्या की आचार्य हैं, जो 'लोपामुद्रा' के नाम से विख्यात हैं। आगम-ग्रन्थों में इन दम्पत्ति की देवी साधना का विस्तार से वर्णन आया है।

महर्षि अगस्त्य महातेजा तथा महातपा ऋषि थे। समुद्रस्थ राक्षसों के अत्याचार से घबराकर देवता लोग इनकी शरण में गये और अपना दु: ख कह सुनाया। फल यह हुआ कि ये सारा समुद्र पी गये, जिससे सभी राक्षसों का विनाश हो गया। इसी प्रकार इल्वल तथा वातापि नामक दुष्ट दैत्यों द्वारा हो रहे ऋषि-संहार को इन्होंने बंद किया और लोक का महान् कल्याण हुआ। (यहाँ वैज्ञानिक विधियों के माध्यम से समन्दर के जल को कुछ समय के लिये वास्पित किया गया यह सम्भव था। उस समय क्योंकि अगस्त ने यह कार्य करोणों साल पहले किया था, उस वक्त समन्दर का इतना विस्तार जमिन पर नहीं था। आज जितना जमिन सहारा का रेगिस्तान है उतना ही हिस्सा समन्दर का था। बाकि सभी जमिन बर्फ से ढकी थी और वह भी बहुत कठोर स्थिति में थी जो पिघत नहीं रही थी यद्यपि तिब्रता से पानी जम रहा था। उस समय जो दुस्ट प्रकृति के राक्षस लोग इतने वैज्ञानिक सुबिधा सम्पन्न थे जो समन्दर के अन्दर रहते थे और वह देवताओं पर आक्रमण करते थे जिनसे देवता परेशान बहुत अधिक हो चुके थे। उनके आग्रह से अगस्त ऋषि ने पानी को सुखा कर उनके आतंक को खत्म किया। जैसा कि एक समय पर जर्मनि और जापान से इतना अधिक अमेरिका और इग्लैण्ड की सरकारें परेशान थी। तो उन्होने आंइस्टिन को अपने यहाँ पनाह दिया और परमाणु के बहुत छोटे बम्ब को बनवा कर जापान को शान्त किया आज तो बहुत खतरनाक बम है। इनकी ताकत को बढ़ा कर समन्दर के पानी को गरम करके वास्पित कर सकते है।) इस प्रकार के अनेक असम्भव कार्य महर्षि अगस्त्य ने अपनी मन्त्र शक्ति से सहज ही कर दिखाया और लोगों का कल्याण किया। भगवान श्रीराम वनगमन के समय इनके आश्रम पर पधारे थे। भगवान ने उनका ऋषि-जीवन कृतार्थ किया। भक्ति की प्रेम महामुनि सुतीक्ष्ण इन्हीं अगस्त्य जी के शिष्य थे। अगस्त्य संहिता आदि अनेक ग्रन्थों का इन्होंने प्रणयन किया, जो तान्त्रिक साधकों के लिये महान् उपादेय है। यह अगस्त ऋषि जो राम से मिले यह वह वहीं थे जो समन्गर को सुखाया था जो वेद के मंत्रो का साक्षात्कार

किया था ऐसे बहुत ऋषि हुए इनके नाम कि परम्परा दूर तक आइ है जैसे व्यास, वषिष्ठ, अग्नी, आदित्य, अंगिरा, वायु, पुलुस्त, इत्यादि।

सबसे महत्त्व की बात यह है कि महर्षि अगस्त्य ने अपनी तपस्या से अनेक ऋचाओं के स्वरूपों का दर्शन किया था, इसलिये ये मन्त्र द्रष्टा ऋषि कहलाते हैं। ऋग्वेद के अनेक मन्त्र इनके द्वारा दृष्ट हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 165 सूक्त से 191 तक के सूक्तों के द्रष्टा ऋषि महर्षि अगस्त्य जी हैं। साथ ही इनके पुत्र दृढच्युत तथा दृढच्युत के पुत्र इध्मवाह भी नवम मण्डल के 25वें तथा 26वें सूक्त के द्रष्टा ऋषि हैं। महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा आज भी पूज्य और वन्द्य हैं, नक्षत्र-मण्डल में ये विद्यमान हैं। दूर्वाष्टमी आदि व्रतोपवासों में इन दम्पति की आराधना-उपासना की जाती है।

महर्षि अगस्त्य का समुंद्र पान, इल्वल और वातापिः- वैशम्पायन जी कहते हैं-जनमेजय! तदनन्तर प्रचुर दक्षिणा देने वाले कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर ने गया से प्रस्थान किया और अगस्त्याश्रम में जाकर दुर्जय मणिमती नगरी में निवास किया। वहीं वक्ताओं में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने महर्षि लोमश से पूछा-"ब्रह्मन्! अगस्त्य जी ने यहाँ वातापि को किसलिये नष्ट किया? मनुष्यों का विनाश करने वाले उस दैत्य का प्रभाव कैसा था? और महात्मा अगस्त्यजी के मन में क्रोध का उदय कैसे हुआ।"

लोमश जी ने कहा-पांडुनन्दन! पूर्वकाल की बात है, इस मणिमती नगरी में इल्वल नामक दैत्य रहता था वातापि उसी का छोटा भाई था। एक दिन दितिनन्दन इल्वल ने एक तपस्वी ब्राह्मण से कहा-"भगवन! आप मुझे ऐसा पुत्र दें, जो इन्द्र के समान पराक्रमी हो।" उन ब्राह्मण देवता ने इल्वल को इन्द्र के समान पुत्र नहीं दिया। इससे वह असुर उन ब्राह्मण देवता पर बहुत कुपित हो उठा। राजन! तभी से इल्वल दैत्य क्रोध में भरकर ब्राह्मणों की हत्या करने लगा।

वह मायावी अपने भाई वातापि को माया से बकरा बना देता था। वातापि भी इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ था! अत: वह क्षणभर में मेंड़ा और बकरा बन जाता था। फिर इल्वल उस भेड़ या बकरे को पकाकर उसका मांस राँधता और किसी ब्राह्मण को खिला देता था। इसके बाद वह ब्राह्मण को मारने की इच्छा करता था। इल्वल में यह शक्ति थी कि वह जिस किसी भी यमलोक में गये हुए प्राणी को उसका नाम लेकर बुलाता, वह पुन: शरीर धारण करके जीवित दिखायी देने लगता था। उस दिन वातापि दैत्य को बकरा बनाकर इल्वल ने उसके मांस का संस्कार किया और उन ब्राह्मण देव को वह मांस खिलाकर पुन: अपने भाई को पुकारा। राजन! इल्वल के द्वारा उच्च स्वर से बोली हुई वाणी सुनकर वह अत्यन्त मायावी ब्राह्मणशत्रु बलवान महादैत्य वातापि उस ब्राह्मण की पसली को फाड़कर हँसता हुआ निकल आया। राजन! इस प्रकार दुष्टहृदय इल्वल दैत्य बार-बार ब्राह्मणों को भोजन कराकर अपने भाई द्वारा उनकी हिंसा करा देता था।

विवाहः- एक बार अगस्त्य मुनि कहीं चले जा रहे थे। उन्होंने एक जगह अपने पितरों को देखा, जो एक गड्ढे में नीचे मुँह किये लटक रहे थे। तब उन लटकते हुए पितरों से अगस्त्य जी ने पूछा-"आप लोग यहाँ किसलिये नीचे मुँह किये काँपते हुए से लटक रहे है।" यह सुनकर उन वेदवादी पितरों ने उत्तर दिया-"संतान परम्परा के लोप की सम्भावना के कारण हमारी यह दुर्दशा हो रही है।" अपने पितरों की यह दुर्दशा देखने के बाद अगस्त्य मुनि ने विवाह करने का निश्चय किया। अगस्त्य ने एक अनुपम शिशु की रचना की और उन्हीं दिनों विदर्भ-नरेश भी सन्तान-प्राप्ति के लिए कठिन तपस्या करने में लीन थे। मैंने जिस शिशु की रचना की है, वही इस नरेश की पुत्री के रूप में जन्म लेगी। छ:

महीनों बाद रानी ने एक कन्या को जन्म दिया। राजा की खुशी का ठिकना न रहा। ब्राह्मण श्रेष्ठ! मेरी तपस्या सफल हुई. मुझे एक कन्या-रत्न की प्राप्ति हुई है।

बालिका का सौन्दर्य देखकर ब्राह्मणगण मुग्ध रह गये। यह बालिका लोपामुद्रा के नाम से प्रसिद्ध हुई. लोपामुद्रा बड़ी होकर अद्वितीय सुन्दरी और परम चरित्रवती के रूप में विकसित हुई. अगस्त्य मुनि राजा के पास पहुँचे और उन्होंने कहा कि मैं आपकी पुत्री से विवाह करना चाहता हूँ। राजा ये बात सुनकर चिन्ता में डूब गए. उसी समय लोपामुद्रा राजा के पास आयी और बोली-"पिता जी, आप दुविधा में क्यों पड़ गये? मैं ऋषिवर से विवाह करने के लिए प्रस्तुत हूँ।" लोपामुद्रा और अगस्त्य मुनि का विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह के पश्चात् अगस्त्य मुनि ने लोपामुद्रा से कहा कि-"तुम्हारे ये राजकीय वस्त्र ऋषि-पत्नी को शोभा नहीं देते। इनका परित्याग कर दो।" लोपामुद्रा ने कहा-"जो आज्ञा, स्वामी! अब से मैं छाल, चर्म और वल्कल ही धारण करूँगी।" कुछ समय बाद लोपामुद्रा ने कहा-"स्वामी मेरी एक इच्छा है।" ऋषि बोले-"कहो, क्या इच्छा है तुम्हारी?" लोपामुद्रा ने कहा-"हम ठहरे गृहस्थ! हमारे लिए धन से सम्पन्न होना कोई अपराध न होगा। प्रभु, मैं उसी तरह रहना चाहती हूँ, जैसे अपने पिता के घर रहती थी।" ऋषि बोले-"अच्छा तो मैं धन-प्राप्ति के लिए जाता हूँ। तुम यहीं मेरी प्रतीक्षा करना।" अगस्त्य चल पड़े। मैं राजा श्रुतर्वा के पास चलूँ। कहते हैं, वे अत्यन्त समृद्ध हैं।

जब अगस्त्य राजा श्रुतर्वा के दरबार में पहुँचे तो महाराज श्रुतर्वा ने पूछा-"महात्मन, बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?" अगस्त्य बोले-"मैं तुमसे कुछ धन माँगने आया हूँ। तुम अपनी सामर्थ्य के अनुसार मुझे धन प्रदान करो।" राजा ने कहा-"मेरे पास देने को अतिरिक्त धन नहीं है। फिर भी जो है, उसमें से आप इच्छानुसार ले सकते हैं।" अगस्त्य ऋषि नीतिवान थे। अगर मैं इस राजा से कुछ लेता हूँ, तो दूसरों को उससे वंचित होना पड़ेगा। उन्होंने श्रुतर्वा से कहा-"मैं तुमसे कुछ नहीं ले सकता। आओ, हम राजा बृहदस्थ के पास चलें।" लेकिन रजा बृहदस्थ के पास भी देने लायक़ अतिरिक्त धन नहीं था। ऋषि अगस्त्य ने कहा-"शायद, राजा त्रसदस्यु मेरी कुछ सहायता कर सकें। आओ, हम सब उनके पास चलें।" लेकिन जब वे लोग राजा त्रसदस्यु के यहाँ पहुँचे तो राजा त्रसदस्यु भी उनको धन देने में असमर्थ रहे। तीनों राजा एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। अन्त में उन्होंने समवेत स्वर में कहा-"यहाँ इल्वल नामक एक असुर रहता है, जिसके पास अथाह धन है। आइये, हम उसके पास चलें।" इल्वल महाधूर्त राक्षस था। उसका एक भाई भी था, जिसका नाम वातापि था। वे दोनों ही ब्राह्मणों से घृणा करते थे और ब्राह्मणों की हत्या का उन्होंने संकल्प ले रखा था। जब अगस्त्य तीनों राजाओं के साथ इल्वल के साम्राज्य में पहुँचे, वह उनके स्वागत के लिए तैयार बैठा था। उनके वहाँ पहुँचते ही उसने कहा-"आइये, आप सबका स्वागत है। मैंने आपके लिए विशेष भोजन तैयार करवाया है।" तीनों राजाओं को आशंका हुई. हमें अगस्त्य मुनि को सावधान कर देना चाहिए. जब उन्होंने ऋषि को बताया तो ऋषि ने कहा-"चिन्ता मत करो। मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा।" अगस्त्य ने भोजन शुरू किया। सचमुच ऐसा स्वादिष्ट भोजन पहली बार खाने को मिला।

जब ऋषि अगस्त्य ने अन्तिम कौर ग्रहण किया तो इल्वल ने वातापि को आवाज़ दी। वातापि बाहर आओ. इल्वल क्रोध से पागल हो उठा। अगस्त्य बोले-"अब वह कैसे बाहर आ सकता है? मैं तो उसे खाकर पचा भी गया।" इल्वल ने अपनी हार स्वीकार कर ली। उसने अगस्त्य से कहा-"आपका किस उद्देश्य से आना हुआ? मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?" अगस्त्य बोले-"हमें पता है कि तुम बड़े धनवान हो। इन राजाओं को और मुझे धन चाहिए. औरों को

वंचित किए बिना जो भी दे सकते हो हमें दे दो।" इल्वल पल-भर को चुप रहा। फिर उसने कहा कि-"मैं हर एक राजा को दस-दस हज़ार गायें और उतनी ही मुहरें दूँगा और अगस्त्य ऋषि को बीस हज़ार गायें और उतनी ही मुहरें दूँगा, इसके अलावा मैं उनकी सेवा में अपना सोने का रथ और घोड़े भी अर्पित कर दूँगा। आप ये सारी वस्तुएँ स्वीकार करें।" इल्वल के घोड़े धरती पर वायु-वेग से दौड़ते हैं। वे लोग पल-भर में ही ऋषि अगस्त्य के आश्रम पहुँच गये। अब राजाओं ने ऋषि अगस्त्य से जाने की आज्ञा माँगी और ऋषि ने उन्हें जाने की आज्ञा दे दी। उन लोगों के जाने के बाद ऋषि अगस्त्य लोपामुद्रा के पास गये और कहा कि-"लोपामुद्रा, जो तुम चाहती थीं वह मैं ले आया। अब हम तुम्हारी इच्छानुसार जीवन बिताएँगे।" कई वर्षों बाद लोपामुद्रा ने एक पुत्र को जन्म दिया। इस प्रकार ऋषि अगस्त्य ने अपने पितरों को दिया हुआ वचन पूरा किया।

10-वैदिक ऋषि अंगिरस

अंगिरस अथवा अंगिरा नाम के ऋषि का उल्लेख वेदों से लेकर अनेक पुराणों में मिलने से अनुमान लगाया जाता है कि यह एक नहीं, अनेक व्यक्तियों का नाम है। इन्हें ऋग्वेद के अनेक मंत्रों का द्रष्टा बताया जाता है। अथर्ववेद के पाँच कल्पों में से अंगिरस कल्प के दृष्टा भी यही हैं। इसलिए इनका एक नाम अथर्वा भी है। एक उल्लेख के अनुसार अग्नि को भी सर्वप्रथम अंगिरा ने ही उत्पन्न किया था। वाणी और छंद के प्रथम ज्ञाता भी यही बताए गए हैं। यह भी उल्लेख मिलता है कि पहले ये मनुष्य योनि में थे, जो बाद में देवता बन गए।

अथर्ववेद, वैष्णव सम्प्रदाय, गीता कर्म जिज्ञासा, चार्वाक दर्शन, बृहदारण्यकोपनिषद, भृगु, छान्दोग्य उपनिषद, ऋभुगण एवं राष्ट्रकूट वंश के,

उत्पत्तिः- अंगिरस शब्द का निर्माण उसी धातु से हुआ है, जिससे अग्नि का और एक मत से इनकी उत्पत्ति भी आग्नेयी (अग्नि की कन्या) के गर्भ से मानी जाती है। मतांतर से इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से मानी जाती है। श्रद्धा, शिवा, सुरूपा मारीची एवं दक्ष की स्मृति, स्वधा तथा सती नामक कन्याएँ इसकी पत्नियाँ मानी जाती हैं, परंतु ब्रह्मांड एवं वायु पुराणों में सुरूपा मारीची, स्वराट् कार्दमी और पथ्या मानवी को अथर्वन की पत्नियाँ कहा गया है। अथर्ववेद के प्रारंभकर्ता होने के कारण इनकी अथर्वा भी कहते हैं।

मनुस्मृति के अनुसारः- मनुस्मृति में भी यह कथा है कि आंगिरस नामक एक ऋषि को छोटी अवस्था में ही बहुत ज्ञान हो गया था; इसलिए उसके काका–मामा आदि बड़े बूढ़े नातीदार उसके पास अध्ययन करने लग गए थे। एक दिन पाठ पढ़ाते–पढ़ाते आंगिरस ने कहा पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान्। बस, यह सुनकर सब वृद्धजन क्रोध से लाल हो गए और कहने लगे कि यह लड़का मस्त हो गया है! उसको उचित दण्ड दिलाने के लिए उन लोगों ने देवताओं से शिकायत की। देवताओं ने दोनों ओर का कहना सुन लिया और यह निर्णय लिया कि 'आंगिरस ने जो कुछ तुम्हें कहा, वही न्याय है।' इसका कारण यह है किः–

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः। यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥

'सिर के बाल सफ़ेद हो जाने से ही कोई मनुष्य वृद्ध नहीं कहा जा सकता; देवगण उसी को वृद्ध कहते हैं जो तरुण होने पर भी ज्ञानवान हो'

स्वायंभुव मन्वंतरः- स्वायंभुव मन्वंतर में अंगिरा को ब्रह्मा के सिर से उत्पन्न बताया गया है। दक्ष प्रजापति ने अपनी पुत्री स्मृति का इनसे विवाह किया था। वैवस्वत मन्वंतर में ये शंकर के वरदान से उत्पन्न हुए और अग्नि ने अपने पुत्र के समान इनका पालन-पोषण किया। चाक्षुष मन्वंतर में दक्ष प्रजापति की कन्याएँ सती और स्वधा इनकी पत्नियाँ थीं। भागवत में स्यमंतक मणि की चोरी के प्रसंग में इनके श्री कृष्ण से मिलने का भी उल्लेख आया है। शर-शैया पर पड़े भीष्म पितामह के दर्शनों के लिए भी अपने शिष्यों के साथ गए थे। स्मृतिकारों ने अंगिरस के धर्मशास्त्र का उल्लेख किया है। महाभारत में भी 'अंगिरस स्मृति' का उल्लेख मिलता है। उपनिषद में इनको ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र बताया गया है, जिन्हें ब्रह्म विद्या प्राप्त हुई. शौनक को इन्होंने विद्या के दो रूपों परा (वेद, व्याकरण आदि का ज्ञान) तथा अपरा (अक्षर का ज्ञान) से परिचित कराया था। इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक में एक नाम का उल्लेख सिद्ध करता है कि इस नाम की या तो कोई वंश परम्परा थी या कोई गद्दी। इनका कुल जिसमें भारद्वाज और गौतम भी हुए, 'आग्नेय' नाम से प्रसिद्ध था।

जीवनसारः- अथर्ववेद का प्राचीन नाम अथर्वानिरस है। इनके पुत्रों के नाम हविष्यत्, उतथ्य, बृहस्पति, बृहत्कीर्ति, बृहज्ज्योति, बृहद्ब्रह्मन् बृहत्मंत्र; बृहद्भास, मार्कंडेय और संवर्त बताए गए हैं और भानुमती, रागा (राका) , सिनी वाली, अर्चिष्मती (हविष्मती) , महिष्मती, महामती तथा एकानेका (कुहू) इनकी सात कन्याओं के भी उल्लेख मिलते हैं। नीलकंठ के मत से उपर्युक्त बृहत्कीत्यादि सब बृहस्पति के विशेषण हैं। आत्मा, आयु, ऋतु, गविष्ठ, दक्ष, दमन, प्राण, सद, सत्य तथा हविष्मान् इत्यादि को अंगिरस के देवपुत्रों की संज्ञा से अभिहित किया गया है। भागवत के अनुसार रथीतर नामक किसी निस्संतान क्षत्रिय को पत्नी से इन्होंने ब्राह्मणोपम पुत्र उत्पन्न किए थे। याज्ञवल्क्य स्मृति में अंगिरसकृत धर्मशास्त्र का भी उल्लेख है। अंगिरा की बनाई आंगिरसी श्रुति का महाभारत में उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के ऋषि अंगिरा हैं।

11-वैदिक ऋषि मनु महाराज

मनु जो एक धर्मशास्त्रकार थे, धर्मग्रन्थों के बाद धर्माचरण की शिक्षा देने के लिये आदिपुरुष स्वयंभुव मनु ने स्मृति की रचना की जो मनुस्मृति के नाम से विख्यात है। ये ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से थे जिनका विवाह ब्रह्मा के दाहिने भाग से उत्पन्न शतरूपा से हुआ था। उत्तानपाद जिसके घर में ध्रुव पैदा हुआ था, इन्हीं का पुत्र था। मनु स्वायंभुव का ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत पृथ्वी का प्रथम क्षत्रिय माना जाता है। इनके द्वारा प्रणीत 'स्वायंभुव शास्त्र' के अनुसार पिता की संपत्ति में पुत्र और पुत्री का समान अधिकार है। इनको धर्मशास्त्र का और प्राचेतस मनु अर्थशास्त्र का आचार्य माना जाता है। मनुस्मृति ने सनातन धर्म को आचार संहिता से जोड़ा था।

परिचयः- आपव नामक प्रजापति के धर्म से अयोनिज कन्या शतरूपा का जन्म हुआ। आपव (जो कि बाद में स्वायंभुव मनु कहलाये) ने प्रजा की रचना करने के उपरांत शतरूपा को अपनी पत्नी बना लिया। उसके पुत्र का नाम वीर हुआ। वीर ने प्रजापति कर्दम की कन्या काम्या से विवाह किया तथा दो पुत्रों को जन्म दिया- (1) प्रियव्रत तथा (2) उत्तानपाद। मनु की विस्तृत संतति में ही ध्रुव, वेन इत्यादि हुए. वेन से मनुगण बहुत रुष्ट थे क्योंकि वह अनाचारी था। मुनियों ने उसके दाहिने हाथ का मंथन किया, जिससे राजा पृथु का जन्म हुआ। वे राजसूय यज्ञ करने वाले राजाओं में सर्वप्रथम था। प्रजाओं को जीविका देने की इच्छा से उसने पृथ्वी से अन्न तथा दूध का दोहन आरंभ किया जा सके. साथ-साथ राक्षस, पितर, देवता, अप्सरा, नाग इत्यादि सब इस कर्म में लग गये। कालांतर में उसके दो पुत्र हुए

अंतर्धान तथा पातिन। अंतर्धान से शिखंडिनी ने हविर्धान को जन्म दिया। अग्नि की पुत्री धिषणा से हविर्धान ने छह पुत्रों को जन्म दिया-प्राचीनवर्हिस्, शुक्र, गय, कृष्ण, ब्रज और अजिन। प्राचीनवर्हिस ने घोर तप करके समुद्र-कन्या सवर्णा से विवाह किया। उसके दस पुत्र हुए जो एक ही धर्म का पालन करते थे। वे प्रचेता नाम से विख्यात हुए।

ब्रह्मा चिंतातुर थे। 'संभवत: देव ही नहीं चाहता कि सृष्टि का विस्तार हो, अन्यथा इतने प्रयत्न के उपरांत भी मैं सृष्टि का विस्तार नहीं कर पा रहा हूं।' उनके ऐसा सोचते ही उनका शरीर 'क' कहलाता है। अत: दोनों भाग काय (शरीर) कहलाये। उनमें से एक मनु (पुरुष) था, दूसरी शतरूपा (स्त्री) थी। स्वायंभुव मनु ने शतरूपा से पांच संतान प्राप्त कीं: दो पुत्र-प्रियव्रत, उत्तानपाद तथा तीन कन्याएं-आकूति, देवहूति तथा प्रसूति। मनु ने ब्रह्मा से पूछा कि वे प्रजा के निवास के लिए कौन-सा स्थान ठीक समझते हैं? ब्रह्मा ने चिंतन आरंभ किया, अत: जल में डूबी हुई पृथ्वी को जल के ऊपर लाने का कार्य विष्णु (बाराह) ने किया।

मनु का उल्लेख ऋग्वेद काल से ही मानव सृष्टि के आदि प्रवर्तक और समस्त मानव जाति के आदि-पिता के रूप में किया जाता रहा है। इन्हें 'आदिपुरुष' भी कहा गया है। आरंभ में मनु और यम का अस्तित्व अभिन्न था। बाद में मनु को जीवित मनुष्यों का और यम को दूसरे लोक में, मृत मनुष्यों का आदिपुरुष माना गया।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार एक मछली ने मनु से प्रलय की बात कही थी और बाद में इन्हीं से सृष्टि चली। अन्यत्र ये विराट के पुत्र बताए गए हैं जिनसे प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई. मत्स्य पुराण मनु को 'मनुस्मृति' का रचयिता और एक शास्त्र प्रवर्तक मानता है। पुराणों के अनुसार मनु चौदह हुए हैं।

वैदिक संहिताओं में मनु को ऐतिहासिक व्यक्ति माना गया है। ये सर्वप्रथम मानव था जो मानव जाति के पिता तथा सभी क्षेत्रों में मानव जाति के पथ प्रदर्शक स्वीकृत हैं। वैदिक कालीन जलप्लावन की कथा के नायक मनु ही है।

मनु को विवस्वान [5] या वैवस्वत [6] , विवस्वन्त (सूर्य) का पुत्र; सावर्णि (सवर्णा का वंशज) एवं सांवर्णि [7] संवरण का वंशज) कहते हैं। प्रथम नाम पौराणिक है, जबकि दूसरे नाम ऐतिहासिक हैं। सावर्णि को लुड्विग तुर्वसुओं का राजा कहते हैं, किन्तु यह मान्यता सन्देहपूर्ण है। पुराणों में मनु को मानव जाति का गुरु तथा प्रत्येक मन्वन्तर में स्थित कहा गया है। वे जाति के कर्त्तव्यों (धर्म) के ज्ञाता है।

भगवद्गीता (10. 6) भी मनुओं का उल्लेख करती है। मनु नामक अनेक उल्लेखों से प्रतीत होता है कि यह नाम न होकर उपाधि है। मनु शब्द का मूल मन् धातु (मनन करना) से भी यही प्रतीत होता है। मेधातिथि, जो मनुस्मृति के भाष्यकार हैं, मनु को उस व्यक्ति की उपाधि कहते हैं, जिसका नाम प्रजापति है। वे धर्म के प्रकृत रूप के ज्ञाता थे एवं मानव जाति को उसकी शिक्षा देते थे। इस प्रकार यह विदित होता है कि मनु एक उपाधि है।

मनुरचित 'मानव धर्मशास्त्र' भारतीय धर्मशास्त्र में आदिम व मुख्य ग्रंथ माना जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में जहाँ मानव धर्मशास्त्र के अवतरण आये हैं वे सूत्र रूप में हैं और प्रचलित मनुस्मृति के श्लोकों से नहीं मिलते। वह सूत्रग्रन्थ 'मानव धर्मशास्त्र' अभी तक देखने में नहीं आया। वर्तमान मनुस्मृति को उन्हीं मूल सूत्रों के आधार पर लिखी हुई कारिका मान सकते हैं। वर्तमान सभी स्मृतियों में यह प्रधान समझी जाती है।

12-वैदिक विद्वान वैज्ञानिक विश्वामित्र के द्वारा अन्तरिक्ष में स्वर्ग की स्थापना

राजा हिरिश्चन्द राम के पुर्वज थे, राम के पीता दसरथ, दसरथ के पीता रघु और रघु के पिता अज थे। राम जिस धनुश को धारण करते थे वह अज नाम से ही जाना जाता है राम के इनसे कई पिढ़ी पहले हरिश्चन्द हुये उनके पिता त्रिशंकु थे। जो महर्षि वैज्ञानिक विश्वामित्र के बहुत बड़े भक्त थे। एक बार महर्षि को भी किसी कारण बश वहा स्वर्ग से निस्काशित कर दिया गया क्योंकि वह त्रीशंकु अपने भक्त को भी वहाँ स्वर्ग में स्थान दिलान या रखना चाहते थे। देवतावों ने यह प्रस्ताव ऋषी विश्वामित्र का अस्विकार कर दिया और कारण बताया की वह त्रिशंकु बिलाशी राजा है जो यहाँ स्वर्ग में रहने योग्य नहीं है। यह देवतावों की बात सुन कर ऋषि बिश्वामित्र को अपना अपमान समझ में आया इसलिये उन्होने स्वर्ग का त्याग कर दिया और निचे संसार में रहने लगे, देवतावों से अपने अपमान का बदला लेने के लिये उन्होंने एक बहुत बड़ी योजना बनाई त्रीशंकु के साथ मिल कर जो पृथ्वी का चक्रवर्ति सम्राट था। उसके लिये अंतरिक्ष में एक नया स्वर्ग बनाने की।

विश्वामित्र भी पहले एक सम्राट थे वह भी राज्य चुके थे पृथ्वी पर वह त्रीशंकु के पुर्वज थे।

ऋषि विश्वामित्र के संदर्भ में एक बहुत प्रसिद्ध आख्यान प्रचलित है। एक वार ऋषि विश्वामित्र जब सम्राट हुआ करते थे, उस समय एक युद्ध इनका दैत्यों से हुवा था। उसको जित कर विश्वामित्र अपनी लाखों की सेना के साथ वापिस अपने राज्य की तरफ लौट रहे थे। उनकी सेना और वह बहुत थके हुये थे, वह आराम चाहते थे कुछ समय के लिये, उस समय उनके पास कुछ रसद सामान शेष नहीं बचा हुआ था। तभी उनको उन्हें अपने गुप्तचरों के द्वारा ज्ञात हुआ की यहाँ कुछ दूर पर ब्रह्मऋषि वषिष्ट का आश्रम है। तो विश्वामित्र अपने एक सेवक को भेजा वषिष्ट के आश्रम में भेज कर याचना की उनके लिये और उनके सेना के लिये कुछ रसद खाने पिने का सामान उपलब्ध करायें, वषिष्ट ने उत्तर में कहलवाया की ठीक है आप सब आराम करें कुछ समय में सभी सामग्री आप सब के पास पहुच जायेगी।

इस तरह से विश्वामित्र की सेना और वह स्वयं आश्रम के समिप एक नदी किनार अपना पड़ाव डाल दिया। जैसा की उनको बताया गया था कि कुछ समय में सभी वस्तु उनके पास पहुंच जायेगी। ठीक वैसा हुवा थोड़े ही समय में सभी सेना के लिये खाने पिने रहने के लिये सभी प्रकार का पर्याप्त सामान पहुचा दिया गया, यह जान कर विश्वामित्र को बहुत आश्चर्य हुआ। जो कार्य मैं पूर्ण करने में बिवश हो रहा हुं इस जंगल में वह कार्य एक साधु ने इतना जल्दि कैसे संभव कर दिया? इस कारण को जानने के लिये वह स्वयं वषिष्ट से मिलने के लिये उनके आश्रम में गये और ब्रह्म ऋषि वषिष्ट से विश्वामित्र ने पुछा की आप ने यह सब कैसे किया? इतने बड़े लाव लस्कर सेना को तृप्त कर दिया। तब ब्रह्म ऋषि वषिष्ट ने अपने पास विद्यमान एक गाय काम धेनु के बारे में बताया कि यह सब इस तो काम धेनु गाय ने किया है। यह जानकर विश्वामित्र काम धेनु को देखना चाहा। जब ब्रह्मऋषि ने, विश्वामित्र को काम धेनु गाय का दर्शन कराया तो उसको देखकर विश्वामित्र बहुत मोहित हो गये और उन्होंने वह कामधेनु अपने महल में ले जाने की इच्छा जाहिर कर दी। यह काम धेनु जो सागर मंथन से निकली थी जिसको देवता और दैत्यों ने मिल कर किया था। ब्रह्मऋषि वषिष्ट ने कहा यह तो कामधेनु स्वयं निश्चय करती है कि इसे कहा रहना है। कामधेनु ने विश्वामित्र के महल में जाने से मना कर दिया। विश्वामित्र ने अपनी सभी प्रकार की नितियों का प्रयोग किया कामधेनु को अपने महल में लाने के लिये। साम, दाम, दण्ड, भेद लेकिन वह किसी प्रकार से सफल नहीं हुये। अन्त में उन्हें अपनी पराजय स्विकार करनी पड़ी। फिर उन्होंने अपने पास के सभी विद्वान मंत्री से मंत्रणा की यह कैसे संभव हो गया? की कामधेनु एक सम्राट को छोड़ कर आश्रम में क्यों रहना चाहती है? तब उनके सभी विद्वान मंत्री सहयोगीयों ने बताया की वषिष्ट कोई साधारण मानव नहीं ब्रह्मऋषि है। विश्वामित्र ने कहा कि क्या वह सम्राट से बड़े है? उनको उत्तर मिला हाँ महाराज इस तरह से विश्वामित्र ब्रह्मऋषि वषिष्ट के सरण में आकर राज्य का त्याग कर दिया और ब्रह्मऋषि के साधना में तल्लिन हो गये काफी समय के बाद वह ब्रह्मऋषि की उपाधी से ब्रह्मऋषि वषिष्ट द्वारा सम्बोधित किये गये

और उनको स्वर्ग में अस्थान मिल गया वहाँ बहुत समय रहने के बाद जब त्रीशंकु को बचन देने के कारण स्वर्ग का त्याग कर दिया और एक नया स्वर्ग बनाने में जुट गये।

महर्षि विश्वामित्र जो एक महान वैज्ञानिक थे अपने शिष्यों के साथ मिलकर त्रीशंकु को जीवित स्वर्ग में पहुंचाने के लिये, उन्होंने एक नये उपग्रह स्वर्ग नाम से अंतरिक्ष में निर्वाण किया और उसे पृथ्वि और चंद्रमा के मध्य में स्थापित कर दिया, वह पुरी तरह से मानव निर्मित एक उपग्रह था। वहाँ मानव को रहने की सभी सुबिधायें थी, वह एक कृतिम उपग्रह था। जैसा कि आज के समय में अमेरिका, चाईना, रुश आदि देशों ने अपना एक स्पैश स्टेशन अंतरिक्ष में बना रखा है, यद्यपि यह बहुत छोटे है यहाँ पर कुछ एक मानव वैज्ञानिक सोध करने के लिये रहते है, भविष्य में मानव यहाँ पर घुमने जा सकता है। जहाँ पर कल्पना चावला जा कर जब वापिस आ रही थी, उसका स्पैश क्राफ्ट रास्ते में ब्लास्ट कर गया, जिससे उस स्पैशक्राफ्ट के सभी सात सदस्य कल्पना चावला समेत मारे गये थे। वहाँ भारतिय मुल की सुनिता बिलियम्स भी जा कर आ चुकी है।

विश्वामित्र का बनाया गया उपग्रह काफ़ी बड़ा और सब प्रकार की सुख सुबिधा समपन्न था वहाँ पर त्रीशंकु अपने काफी आदमियों के साथ रहने लगे। लेकिन यह बात और दूसरे देवता वैज्ञानिक ऋषि जो हिमालय के स्वर्ग पर रहते थे उन्हें अच्छी नहीं लगी कि कोई उनसे श्रेष्ठ अस्थान पर रहे और उनसे अच्छा जीवन जीये। क्योंकि जो स्वर्ग महर्षि विश्वामित्र ने बनाया था वहाँ रहने वाले की उम्र भी बढ़ जाती थी और बहुत प्रकार कि सुबिधा थी, जो पृथ्वी पर विद्यमान स्वर्ग था वहाँ के लोगों को गवारा नहीं था। उन सब ने विश्वीमित्र को निचा दिखाने के लिये बहुत प्रकार के सणयंत्र रचने लगे। जिसमे सबसे पहले विश्वामित्र को जहाँ से सबसे अधिक धन मिलता था अर्थात त्रीशंकु के राज्य से जो अब उनके पुत्र राजा हरिश्चंद के अधिपत्य में चलता था। सभी देवता गड़ राजा हरिश्चंद को झुठा और असत्य सिद्ध करने के लिये संसार में प्रचारित करने लगे, गुप्त रूप से यह हरिश्चन्द को बहुत बुरा लगा। उन्होंने सम्पूर्ण संसार में अपनी प्रतिष्ठा को सिद्ध करने के लिये, यह घोषणा कर दि की जो कोई उनको झुठा सिद्ध कर देगा वह उन्हें अपना सर्वश्व दान कर देगें, यहाँ तक राजा हरिश्चंद ने स्वप्न में भी झुठ नहीं बोलने की कसम खा रखी थी। विश्वामित्र को अपने कार्यक्रम अंतरिक्ष में बनाये स्वर्ग के लिये निरनंतर धन की आवश्यक्ता थी वह जानते थे देवता गड़ राजा हरिश्चंद को यदी झुठा सिद्ध कर दिया। अपने सणयंत्र के द्वारा और उनसे राज्य और उनका धन छिन लिया तो स्वर्ग का उनका कार्यक्रम रुक सकता है। या कोई भयानक विघ्न पड़ सकता है। यह बिचार कर करके उन्होंने एक योजना बनाई कि राजा हरिश्चंद को भी उनके साम्राज्य समेत स्वर्ग में स्थापित किया जाये और पृथ्वि का त्याग कर दिया जाये, जिससे यहाँ पृथ्वी के दैत्य हिमालय के स्वर्ग के देवता में संघर्ष होगा और हम देवता के सणयंत्र से बच जायेगे और हमारा अंतरिक्ष का स्वर्ग सामाराज्य के साथ सुरक्षित हो जायेगा। यह बात जब राजा हरिश्चंद को महर्षि विश्वामित्र ने उनके स्वप्न में आ कर बताया और कहा कि यह इच्छा उनके पिता की भी है। लेकिन राजा हरिश्चंद को अपनी सत्य के प्रति निष्ठा और संसार में अपनी प्रतिष्ठा अपने पिता त्रीशंकु की इच्छा से बहुत अधिक बहुमूल्य था। वह किसी किमत पर पृथ्वी को छोड़ना नहीं चाहते थे। भले हि इसके लिये उनको अपना सर्वस्व राज्य पाठ धन, सम्पदा, मान, मर्यादा सब कुछ दाव पर लगाना पड़े। वह बिल्कुल तैयार थे, उनके साथ उनकी पत्नी और उनका बेटा भी तैयार था। जब महर्षि विश्वामित्र और त्रीशंकु को यह ज्ञात हो गया कि किसी भी प्रकार से राजा हरिश्चंद अपने बचन से अडिग नहीं होने वाला है, सत्य मार्ग से जो इसके सर पर चढ़ गया है। इससे इसका सब कुछ छिन लिया जाये तो सायद दुःखों के थपेड़ों और कष्ट पूर्ण क्लेशों कि आधियों से बौखला कर हमारी सरण में आ जाये। त्रिशंकु की सहमति से महर्षि विश्वामित्र ने राजा हरिश्चंद से कहा कि मैं अगले दिन सुबह तुम्हारे दरबार में आउंगा और तुम अपना सब कुछ जो राज्य पाठ तुम्हारे पिता के द्वारा तुम्हे मिला है। उनकी आज्ञा का पालन न करने के कारण मुझे दान कर देना, जिसके लिये राजा हरिश्चंद तैयार हो गये। सुबह होने पर जैसे ही दरबार लगा राजा हरिश्चंद सिंहाषन पर बिराजमान हुये तभी महर्षि विश्वामित्र उनके सामने उपस्थित हो गये और अपना स्वप्न में आने की बात का याद दिला राज्य को लेने कि बात की, जिसके लिये राजा हरिश्चंद सहर्ष तैयार हो गये और वह अपनी पत्नी और पुत्र को साथ लेकर भिखारी के भेष में राज्य से बाहर जाने के लिये तैयार हुये। तब महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि यह दान जो तुमने दिया है यह तुम्हारे पिता कि बिराषत है। तुम्हारी स्वयं की नहीं है, इसके अतिरीक्त तुम्हें दक्षिणा देना होगा पांच

सहस्र जो तुम्हें कही और से पांच दिन में व्यवस्था करना होगा, इसके लिय भी राजा हरिश्चंद तैयार होगये और राज्य से प्रस्थान किया। बहुत दुःखों कष्टों पिड़ावों को सह-सह कर चुर हो गयें भुखे प्यासे, उनकी कोई सहायता करने वाला नहीं खड़ा हुआ, क्योंकि जो उनकी सहायता करने का प्रयाश करता वह देवताओं और महर्षि विश्वामित्र के कोप का भाजन बनता था। जिससे किसी कि हिम्मत ही नहीं हुई, की वह राजा हरिश्चंद और उनके परिवार की किसी प्रकार से सहायता कर सके, इसके अतिरिक्त रोज महर्षि विश्वामित्र अपने दक्षिणा को लेने के लिये निरंतर दबाव बनाते रहते थे। क्योंकि महर्षि विश्वामित्र नहीं चाहते थे कि यह राजा हरिश्चंद केवल सत्य और अपने बचन कि रक्षा के लिये महान अशहनिय कष्टों को सहे, वह समझते थे राजा हरिश्चंद झुक जायेगें और अपने बचन से बिमुख हो जायेंगे। लेकिन यह नहीं हो सका राजा हरिश्चंद ने भयानक कष्टों को सहा और अंत में कई दिनों में अयोद्धा से काशी शिव की नगरी पहुचें गये। जहाँ उनको कोई पहचानता नहीं था वहाँ एक चौराहे पर खड़े हो गये जहाँ दाश-दाशियाँ बिकते थे वहाँ पर वह अपने पत्नी और बच्चे को एक व्यापारी के हाथों में बेच दिया और स्वयं को एक डोम (धैइकार) को बेच दिया। जिससे उन्हे पांच शहश्त्र स्वर्ण मुद्रायें मिली जिसे उन्होंने प्रेम से महर्षि विश्वामित्र का दक्षिणा रूप ऋण दे कर उऋण हुये। स्वयं को डोम के सम्सान घाट पर मुर्दा फुंक-फुंक कर जीवको पार्जन करने में लगा लिया और पत्नी बच्चा उस ब्यापारी के घर की दाशी बन कर जीवको पार्जन करने लगे।

विश्वामित्र अपने साथ अपना सारा धन सामराज्य और स्त्री-पुरष, पशु, धन इत्यादि सामग्री को लेक कर अपने बनायें स्वर्ग में चले गयें और वहाँ उसका बिस्तार करने लगें।

जब हिमालय के देवताओं को अपनी योजना सफल होती नजर नहीं आई महर्षि विश्वामित्र के स्वर्ग का विस्तार उनकी आंखों तिनके की तरह दुखने लगा। वह सब यह बर्दास्त नहीं कर पा रहे थे कि उनके स्वर्ग से निस्कासित किया गया कोई महर्षि या राजा कैसे अपने लिये अन्तरिक्ष में स्वर्ग बनाकर रह सकता है? यह उनके सम्मान और साधारण जनों में उनके प्रति लोगों की आस्था भी बहुत कम होने लगी थी और ज़्यादा से ज़्यादा लोग अब महर्षि विश्वामित्र के द्वारा बनाये हुये स्वर्ग में राजा त्रिशंकु के साथ रहना चाहते थे। यह सब पृथ्वी पर उपस्थित स्वर्ग के देवताओं को कदापि गवारां नहीं था कि उनके प्रति लोगों कि आस्था कम हो, यह उन सब के अस्तित्व को लेकर बहुत बड़ा खतरा संकेत था और दूसरा कारण था कि पृथ्वी और चंद्रमा के मध्य में स्थित बनाये गये, महर्षि विश्वामित्र का स्वर्ग अपना सारा कार्य सौर्य उर्जा से करता था। जिसके कारण पृथ्वी पर पर्याप्त मात्रा में सूर्य का प्रकाश भी ना मिलने से पृथ्वी ठंडी होने लगी थी और यहाँ पर जीवन के लिये खतरा मंडराने लगा। यदि ऐसा ही चलता रहा कुछ हजार या लाख साल में पृथ्वी पर कोई मानव जीव जन्तु प्राणी जीवित ना बचे और दूसरा कारण बताया गया कि चन्द्रमा का गुरुत्त्वाकर्षण आकर्षण बल कम होगया। क्योंकि उस गुरुत्वाकर्षण बल का उपयोग महर्षि विश्वामित्र नें अपने स्वर्ग को व्यवस्थित रखने में बहु ज़्यादा मात्रा में करने लगे थे। जिसके कारण पृथ्वी पर उपस्थित समंदर में ज्वारभाटा के समय में परि वर्तन आने लगा। सूर्य कि गर्मि कम पड़ने के कारण समंदर का पानी वास्प बहुत कम बनता था और जिसके कारण बारिष की मात्रा पृथ्वी पर कम होगई और इस वजह से पृथ्वी अनाज, फल, सब्जियाँ की पैदावार कम होने लगी थी। लोग हिंसक होने लगे जानवरों प्राणियों को मार-मार कर उनका भोजन के रूप में उपयोग करने लगे। जिसके कारण हिंसक दैत्यों की संख्या में इजाफा होने लगा। हर प्रकार से देवताओं के साथ सभी मानवों पर ग़लत प्रभाव पड़ने लगा। इन सब जानकारियों से महर्षि विश्वामित्र को परिचित कराया गया और सिफारिश की गई की वह अपने बनाये अन्तरिक्ष को नष्ट करके पृथ्वी वापस आकर बश जायें। लेकिन महर्षि विश्वामित्र ने जबाब में देवतावों को बहुत तिखा उत्तर दिया की जब देवता हमारे उपर ध्यान नहीं दिये जब हम पृथ्वि पर रहते थे, अब जब कि हम अपना सर्वस्व लगाकर बहुत आगें निकल आये है तो हमे वापिस आने कि बात करके हमे नष्ट करना चाहते है। यह कदापि संभव नहीं है हमारे लिये। यहाँ हमे कोई नुकसान नहीं है। आप अपनी रक्षा किजीये और मेरे से किसी प्रकार के सहयोग कि कामना ना करें।

पृथ्वि के स्वर्ग के देवतावों को जब सकारात्मक परिणाम नहीं मिला तब उन्हेंने एक बहुत बुरा दूसरा सणयंत्र रचा पहले तो देवतावों का राजा इन्द्र ने त्रीशंकु के पुत्र राजा हरिश्चंद को अपनी तरफ मिलाने कि योजना बनाई।

आगे चलकर गुप्त रूप से सिधा-सिधा राजा हरिश्चंद्र से ना मिल कर इनके परिवार अर्थात इनकी पत्नी शैब्या और पुत्र रोहताश्व को भी इसमें एकत्रित रूप से मिला जाये। जब शैब्या राजा हरिश्चंद्र की पत्नी अपने बेटे रोहताश्व के साथ जिस व्यापारी के यहाँ दासी थी। उसकी पत्नी बहुत दुष्ट और निक्रिष्ट स्वभाव की थी वह शैब्या से बहुत अधिक काम लेती बदले में उसे बहुत थोड़ा भोजन देती थी फिर भी सभी शारिरीक मानसिक। पिड़ाओं को सहकर शाब्या अपनी मालकिन को प्रशन्न रखने का हमेंशा प्रयाश करती रहती थी। फिर भी उसकी मालकिन बहुत नाराज रहती और तरह-तरह के उलाहने निरंतर शाब्या को दिया करती थी। यहाँ तक रोहताश्व से भी वह काम लेती, ऐसा ही चल रहा था, एक दिन रोहताश्व को जंगल में लकड़ीयों को लेने भेज दिया वह लकड़ी लेकर आरहा था तभी देवताएँ का राजा इन्द्र उसे काटने के लिये एक सांप भेज दिया जिसने रोहताश्व को काट लिया जिसके कारण रोहताश्व की हालत बिगड़ गई, यह बात जब शैब्या को बहुत समय तक रोहताश्व लकड़ी लेकर नहीं आया। तब शाब्या उसकी तलाश में जंगल में गई जहाँ उसने उसे रास्ते में मृत पड़ा पया तब उसे पता चला की वह अपने प्रीय पुत्र को खो चुकी है। वह बहुत रोई बिलखी और उसे मरा हुआ मान कर उसके अंतिम संस्कार के लिये अपने गोद में लेकर नदी किनारे रात्री के समय उसी सम्शान घाट पर पहुंची जहाँ पर राजा हरिश्चंद्र पहरा देते थे और मुर्दा जलाने से पहले सभी मुर्दा फुकने वाले से कर लेते थे। रात्री का समय सायं-सायं करती रात चारों तरफ जलती लाशें इधर-उधरी बीखरी थी। चारों तरफ के वायुमंडल में मांस के जलने की भयानक बदबु से भर रहा था, जहाँ कुत्ते भौक रहें थे वह उस स्थान को और भयानक बना रहे थे। आज भी वह राजा हरिश्चंद्र का मुर्दा फुकने वाला घाट काशी (वाराणसी) में प्रशिद्ध है। जब राजा हरिश्चंद ने देखा कि शब्या को और उसके गोद में उनके बेटे रोहताश्व की लाश है, वह पहचान गये लेकिन अपने सत्य धर्म की रक्षा के लिये उन्हेंने ऐसा व्यवहार किया की दोनो अपरचित है। उन्होंने शब्या से कहा यहा किसी शरीर का दाह संस्कार करने से पहले मुझे कर देना होगा उसके बाद ही तुम कोई दाह संस्कार कर सकती हो। शब्या बिलख-बिलख रोते हुये कहा मेरे पास कुछ नहीं है शिवाय यह वस्त्र जिससे मैने अपने शरिर को धक रखा है उसमें आधा ले सकतो तुम दाह संस्कार करने के बदले में। जिसके लिये रजा हरिश्चंद्र तैयार हो गये। शैब्या अपनी साड़ी को फाड़ने के लिये हाथ बढ़ाया तभी देवतावों का राजा इन्द्र उन दोनो के मध्य प्रकट हुआ और कहा कि अब बहुत हो गया तुम जीत गये राजा हरिश्चंद सत्यवादी हो धर्मात्मा हो मैं तुम्हें इस कृत्य से मुक्त करता हूँ और तुम्हारे पुत्र को जीवित करता तुम सब अब हमारे साथ रहो हम तुम्हे अपने साथ रखते है।

इस तरह से हरिश्चंद्र देवतावों के साथ हो लिये।

राजा हरिश्चंद्र की सत्यनिष्ठा और धार्मिक्ता के प्रति समर्पण से प्रशन्न हो कर महर्षि विश्वामित्र ने उनका राज्य पुनः हरिश्चंद्र को वापिस दे दिया और स्वयं समाधि में लिन होगये। त्रीशंकु राजा हरिश्चंद्र के पिता सत्यब्रत अपना सब कुछ यहाँ तक स्वर्ग को भी जो महर्षि विश्वामित्र ने उनके लिये बनाया था। उसे भी राजा हरिश्चमद्र को दे कर शरीर त्याग कर के परमात्मा में विलीन हो गये। इस तरह से देवतावों स्वर्ग को पृथ्वी को बचाया और महर्षि विश्वामित्र के बनाये अन्तरिक्ष में स्वर्ग को अपनी दिव्य अश्त्रों से नष्ट कर दिया।

कर्ण कौरवों की सेना में होते हुए भी महान धर्मनिष्ठ योद्धा थे। भगवान श्रीकृष्ण तक उनकी प्रशंसा करते थे। महाभारत युद्ध में कर्ण ने अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा की थी। उसे सफल बनाने के लिए खांडव वन के महासर्प अश्वसेन ने इसे उपयुक्त अवसर समझा। अर्जुन से वह शत्रुता तो रखता था, पर काटने का अवसर नहीं मिलता था। वह बाण बनकर कर्ण के तरकस में जा घुसा, ताकि जब उसे धनुष पर रखकर अर्जुन तक पहुँचाया जाए, तो अर्जुन को काटकर प्राण हर ले।

कर्ण के बाण चले। अश्वसेन वाला बाण भी चला, लेकिन भगवान श्रीकृष्ण ने वस्तुस्थिति को समझा और रथ-घोड़े जमीन पर बिठा दिए. बाण मुकुट काटता हुआ ऊपर से निकल गया।

असफलता पर क्षुब्ध अश्वसेन प्रकट हुआ और कर्ण से बोला, "अबकी बार अधिक सावधानी से बाण चलाना, साधारण तीरों की तरह मुझे न चलाना। इस बार अर्जुन वध होना ही चाहिए. मेरा विष उसे जीवित रहने न देगा।"

इस पर कर्ण को भारी आश्चर्य हुआ। उसने उस कालसर्प से पूछा, "आप कौन हैं और अर्जुन को मारने में इतनी रूचि क्यों रखते हैं?"

सर्प ने कहा "अर्जुन ने एक बार खण्डव वन में आग लगाकर मेरे परिवार को मार दिया था, इसलिए उसी का प्रतिशोध लेने के लिए मैं व्याकुल रहता हूँ। उस तक पहुँचने का अवसर न मिलने पर आपके तरकस में बाण के रूप में आया हूँ। आपके माध्यम से अपना आक्रोश पूरा करूँगा।"

कर्ण ने उसकी सहायता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए वापस लौट जाने के लिए कहा, "भद्र, मुझे अपने ही पुरुषार्थ से नीति युद्ध लड़ने दीजिए. आपकी अनीतियुक्त सहायता लेकर जीतने से तो हारना अच्छा है।"

कालसर्प कर्ण की नीति-निष्ठा को सराहता हुआ वापस लौट गया। उसने कहा, "कर्ण तुम्हारी यह धर्मनिष्ठा ही सत्य है, जिसमे अनीतियुक्त पूर्वाग्रह को छद्म की कहीं स्थान नहीं।"

13-राजकुमार और उसके पुत्र के बलिदान की कहानीः-

किसी समय शूद्रक नामक राजा राज्य किया करता था। उसके राज्य में वीरवर नामक महाराजकुमार किसी देश से आया और राजा की ड्योढ़ी पर आ कर द्वारपाल से बोला, मैं राजपुत्र हूँ, नौकरी चाहता हूँ। राजा का दर्शन कराओ. फिर उसने उसे राजा का दर्शन कराया और वह बोला—महाराज, जो मुझ सेवक का प्रयोजन हो तो मुझे नौकर रखिये, शूद्रक बोला-तुम कितनी तनख्वाह चाहते हो? वीरवर बोला—नित्य पाँच सौ मोहरें दीजिये। राजा बोला—तेरे पास क्या-क्या सामग्री है? वीरवर बोला—दो बाँहें ओर तीसरा खड्ग। राजा बोला यह बात नहीं हो सकती है। यह सुनकर वीरवर चल दिया। फिर मंत्रियों ने कहा—हे महाराज, चार दिन का वेतन दे कर इसका स्वरुप जान लीजिये कि यह क्या उपयोगी है, जो इतना धन लेता है या उपयोगी नहीं है। फिर मंत्री के वचन से बुलवाया और वीरवर को बीड़ा देकर पाँच सौ मोहरें दे दी और उसका काम भी राजा ने छुप कर देखा। वीरवर ने उस धन का आधा देवताओं को और ब्राह्मणों को अर्पण कर दिया। बचे हुए का आधा दुखियों को, उससे बचा हुआ भोजन के तथा विलासादि में खर्च किया। यह सब नित्य काम करके वह राजा के द्वार पर रातदिन हाथ में खड्ग लेकर सेवा करता था और जब राजा स्वयं आज्ञा देता, तब अपने घर जाता था। फिर एक समय कृष्णपक्ष की चौदस के दिन, रात को राजा को करुणासहित रोने का शब्द सुना। शूद्रक बोला-यहाँ द्वार पर कौन-कौन है? उसने कहा-महाराज, मैं वीरवर हूँ। राजा ने कहा-रोने की तो टोह लगाओं। जो महाराज की आज्ञा, यह कहकर वीरवर चल दिया और राजा ने सोचा-यह बात उचित नहीं है कि इस राजकुमारों को मैंने घने अंधेरे में जाने की आज्ञा दी। इसलिये मैं उसके पीछे जा कर यह क्या है, इसका निश्चय करूँ। फिर राजा भी खड्ग लेकर उसके पीछे नगर से बाहर गया और वीरवर ने जा कर उस रोती हुई, रूप तथा यौवन से सुंदर और सब आभूषण पहिने हुए किसी स्त्री को देखा और पूछा-तू कौन है? किसलिये रोती है? स्त्री ने कहा-मैं इस शूद्रक की राजलक्ष्मी हूँ। बहुत काल से इसकी भुजाओं की छाया में बड़े सुख से विश्राम करती

थी। अब दूसरे स्थान में जाऊँगी। वीरवर बोला-जिसमें नाश का संभव है, उसमें उपाय भी है। इसलिए कैसे फिर यहाँ आपका रहना होगा? लक्ष्मी बोली-जो तू बत्तीस लक्षणों से संपन्न अपने पुत्र शक्तिधर को सर्वमंगला देवी की भेंट करे, तो मैं फिर यहाँ बहुत काल तक रहूँ। यह कह कर वह अंतर्धान हो गई. फिर वीरवर ने अपने घर जा कर सोती हुई अपनी स्त्री को और बेटे को जगाया। वे दोनों नींद को छोड़, उठ कर खड़े हो गये। वीरवर ने वह सब लक्ष्मी का वचन उनको सुनाया। उसे सुन कर शक्तिधर आनंद से बोला-मैं धन्य हूँ, जो ऐसे, स्वामी के राज्य की रक्षा के लिए मेरा उपयोग प्रशंसनीय है। इसलिए अब विलंब का क्या कारण है? ऐसे काम में देह का त्याग प्रशंसनीय है।

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत। सन्निमित्ते वरंत्यागो विनाशे नियते सति॥ अर्थात, पण्डित को परोपकार के लिए धन और प्राण छोड़ देने चाहिए, विनाश तो निश्चत होगा ही, इसलिये अच्छे कार्य के लिए प्राणों का त्याग श्रेष्ठ है। शक्तिधर की माता बोली-जो यह नहीं करोगे तो और किस काम से इस बड़े वेतन के ऋण से उनंतर होगे? यह विचार कर सब सर्वमंगला देवी के स्थान पर गये। वहाँ सर्वमंगला देवी की पूजा कर वीरवर ने कहा-हे देवी, प्रसन्न हो, शूद्रक महाराज की जय हो, जय हो। यह भेंट लो। यह कह कर पुत्र का सिर काट डाला। फिर वीरवर सोचने लगा कि-लिये हुए राजा के ऋण को तो चुका दिया। अब बिना पुत्र के जीवित किस काम का? यह विचार कर उसने अपना सिर काट दिया। फिर पति और पुत्र के शोक से पीड़ित स्त्री ने भी अपना सिर काट डाला, तब राजा आश्चर्य से सोचने लगा,

जीवन्ति च म्रियन्ते च मद्विधा: क्षुद्रजन्तवः। अनेन सदृशो लोके न भूतो न भविष्यति॥

अर्थात, मेरे समान नीच प्राणी संसार में जीते हैं और मरते भी हैं, परंतु संसार में इसके समान न हुआ और न होगा। इसलिए ऐसे महापुरुष से शून्य इस राज्य से मुझे भी क्या प्रयोजन है बाद में शूद्रक ने भी अपना सिर काटने को खड्ग उठाया। तब सर्वमंगला देवी ने राजा का हाथ रोका और कहा-हे पुत्र, मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, इतना साहस मत करो। मरने के बाद भी तेरा राज्य भंग नहीं होगा। तब राजा साष्टांग दंडवत और प्रणाम करके बोला—हे देवी, मुझे राज्य से क्या है या जीन से भी क्या प्रयोजन है? जो मैं कृपा के योग्य हूँ तो मेरी शेष आयु से स्त्री पुत्र सहित वीरवर जी उठे। नहीं तो मैं अपना सिर काट डालूँगा। देवी बोली"—हे पुत्र, जाओ तुम्हारी जय हो। यह राजपुत्र भी परिवार सहित जी उठे। यह कह कर देवी अन्तध्यान हो गई. बाद में वीरवर अपने स्त्री-पुत्र सहित घर को गया। राजा भी उनसे छुप कर शीघ्र रनवास में चला गया। इसके उपरांत प्रातःकाल राजा ने ड्योढ़ी पर बैठे वीरवर से फिर पूछा और वह बोला-हे महाराज, वह रोती हुई स्त्री मुझे देखकर अंतध्यान हो गई और कुछ दूसरी बात नहीं थी। उसका वचन सुन कर राजा सोचने लगा-" "इस महात्मा की किस प्रकार बड़ाई करूँ।"

प्रियं ब्रूयादकृपणः शूरः स्यादविकत्थनः। दाता नापात्रवर्षी च प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः।

क्योंकि, उदार पुरुष को मीठा बोलना चाहिये, शूर को अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये, दाता को कुपात्र में दान नहीं करना चाहिए और उचित कहने वाले को दयारहित नहीं होना चाहिये। यह महापुरुष का लक्षण इसमें सब है। बाद में राजा ने प्रातःकाल शिष्ट लोगों की सभा करके और सब वृत्तांत की प्रशंसा करके प्रसन्नता से उसे कर्नाटक का राज्य दे दिया।

एक समय की बात है। एक नगर में एक कंजूस राजेश नामक व्यक्ति रहता था। उसकी कंजूसी सर्वप्रसिद्ध थी। वह खाने, पहनने तक में भी कंजूस था। एक बात उसके घर से एक कटोरी गुम हो गई. इसी कटोरी के दुःख में राजेश ने 3 दिन तक कुछ न खाया। परिवार के सभी सदस्य उसकी कंजूसी से दुखी थे। मोहल्ले में उसकी कोई इज्जत न थी, क्योंकि वह किसी भी सामाजिक कार्य में दान नहीं करता था। एक बार उस राजेश के पड़ोस में धार्मिक

कथा का आयोजन हुआ। वेदमंत्रों व् उपनिषदों पर आधारित कथा हो रही थी। राजेश को सद्बुद्धि आई तो वह भी कथा सुनने के लिए सत्संग में पहुँच गया। वेद के वैज्ञानिक सिद्धांतों को सुनकर उसको भी रस आने लगा क्योंकि वैदिक सिद्धान्त व्यावहारिक व् वास्तविकता पर आधारित एवं सत्य-असत्य का बोध कराने वाले होते है। कंजूस को ओर रस आने लगा। उसकी कोई कदर न करता फिर भी वह प्रतिदिन कथा में आने लगा। कथा के समाप्त होते ही वह सबसे पहले शंका पूछता। इस तरह उसकी रूचि बढती गई. वैदिक कथा के अंत में लंगर का आयोजन था इसलिए कथावाचक ने इसकी सूचना दी कि कल लंगर होगा। इसके लिए जो श्रद्धा से कुछ भी लाना चाहे या दान करना चाहे तो कर सकता है। अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार सभी लोग कुछ न कुछ लाए. कंजूस के हृदय में जो श्रद्धा पैदा हुई वह भी एक गठरी बांध सर पर रखकर लाया। भीड़ काफी थी। कंजूस को देखकर उसे कोई भी आगे नहीं बढ़ने देता। इस प्रकार सभी दान देकर यथास्थान बैठ गए. अब कंजूस की बारी आई तो सभी लोग उसे देख रहे थे। कंजूस को विद्वान की ओर बढ़ता देख सभी को हंसी आ गई क्योंकि सभी को मालूम था कि यह महाकंजूस है। उसकी गठरी को देख लोग तरह-तरह के अनुमान लगते ओर हँसते। लेकिन कंजूस को इसकी परवाह न थी। कंजूस ने आगे बढ़कर विद्वान ब्राह्मण को प्रणाम किया। जो गठरी अपने साथ लाया था, उसे उसके चरणों में रखकर खोला तो सभी लोगों की आँखें फटी-की-फटी रह गई. कंजूस के जीवन की जो भी अमूल्य संपत्ति गहने, जेवर, हीरे-जवाहरात आदि थे उसने सब कुछ को दान कर दिया। उठकर वह यथास्थान जाने लगा तो विद्वान ने कहा, "महाराज! आप वहाँ नहीं, यहाँ बैठिये।" कंजूस बोला, "पंडित जी! यह मेरा आदर नहीं है, यह तो मेरे धन का आदर है, अन्यथा मैं तो रोज आता था और यही पर बैठता था, तब मुझे कोई न पूछता था।" ब्राह्मण बोला, " नहीं, महाराज! यह आपके धन का आदर नहीं है, बल्कि आपके महान त्याग (दान) का आदर है। यह धन तो थोड़ी देर पहले आपके पास ही था, तब इतना आदर-सम्मान नहीं था जितना की अब आपके त्याग (दान) में है इसलिए आप आज से एक सम्मानित व्यक्ति बन गए है। शिक्षा:-मनुष्य को कमाना भी चाहिए और दान भी अवश्य देना चाहिए. इससे उसे समाज में सम्मान और इष्टलोक तथा परलोक में पुण्य मिलता है।

14- कहानी ब्रह्मचर्य महिमा

शिवकुमार नाम के चक्रवर्ती पुत्र ने विरक्त होकर तीन हजार स्त्रियों के बीच में रहते हुये थी 'असिधारा' व्रत अर्थात् निरतिचार ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया। चौंसठ हजार वर्ष तक इस प्रकार असिधारा व्रत का धारण करके वे स्पर्ग में महर्द्धिक देव हुये। वहाँ से आकर जम्बूकुमार हो गये हैं। किसी समय पुष्कलावती देश में राजभवन के निकट किसी सेठ के घर में चारणऋद्धिधारी श्रुतकेवली ऐसे सागरचन्द्र नाम के मुनिराज आहार के लिये पधारे। सेठ जी ने शुद्ध भावपूर्वक नवकोटि विशुद्ध प्रासुक आहार मुनिराज को दिया। ऋद्धिधारी मुनिराज को दान देने के माहात्म्य से सेठ के आँगन में आकाश से रत्नों की वृष्टि आदि पंच आश्चर्य होने लगे। उस समय जय—जयकार शब्दों के द्वारा कोलाहल के पैल जाने पर राजभवन में स्थित राजपुत्र शिवकुमार ने कौतुकपूर्वक बाहर देखा। अहो! मैंने किसी भव में इन मुनिराज का दर्शन किया है। ऐसा सोचते ही उसे तत्क्षण जाति स्मरण हो गया। पूर्वभव के ये बड़े भाई हैं, ऐसा निश्चित करके वह मुनिराज के पास आया और स्नेह के अतिरेक से मूर्च्छित हो गया। इस वृतांत को सुनकर चक्रवर्ती स्वयं वहाँ आकर पुत्र के मोह से व्याकुल होते हुए अत्यधिक विलाप करने लगे। पिता के इस प्रकार शोक को देखकर अत्यर्थ विरक्त हो कुमार ने जैसे—तैसे घर में रहना स्वीकार कर लिया और उसी दिन से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए यह शुद्ध सम्यग्दृष्टि अपने मित्र दृढ़वर्मा के द्वारा भिक्षा से लोय गये कृत कारित आदि दोषों से रहित शुद्ध भोजन को कभी—कभी ग्रहण करता था।

उसी दिन से कुमार निश्चितही सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करके एक वस्त्रधारी, ब्रह्मचारी होता हुआ मुनि के समान घर में रहता था। बहुत प्रकार के पक्ष, मास उपवास आदि रूप से अनशन आदि तपों को करते हुए महाविरक्तमना कुमार ने पाँच सौ स्त्रियों के बीच में रहते हुए असिधाराव्रत (पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत) का पालन किया था। इस प्रकार से चौंसठ हजार वर्ष तक असधिाराव्रत का पालन करते हुए आयु के अंत में दिगम्बर मुनि होकर समाधिपूर्वक मरण करके ब्रह्मोतर नामक छठे स्वर्ग में दश सागर की आयु को प्राप्त करने वाला विद्युन्माली नाम का महान अहमिंद्र हो गया।

श्रेणिक महाराज द्वारा अनुशासित राजगृह नगर में अर्हद्दास नाम के सेठ रहते थे। उनकी धर्म परायणा जिनमती नाम की भार्या थीं। किसी समय रात्रि के पिछले भाग में जिनमती सेठानी ने जंबूवृक्ष आदि पंच उत्तम–उत्तम स्वप्न देखे। प्रात: काल अपने पति के साथ जिनमंदिर में जाकर तीन ज्ञानधारी मुनिराज के मुखारविंद से 'चरम शरीरी पुत्र का तुम्हें लाभ होगा' ऐसा सुनकर दोनों जन बहुत ही संतुष्ट हुये। विद्युन्माली नाम का अहमिंद्रचर जीव स्वर्ग से च्युत होकर जिनमती के गर्भ में आया और नवमास के अनन्तर जिनमती ने पुत्र को जन्म दिया। फाल्गुन मास की शुक्लपक्ष पुंर्णिमा के प्रात: काल पुत्र का जन्म होने पर उत्सव मनाया गया। दान, सम्मान, नृत्य, गीत आदि के द्वारा सर्वत्र हर्षोल्लास का वातावरण हो गया। माता–पिता ने उस बालक का 'जंबूकुमार' यह नामकरण किया। बचपन में वह कुमार सभी गुण और सभी कलाओं में विख्यात थे, पवित्रर्मूति और पुण्यात्मा थे।

युवावस्था में प्रवेश करने पर उसी नगर के सागरदत्त आदि चार सेठों ने अपनी–अपनी पुत्रियों की जंबूकुमार के साथ ब्याह करने के लिये सगाई कर दी थी, वे कन्यायें पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री और रूपश्री नाम वाली बहुत ही सुन्दर और नवयौवना थीं। कदाचित् बसन्त ऋतु की क्रीड़ा में जंबूकुमार ने अपनी शक्ति के बल से एक मदोन्मत्त हाथी को वश में कर लिया जिससे कि वे सर्वत्र प्रशंसा को प्राप्त हुये।

किसी समय जंबूकुमार ने रत्नचूल नाम के विद्याधर को युद्ध में जीतकर मृगांक नामक राजा की विशालवती कन्या की रक्षा की और राजा श्रेणिक के साथ उसका विवाह हो गया। अनन्तर युद्ध क्षेत्र को देखकर जंबूकुमार के मन में महती दया के साथ–साथ ही वैराग्य उत्पन्न हो गया।

राजगृही नगरी के उपवन में अपने पाँच सौ शिष्यों सहित श्री सुधर्माचार्य वर्य पधारे। जंबूकुमार वहाँ पहुँचे, उन्हें नमस्कार कर स्तुति आदि के द्वारा उनकी पूजा करके और उनसे पूर्व जन्म के वृत्तांत को सुनकर जैनेश्वरी दीक्षा की याचना की। आचार्यश्री ने कहा कि तुम घर में जाकर मात–पिता से दीक्षा की बात कह दी। मोह के माहात्म्य से माता–पिता ने जिस–तिस किसी प्रकार से उसी दिन ही जिन से सगाई हुई थी उन चारों कन्याओं के साथ विवाह करा दिया और उसी रात्रि में एक कमरे में चारों ही नव–विवाहित पत्नियों के साथ बैठे हुये वे कुमार उन स्त्रियों से अलिप्त रहते हुये वैराग्य को बढ़ाने वाली कथाओं से रात्रि बिताने लगे। इसी बीच अत्यन्त चिंतित हुई माता जिनमती बार–बार जंबूकुमार के कमरे के पास घूम रही थीं कि कुमार इन स्त्रियों में आसक्त होता है या नहीं? उसी समय विद्युच्चर नाम का चोर चोरी करने के लिए उस भवन में आया था। इस घटना को जानकर माता जिनमती के अग्राह से वह चोर बहुत प्रकार के उपायों से जंबूकुमार को घर में रहने के लिये समझाने लगा। किन्तु कुमार ने सभी उपेक्षा करके प्रात: काल ही गुरु के पास पहुँच कर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली, उस समय विद्युच्चर चोर भी अपने पाँच सौ साथियों के साथ दीक्षित हो गया, पिता अर्हद्दास ने भी दीक्षा ले ली। माता जिनमती ने भी अपनी चारों बहुओं के साथ सुप्रभा आर्यिका के समीप आर्यिका दीक्षा ले ली। जिस दिन सुधर्माचार्य गुरु मुक्ति को प्राप्त हुये हैं उसी दिन जंबूस्वामी को केवल ज्ञान प्रगट हो गया, इसलिये जंबूस्वामी अनुबद्ध केवली कहलाये हैं। जंबूस्वामी के मोक्ष जाने पर उस दिन से कोई केवली नहीं हुये हैं।

धन्य हैं ये जंबूस्वामी कि जो पूर्वभव में असिधारा व्रत का अनुष्ठान करके इस भव में तत्काल विवाही हुई नवीन पत्नियों में सर्वथा अनासक्त होते हुये अखंड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके मुक्ति लक्ष्मी में आसक्त हो गये, उन्हें मेरा बारंबार नमस्कार होवे।

महिमा ब्रम्हचर्य की

भीष्म पितामह ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत के प्रसाद से लौकांतिक देव के पद को प्राप्त कर लिया था। विशल्या के प्रभाव से लक्ष्मण के लगी हुई 'अमोघशक्ति' नाम की विद्या का प्रभाव खत्म हो गया था। किन्तु विवाहित होने के बाद में उसमें वह विशेषता नहीं रह सकती थी। इस प्रकार से पूर्ण ब्रह्मचर्य की महिमा तो अलौकिक है ही। यह तीन लोक पूज्य व्रत माना जाता है। किन्तु जो एक देश रूप ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं वे भी देवों द्वारा पूजा को प्राप्त होते हैं।

सीता, मनोरमा, सेठ सुदर्शन आदि के उदाहरण विश्व प्रसिद्ध हैं। किन्तु जो व्यभिचार की भावना भी करते हैं वे लोक में निंद्य होकर अपयश के भागी बनते हैं तथा परलोक में दुर्गति को प्राप्त कर लेते हैं। उनका नाम भी लोगों को नहीं सुहाता है जैसे कि रावण, सूर्पनखा, दु: शासन आदि। कुछ लोगों का कहना है कि भोगों को भोगकर पुन: त्याग करना चाहिए अन्यथा इन्द्रियों का दमन नहीं हो सकता है किन्तु यह सर्वथा ग़लत धारणा है। देखो! अग्नि में यदि तीन लोक प्रमाण भी ईंधन डालते चले जाओ तो क्या वह कभी तृप्त हो सकती है? नहीं, वह तो जलती ही रहेगी और उसकी ज्वालायें बढ़ती ही चली जायेंगी। उसी प्रकार से भोगों की लालसा भोगने से कभी भी शांत न होकर वृद्धिगंत ही होती है अत: उसको शांत करने के लिए शील की नव बाड़ लगानी चाहिए और मन—वचन—काय से स्त्री के सम्पर्क को छोड़कर आत्मा के अपूर्व आनन्द का अनुभव करना चाहिए. विषयों में आसक्त हुए मनुष्य प्राय: विवेक शून्य हो जाते हैं।

कहा भी है

'चक्षुषान्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित्। अन्धा मनुष्य चक्षु से ही नहीं देखता है किन्तु विषयों में अंधा हुआ मनुष्य किसी भी प्रकार से नहीं देखता है। अत: हमेशा वैराग्य भावना आदि पाठों को पढ़ते हुए अंतरंग में विरक्ति को बढ़ाना चाहिए. जैसाकि वैराग्यभावना में भी बताया है-

ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर मनवांछित फल पावे। तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके लहर जहर की आवे॥

बिना ब्रह्मचर्य के आज तक किसी ने मुक्ति को प्राप्त न किया है और न कर ही सकते हैं। ऐसा समझकर ब्रह्मचर्य व्रत की उपासना करते हुए अपने आत्मिक सुख को प्राप्त करना चाहिए.

दश धर्म एक कल्पवृक्ष है

क्षमामूल मृदुत्वं स्यात्, स्कंध शाखा: सदार्जवम्। शौचं कं सत्यपत्राणि, पुष्पाणि संयमस्तप:॥१॥

त्यागश्चाकिञ्चनो ब्रह्म मंजरी सुमनोहरा। धर्मकल्पद्रुमश्चैष, दत्ते स्वश्च शिवं फलम्॥२॥

धर्मकल्पतरो! त्वाहं समुपास्य पुन: पुन:। ज्ञानमत्या श्रिया युक्तं, याचे मुक्त्यैकसत्फलम्॥३॥

क्षमा जिसकी जड़ है, मृतुता स्वंध है, आर्जव शाखायें हैं, उसको सिचित करने वाला शौचधर्म जल है सत्यधर्म पत्ते हैं, संयम, तप और त्याग रूप पुष्प खिल रहे हैं, आकिञ्चन और ब्रह्मचर्य धर्म रूप सुन्दर मंजरियाँ निकल आई हैं। ऐसा

यह धर्मरूप कल्पवृक्ष स्वर्ग और मोक्षरूप फल को देता है। हे धर्मकल्पतरो! मैं तुम्हारी पुन: पुन: उपासना करके तुमसे ज्ञानमती लक्ष्मी से युक्त मुक्तिरूपी एक सर्वोत्कृष्ट फल की ही याचना करता हूँ॥१ से ३॥

*धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

*ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास।

*धर्म से मोक्ष और अर्थ से काम साध्य माना गया है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ जीवन में धर्म, अर्थ और काम का महत्त्व है। वानप्रस्थ और संन्यास में धर्म प्रचार तथा मोक्ष का महत्त्व माना गया है।

प्राचीन भारत में ऋषि-मुनि वन में कुटी बनाकर रहते थे। जहाँ वे ध्यान और तपस्या करते थे। उक्त जगह पर समाज के लोग अपने बालकों को वेदाध्यन के अलावा अन्य विद्याएँ सीखने के लिए भेजते थे। धीरे-धीरे यह आश्रम संन्यासियों, त्यागियों, विरक्तों धार्मिक यात्रियों और अन्य लोगों के लिए शरण स्थली बनता गया। यहीं पर तर्क-वितर्क और दर्शन की अनेक धारणाएँ विकसित हुई. सत्य की खोज, राज्य के मसले और अन्य समस्याओं के समाधान का यह प्रमुख केंद्र बन गया। कुछ लोग यहाँ सांसारिक झंझटों से बचकर शांतिपूर्वक रहकर गुरु की वाणी सुनते थे। इसे ही ब्रह्मचर्य और संन्यास आश्रम कहा जाने लगा। ब्रह्मचर्य आश्रम को ही मठ या गुरुकुल कहा जाता है। ये आधुनिक शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा के केंद्र होते हैं। यह आश्रय स्थली भी है। पुष्ट शरीर, बलिष्ठ मन, संस्कृत बुद्धि एवं प्रबुद्ध प्रज्ञा लेकर ही विद्यार्थी ग्रहस्थ जीवन में प्रवेश करता है। विवाह कर वह सामाजिक कर्तव्य निभाता है। संतानोत्पत्ति कर पितृऋण चुकता करता है। यही पितृ यज्ञ भी है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम में रहकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की शिक्षा लेते हुए व्यक्ति को 50 वर्ष की उम्र के बाद वानप्रस्थ आश्रम में रहकर धर्म और ध्यान का कार्य करते हुए मोक्ष की अभिलाषा रखना चाहिए अर्थात उसे मुमुक्ष हो जाना चाहिए. ऐसा वैदज्ञ कहते हैं।

आश्रमों की अपनी व्यवस्था होती है। इसके नियम होते हैं। आश्रम शिक्षा, धर्म और ध्यान व तपस्या के केंद्र हैं। राज्य और समाज आश्रमों के अधीन होता है। सभी को आश्रमों के अधीन माना जाता है। मंदिर में पुरोहित और आश्रमों में आचार्यगण होते हैं। आचार्य की अपनी जिम्मेदारी होती है कि वे किस तरह समाज में धर्म कायम रखें। राज्य के निरंकुश होने पर अंकुश लगाएँ। किस तरह विद्यार्थियों को शिक्षा दें, किस तरह वे आश्रम के संन्यासियों को वेदाध्ययन कराएँ और मुक्ति की शिक्षा दें। संन्यासी ही धर्म की रीढ़ हैं। राज्य, समाज, मंदिर और आश्रम को धर्म संघ के अधीन माना गया है। आचार्यों के संगठन को ही संघ कहा जाता है। संघ की अपनी नीति और उसके अपने नियम होते हैं। जो संन्यासी आश्रम से जुड़ा हुआ नहीं है उसे संन्यासी नहीं माना जाता। संन्यासियों का मंदिर से कोई वास्ता नहीं होता।

आश्रम चार हैं-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। आश्रम ही हिंदू समाज की जीवन व्यवस्था है। आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्ति की उम्र 100 वर्ष मानकर उसे चार भागों में बाँटा गया है।

उम्र के प्रथम 25 वर्ष में शरीर, मन और बुद्धि के विकास को निर्धारित किया गया है। दूसरा गृहस्थ आश्रम है जो 25 से 50 वर्ष की आयु के लिए निर्धारित है जिसमें शिक्षा के बाद विवाह कर पति-पत्नी धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह करते हैं। उक्त उम्र में व्यवसाय या कार्य को करते हुए अर्थ और काम का सुख भोगते हैं। 50 से 75 तक की आयु से गृहस्थ भार से मुक्त होकर जनसेवा, धर्मसेवा, विद्यादान और ध्यान का विधान है। इसे वानप्रस्थ कहा गया है। फिर धीरे-धीरे इससे भी मुक्त होकर व्यक्ति संन्यास आश्रम में प्रवेश कर संन्यासियों के ही साथ रहता है।

15-पंचतन्त्र की कहानी पिग्लक

दक्षिण दिशा में सुवर्णवती नामक नगरी है, उसमे वर्धमान नामक एक बनिया रहता था। उसके पास बहुत—सा धन भी था, परंतु अपने दूसरे भाई-बंधुओं को अधिक धनवान देखकर उसकी यह लालसा हुई कि और अधिक धन इकट्ठा करना चाहिए. अपने से नीचे (हीन) अर्थात दरिद्रियों को देख कर किसकी महिमा नहीं बढ़ती है? अर्थात सबका अभिमान बढ़ जाता है और अपने से ऊपर अर्थात अधिक धनवानों को देखकर सब लोग अपने को दरिद्री समझते हैं।

ब्रह्महापि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम्। शशिनस्तुल्यवंशोऽपि निर्धनः परिभूयते॥

जिसके पास बहुत-सा धन है, उस ब्रह्मघातक मनुष्य का भी सत्कार होता है और चंद्रमा के समान अतिनिर्मल वंश में उत्पन्न हुए भी निर्धन मनुष्य का अपमान किया जाता है। जैसे नवजवान स्त्री बूढ़े पति को नहीं चाहती है, वैसे ही लक्ष्मी भी निरुद्योगी, आलसी, "" प्रारब्ध में जो लिखा है, सो होगा" ऐसा भरोसा रख कर चुपचाप बैठने वाले, तथा पुरुषार्थ हीन मनुष्य को नहीं चाहती है।

आलस्यं स्त्री सेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम्। संतोषो भीरुत्वं षड् व्याघाता महत्त्वस्य॥

और भी आलस्य, स्त्री की सेवा, रोगी रहना, जन्मभूति का स्नेह, संतोष और डरपोकपन ये छः बातें उन्नति के लिये बाधक है।

संपदा सुस्थितंमन्यो भवति स्वल्पयापि यः। कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम्॥

जो मनुष्य थोड़ी-सी संपत्ति से अपने को सुखी मानता है, विधाता समाप्तकार्य मान कर उस मनुष्य की उस संपत्ति को नहीं बढ़ाता है। निरुत्साही, आनंदरहित, पराक्रमहीन और शत्रु को प्रसन्न करने वाले ऐसे पुत्र को कोई स्त्री न जने अर्थात ऐसे पुत्र का जन्म न होना ही अच्छा है। नहीं पाये धन के पाने की इच्छा करना, पाये हुए धन की चोरी आदि नाश से रक्षा करना, रक्षा किये हुए धन को व्यापार आदि से बढ़ाना और अच्छी तरह बढ़ाए धन को सत्पात्र में दान करना चाहिए. क्योंकि लाभ की इच्छा करने वाले को धन मिलता ही है एवं प्राप्त हुए परंतु रक्षा नहीं किये गये खजाने का भी अपने आप नाश हो जाता है और भी यह है कि बढ़ाया नहीं गया धन कुछ काल में थोड़ा व्यय हो कर काजल के समान नाश हो जाता है और नहीं भोगा गया भी खजाना वृथा है।

धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते, बलेन कि यश्च रिपून्न बाधते। श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत्, किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत्।

उस धन से क्या है? जो न देता है और न खाता है, उस बल से क्या है? जो वैरियों को नहीं सताता है, उस शास्त्र से क्या है? जो धर्म का आचरण नहीं करता है और उस आत्मा से क्या है? जो जितेंद्रिय नहीं है। जैसे जल की एक बूँद के गिरने से धीरे-धीरे घड़ा भर जाता है, वही कारण सब कारण सब प्रकार की विद्याओं का, धन का और धर्म का भी है।

दानोपभोगरहिता दिवसा यस्य यान्ति वै। स कर्मकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति॥

दान और भोग के बिना जिसके दिन जाते हैं, वह लुहार की धोंकनी के समान सांस लेता हुआ भी मरे के समान है।

यह सोच कर नंदक और संजीवक नामक दो बैलों को जुए में जोतकर और छकड़े को नाना प्रकार की वस्तुओं से लादकर व्यापार के लिए कश्मीर की ओर गया।

अंजनस्य क्षयं दृष्ट्व वल्मीकस्य च संचयम्। अवन्धयं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु॥

काजल के क्रम से घटने को और वाल्मीक नामक चीटी के संचय को देखकर, दान, पढ़ना और कामधंधा में दिन को सफल करना चाहिए. बलवानों को अधिक बोझ क्या है? और उद्योग करने वालों को क्या दूर है? और विद्यावानों को विदेश क्या है? और मीठे बोलने वालों का शत्रु कौन है? फिर उस जाते हुए का, सुदुर्ग नामक घने वन में, संजीवक घुटना टूटने से गिर पड़ा। यह देखकर वर्धमान चिंता करने लगा-नीति जानने वाला इधर-उधर भले ही व्यापार करे, परंतु उसको लाभ उतना ही होता है कि जितना विधाता के जी में है। सब कार्यों को रोकने वाले संशय को छोड़ देना चाहिये, एवं संदेह को छोड़ कर, अपना कार्य सिद्ध करना चाहिये। यह विचार कर संजीवक को वहाँ छोड़ कर फिर वर्धमान आप धर्मपुर नामक नगर में जा कर एक दूसरे बड़े शरीर वाले बैल को ला कर जुए में जोत कर चल दिया। फिर संजीवक भी बड़े कष्ट से तीन खुरों के सहारे उठ कर खड़ा हुआ। समुद्र में डूबे हुए की, पर्वत से गिरे हुए की और तक्षक नामक सपं से डसे हुए की आयु की प्रबलता मर्म (जीवनस्थान) की रक्षा करती है।

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं, सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति। जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः। कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति॥

दैव से रक्षा किया हुआ धन, बिना रक्षा के भी ठहरता है और अच्छी तरह रक्षा किया हुआ भी, दैव का मारा हुआ नहीं बचता है, जैसे वन में छोड़ा हुआ सहायताहीन भी जीता रहता है, घर पर कई उपाय करने से भी नहीं जीता है। फिर बहुत दिनों के बाद संजीवक अपनी इच्छानुसार खाता पीता वन में फिरता-फिरता हृष्ट-पुष्ट हो कर ऊँचे स्वर से डकराने लगा। उसी वन में पिंगलक नामक एक सिंह अपनी भुजाओं से पाये हुए राज्य के सुख का भोग करता हुआ रहता था। जैसा कहा गया है, मृगों ने सिंह का न तो राज्यतिलक किया और न संस्कार किया, परंतु सिंह अपने आप ही पराक्रम से राज् को पा कर मृगों का राजा होना दिखलाता है और वह एक दिन प्यास से व्याकुल होकर पानी पीने के लिए यमुना के किनारे गया और वहाँ उस सिंह ने नवीन ऋतुकाल के मेघ की गर्जना के समान संजीवक का डकराना सुना। यह सुन कर पानी के बिना पिये वह घबराया-सा लौट कर अपने स्थान पर आ कर विचारने लगा यह क्या है? यह सोचता हुआ चुप—सा बैठ गया और उसके मंत्री के बेटे दमनक और करटक दो गीदड़ों ने उसे वैसा बैठा देखा। उसको इस दशा में देख कर दमनक ने करटक से कहा-भाई करटक, यह क्या बात है कि प्यासा स्वामी पानी को बिना पीये डर से धीरे-धीरे आ बैठा है? करटक बोला—भाई दमनक, हमारी समझ से तो इसकी सेवा ही नहीं की जाती है। जो ऐसे बैठा भी है, तो हमें स्वामी की चेष्ठा का निर्णय करने से क्या प्रयोजन है? क्योंकि इस राजा से बिना अपराध बहुत काल तक तिरस्कार किये गये हम दोनों ने बड़ा दुख सहा है।

सेवया धनमिच्छाद्भिः सेवकै: पश्य यत्कृतम। स्वायब्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम॥

सेवा से धन को चाहने वाले सेवकों ने जो किया, सो देख कि शरीर की स्वतंत्रता भी मूर्खो ने हार दी है और दूसरे पराधीन हो कर जाड़ा, हवा और धूप में दुखों को सहते हैं और उस दुःख के छोटे-से-छोटे भाग से तप करके बुद्धिमान सुखी हो सकता है। स्वाधीनता का होना ही जन्म की सफलता है और जो पराधीन होने पर भी जीते है, तो मरे कौन से हैं? अर्थात वे ही मरे के समान हैं, जो पराधीन हो कर रहते हैं। धनवान पुरुष, आशारुपी ग्रह से भरमाये गये हुए याचकों के साथ, इधर आ, चला आ, बैठ जा, खड़ा हो, बोल, चुप-सा रह इस तरह खेल किया करते हैं।

अबुधैरर्थलाभाय पण्यस्त्रीभिरिव स्वयम्। आत्मा संस्कृत्य-संस्कृत्य परोपकरणीकृतः॥

जैसे वेश्या दूसरों के लिए सिंगार करती है, वैसे ही मूर्खों ने भी धन के लाभ के लिए अपनी आत्मा को संस्कार करके हृष्ट पुष्ट बनवा कर पराये उपकार के लिए कर रखी हैं। जो दृष्टि स्वभाव से चपल है और मल, मूत्र आदि नीची वस्तुओं पर भी गिरती है, ऐसी स्वामी की दृष्टि का सेवक लोग बहुत गौरव करते हैं।

मौनान्मूर्खः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा, क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः। धृष्टः पार्श्वे वसति नियतं दूरतश्चाप्रगल्भः, सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः॥

चुपचाप रहने से मूर्ख, बहुत बातें करने में चतुर होने से उन्मत्त अथवा बातूनी, क्षमाशील होने से डरपोक, न सहन सकने से नीतिरहित, सर्वदा पास रहने से ढीठ और दूर रहने से घमंडी कहलाता है। इसलिए सेवा का धर्म बड़ा रहस्यमय है, योगियो से भी पहचाना नहीं जा सका है। विशेष बात यह है कि जो उन्नति के लिए झुकता है, जीने के लिए प्राण का भी त्याग करता है और सुख के लिए दुखी होता है, ऐसा सेवक को छोड़कर और कौन भला मूर्ख हो सकता है। दमनक बोला—मित्र, कभी यह बात मन से भी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि खामियों की सेवा यत्न से क्यों नहीं करनी चाहिये, जो सेवा से प्रसन्न हो कर शीघ्र मनोरथ पूरे कर देते हैं। स्वामी की सेवा नहीं करने वालों को चमर के ढ़लाव से युक्त ऐश्वर्य और ऊँचे दंड वाले श्वेत छत्र और घोड़े हाथियों की सेना कहाँ धरी है? करटक बोला—तो भी हमको इस काम से क्या प्रयोजन है? क्योंकि अयोग्य कामों में व्यापार करना सर्वथा त्यागने के योग्य है। दमनक ने कहा—तो भी सेवक को स्वामी के कामों का विचार अवश्य करना चाहिये। करटक बोला—जो सब काम पर अधिकारी प्रधान मंत्री हो वही करे। क्योंकि सेवक को पराये काम की चर्चा कभी नहीं करनी चाहिये। पशुओं का ढुढ़ना हमारा काम है। अपने काम की चर्चा करो। परंतु आज उस चर्चा से कुछ प्रयोजन नहीं। क्योंकि अपने दोनों के भोजन से बचा हुआ आहार बहुत धरा है। दमनक क्रोध से बोला—क्या तुम केवल भोजन के ही अर्थी हो कर राजा की सेवा करते हो? यह तुमने अयोग्य कहा। मित्रो के उपकार के लिये और शत्रुओं के अपकार के लिए चतुर मनुष्य राजा का आश्रय करते हैं और केवल पेट कौन नहीं भर लेता है? अर्थात सभी भरते हैं।

जीविते यस्य जीवन्ति विप्रा मित्राणि बान्धवाः। सफलं जीवितं तस्य आत्मार्थे को न जीवति?

जिसके जीने से ब्राह्मण, मित्र और भाई जीते हैं, उसी का जीवन सफल है और केवल अपने स्वार्थ के लिए कौन नहीं जीता है? जिसके जीने से बहुत से लोग जिये वह तो सचमुच जिया और यों तो काग भी क्या चोंच से अपना पेट नहीं भर लेता है? कोई मनुष्य पाँच पुराण में दासपने को करने लगता है, कोई लाख में करता है ओर कोई एक लाख में भी नहीं मिलता है।

मनुष्यजातौ तुल्यायाँ भृत्यत्वमतिगर्हितम। प्रथमों यो न तत्रापि स किं जीवत्सु गण्यते॥

मनुष्यों को समान जाति के सेवकाई काम करना अति निन्दित है और सेवकों में भी जो प्रथम अर्थात सबका मुखिया नहीं है, क्या वह जीते हुओं में गिना जा सकता है? अर्थात उसका जीना और मरना समान है।

अहितहितविचारशून्यबुध्देः। श्रुतिसमयैर्वहुभिस्तिरस्कृतस्य। उदरभरणमात्रकेवलेच्छोः। पुरुषपशोश्च पशोश्च को विशेषः?

हित और अहित के विचार करने में जड़मति वाला और शास्त्र के ज्ञान से रहित होकर जिसकी इच्छा केवल पेट भरने की ही रहती है, ऐसा पुरुष रुपी पशु और सचमुच पशु में कौन-सा अंतर समझा जा सकता है? अर्थात ज्ञानहीन एवं केवल भोजन की इच्छा रखने वाले से घास खाकर जीने वाला पशु अच्छा है। करकट बोला—हम दोनों मंत्री नहीं है, फिर हमें इस विचार से क्या? दमनक बोला-कुछ काल में मंत्री प्रधानता व अप्रधानता को पाते हैं। इस दुनिया में कोई किसी का स्वभाव से अर्थात जन्म से सुशील अर्थवा दुष्ट नहीं होता है, परंतु मनुष्य को अपने कर्म ही बड़पन को

अथवा नीचपन को पहुँचाते हैं। मनुष्य अपने कर्मों से कुए के खोदने वाले के समान नीचे और राजभवन के बनाने वाले के समान ऊपर जाता है, अर्थात मनुष्य अपना उच्च कर्मों से उन्नति को और हीन कर्मों से अवनति को पाता है। इसलिये यह ठीक है कि सबकी आत्मा अपने ही यत्न के अधीन रहती है। करकट बोला—तुम अब क्या कहते हो? वह बोला—यह स्वामी पिंगलक किसी न किसी कारण से घबराया—सा लौट करके आ बैठा है। करटक ने कहा—क्या तुम इसका भेद जानते हो? दमनक बोला—इसमें नहीं जानने की बात क्या है? जताए हुए अभिप्राय को पशु भी समझ लेता है और हांके हुए घोड़े और हाथी भी बोझा ढोते हैं। पण्डित कहे बिना ही मन की बात तर्क से जान लेता है, क्योंकि पराये चित्त का भेद जान लेना ही बुद्धियों का फल है। आकार से, हृदय के भाव से, चाल से, काम से, बोलने से और नेत्र और मुंह के विकार से औरों के मन की बात जान ली जाती है। इस भय के सुझाव में बुद्धि के बल से मैं इस स्वामी को अपना कर लूँगा। जो प्रसंग के समान वचन को, स्नेह के सदृश मित्र को और अपनी सामर्थ्य के सदृस क्रोध को समझता है, वह बुद्धिमान है। करटक बोला—मित्र, तुम सेवा करना नहीं जानते हो। जो मनुष्य बिना बुलाये घुसे और बिना पूछे बहुत बोलता है और अपने को राजा का प्रिय मित्र समझता है, वह मूर्ख है। दमनक बोला—भाई, मैं सेवा करना क्यों नहीं जानता हूँ? कोई वस्तु स्वभाव से अच्छी और बुरी होती है, जो जिसको रुचती है, वही उसको सुंदर लगती है।

यस्य यस्य हि यो भावस्तेन तेन हि तं नरम। अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवशं नयेत॥

बुद्धिमान को चाहिए कि जिस मनुष्य का जैसा मनोरथ होय उसी अभिप्राय को ध्यान में रख कर एवं उस पुरुष के पेट में घुस कर उसे अपने वश में कर ले। थोड़ा चाहने वाला, धैर्यवान, पण्डित तथा सदा छाया के समान पीछे चलने वाला और जो आज्ञा पाने पर सोच-विचार न करे। अर्थात यथार्थरुप से आज्ञा का पालन करे ऐसा मनुष्य राजा के घर में रहना चाहिये।

करटक बोला—जो कभी कुसमय पर घुस जाने से स्वामी तुम्हारा अनादर करे। वह बोला—ऐसा हो तो भी सेवक के पास अवश्य जाना चाहिये। दोष के डर से किसी काम का आरंभ न करना यह कायर पुरुष का चिंह है। हे भाई, अजीर्ण के डर से कौन भोजन को छोड़ते हैं

आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं, विद्याविहीनमकुलीनमसंगतं वा। प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो वसति तं परिवेष्टयन्ति॥

पास रहने वाला कैसा ही विद्याहीन, कुलहीन तथा विसंगत मनुष्य क्यों न हो राजा उसी से हित करने लगता है, क्योंकि राजा, स्त्री और बेल ये बहुधा जो अपने पास रहता है, उसी का आश्रय कर लेते हैं।

करटक बोला—वहाँ जा कर क्या कहोगे? वह बोला—सुनो पहिले यह जानूँगा कि स्वामी मेरे ऊपर प्रसन्न है या उदास है? करटक बोला—इस बात को जानने का क्या चिंह है? दमनक बोला—सुनो दूर से बड़ी अभिलाषा से देख लेना, मुसकाना, समाचार आदि पूछने में अधिक आदर करना, पीठ पीछे भी गुणों की बड़ाई करना, प्रिय वस्तुओं में स्मरण रखना।

असेवके चानुरक्तिर्दानं सप्रियभाषणम्। अनुरक्तस्य चिह्मानि दोषेऽपि गुणसंगंहः।

जो सेवक न हो उसमें भी स्नेह दिखाना, सुंदर-सुंदर वचनों के साथ धन आदि का देना और दोष में भी गुणों का ग्रहण करना, ये स्नेहयुक्त स्वामी के लक्षण हैं। आज कल कह करके, कृपा आदि करने में समय टालना तथा आशाओं का बढ़ाना और जब फल का समय आवे तब उसका खंडन करना ये उदास स्वामी के लक्षण मनुष्य को जानना चाहिये। यह जान कर जैसे यह मेरे वश में हो जायेगा वैसे करूँगा, क्योंकि पण्डित लोग नीतिशास्त्र में कही हुई बुराई के होने से उत्पन्न हुई विपत्ति को और उपाय से हुई सिद्धि को नेत्रों के सामने साक्षात झलकती हुई-सी देखते हैं। करटक बोला—तो भी बिना अवसर के नहीं कह सकते हो, बिना अवसर की बात को कहते हुए वृहस्पति जी भी बुद्धि

की निंदा और अनादर को सर्वदा पा सकते हैं। दमनक बोला—मित्र, डरो मत, मैं बिना अवसर की बात नहीं कहूँगा, आपत्ति में, कुमार्ग पर चलने में और कार्य का समय टले जाने में, हित चाहने वाले सेवक को बिना पूछे भी कहना चाहिए और जो अवसर पा कर भी मैं राय नहीं कहूँगा तो मुझे मंत्री बनना भी अयोग्य है। मनुष्य जिस गुण से आजीविका पाता है और जिस गुण के कारण इस दुनिया में सज्जन उसकी बड़ाई करते हैं, गुणी को ऐसे गुण की रक्षा करना और बड़े यत्न से बढ़ाना चाहिये। इसलिए हे शुभचिंतक, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं जाता हूँ। करटक ने कहा—कल्याण हो और तुम्हारे मार्ग विघ्नरहित अर्थात शुभ हो। अपना मनोरथ पूरा करो। तब दमनक घबराया-सा पिंगलक के पास गया। तब दूर से ही बड़े आदर से राजा ने भीतर आने दिया और वह साष्टांग दंडवत करके बैठ गया। राजा बोला—बहुत दिन से दिखे। दमनक बोला—यद्यपि मुझ सेवक से श्री महाराज को कुछ प्रयोजन नहीं है, तो भी समय आने पर सेवक को अवश्य पास आना चाहिये, इसलिए आया हूँ। हे राजा, दांत के कुरेदने के लिए तथा कान खुजाने के लिए राजाओं को तुनके से भी काम पड़ता है फिर देह, वाणी तथा हाथ वाले मनुष्य से क्यों नहीं? अर्थात अवश्य पड़ना ही है। यद्यपि बहुत काल से मुझ अनादर किये गये की बुद्धि के नाश की श्री महाराज शंका करते ही सो भी शंका न करनी चाहिये।

कदर्थितस्यापि च धैर्यवृत्ते, र्बुध्देर्विनाशो न हि शंड्कनीयः। अधःकृतस्यापि तनूनपातो, नाधः शिखा याति कदाचिदेव॥

अनादर भी किये गये धैर्यवान की बुद्धि के नाश की शंका नहीं करनी चाहिये, जैसे नीच की ओर की गई भी अग्नि की ज्वाला कभी भी नीचे नहीं जाती है, अर्थात हमेशा ऊँची ही रहती है। हे महाराज, इसलिए सदा स्वामी को विवेकी होना चाहिये। मणि चरणों में ठुकराता है और कांच सिर पर धारण किया जाता है, सो जैसा है वैसा भले ही रहे, काँच-काँच ही है और मणि-मणि ही है।

दमनक ने अपने राजा पींगलक की मित्रता संजीवक से करा देता है और अपनी वुद्धि से और राजा की मुर्खता और संजीवक की बेबसी का फायदा उठाकर। दमनक पिंगलक को कहता है कि यह संजीवक बहुत शक्तिशाली है इससे आप मित्रता करले जिससे आपको फायदा ही होगा और ऐसा ही दमनक संजीवक को भी बोलता है। जिससे पिंगलक संजीवक को अपना मित्र बनाकर उसे निर्भयता का अभय़ दान देकर अपने दरबार का सदस्य बना लेता है। ऐसा ही कुछ दिन चलता है। इसके बाद एक दिन उस सिंह पिंगलक का भाई स्तब्धकर्ण नामक सिंह उसके पास आया। उसका आदर-सत्कार करके और अच्छी तरह बैठा कर पिंगलक उसके भोजन के लिये पशु मारने चला।

इतने में संजीवक बोला कि—महाराज, आज मरे हुए मृगों का माँस कहाँ है? राजा बोला—दमनक करटक जाने, संजीवक ने कहा—तो जान लीजिये कि है या नहीं सिंह सोच कर कहा—अब वह नहीं है, संजीवक बोला—इतना सारा मांस उन दोनों ने कैसे खा लिया? राजा बोला—खाया, बाँटा और फेंक फांक दिया। नित्य यही हाल रहता है। तब संजीवक ने कहा महाराज के पीठ पीछे इस प्रकार क्यों करते हैं? राजा बोला—मेरे पीठ पीछे ऐसा ही किया करते हैं। फिर संजीवक ने कहा—यह बात उचित नहीं है। निश्चय करके वही मंत्री श्रेष्ठ है जो दमड़ी-दमड़ी करके कोष को बढ़ावे, क्योंकि कोषयुक्त राजा का कोष ही प्राण है, केवल जीवन ही प्राण नहीं है। यह सुन कर स्तब्धकर्ण बोला—सुनों भाई, ये दमनक करटक बहुत दिनों से अपने आश्रय में पड़े हैं और लड़ाई और मेल कराने के अधिकारी है। धन के अधिकार पर उनका कभी नहीं लगाने चाहिये। जब जैसा अवसर हो वैसा जान कर काम करना चाहिये। सिंह बोला—यह तो है ही, पर ये सर्वथा मेरी बात को नहीं मानने वाले हैं। स्तब्धकर्ण बोला—यह सब प्रकार से अनुचित है। भाई, सब प्रकार से मेरा कहना करो और व्यवहार तो हमने कर ही लिया है। इस घास चरने वाले संजीवका को धन के अधिकार पर रख दो। पिंगलक ने अपने भाई कि सलाह मान कर संजीवक को अपने धन का रक्षक बना देता है। ऐसा करने पर उसी दिन से पिंगलक और संजीवक का सब बांधवों को छोड़कर बड़े स्नेह से समय बीतने लगा। फिर सेवकों के आहार देने में शिथिलता देख दमनक और करटक आपस में चिंता करने लगे। तब दमनक करटक से बोला—मित्र, अब क्या करना चाहिये। यह अपना ही किया हुआ दोष है, स्वयं ही दोष करने पर पछताना भी उचित नहीं है। जैसे मैंने इन दोनों की मित्रता कराई थी, वैसे ही मित्रो में फूट भी कराऊँगा। करटक बोला—ऐसा ही होय,

परंतु इन दोनों का आपस में स्वभाव से बढ़ा हुआ बड़ा स्नेह कैसे छुड़ाया जा सकता है। दमनक बोला—उपाय करो, जैसा कहा है कि—जो उपाय से हो सकता है, वह पराक्रम नहीं हो सकता है। बाद में दमनक पिंगलक के पास जा कर प्रणाम करके बोला—महाराज, नाशकारी और बड़े भय के करने वाले किसी काम को जान कर आया हूँ। पिंगलक ने आदर से कहा—तू क्या कहना चाहता है? दमनक ने कहा—यह संजीवक तुम्हारे ऊपर अयोग्य काम करने वाला-सा दिखता है और मेरे सामने महाराज की तीनों शक्तियों की निंदा करके राज्य को ही छीनना चाहता है। यह सुनकर पिंगलक भय और आश्चर्य से मान कर चुप हो गया। दमनक फिर बोला—महाराज, सब मंत्रियों को छोड़ कर एक इसी को जो तुमने सर्वाधिकारी बना रखा है। वही दोष है।

सिंह ने विचार कर कहा—हे शुभचिंतक, जो ऐसा भी है, तो भी संजीवक के साथ मेरा अत्यंत स्नेह है। बुराईयाँ करता हुआ भी जो प्यारा है, सो तो प्यारा ही है, जैसे बहुत से दोषों से दूषित भी शरीर किसको प्यारा नहीं है। दमनक फिर भी कहने लगा—हे महाराज, वही अधिक दोष है। पुत्र, मंत्री और साधारण मनुष्य इनमें से जिसके ऊपर राजा अधिक दृष्टि करता है, लक्ष्मी उसी पुरुष की सेवा करती है। हे महाराज सुनिये, अप्रिय भी, हितकारी वस्तु का परिणाम अच्छा होता है और जहाँ अच्छा उपदेशक और अच्छे उपदेश सुनने वाला हो, वहाँ सब संपत्तियाँ रमण करती है। सिंह बोला—बड़ा आश्चर्य है, मैं जिसे अभय वाचा दे कर लाया और उसको बढ़ाया, सो मुझसे क्यों वैर करता है? दमनक बोला—महाराज, जैसे मली हुई और तैल आदि लगाने से सीधी करी हुई कुत्ते की पूँछ सीधी नहीं होती है, वैसे ही दुर्जन नित्य आदर करने से भी सीधा नहीं होता है और जो संजीवक के स्नेह में फँसे हुए स्वामी जताने पर भी न मानें तो मुझ सेवक पर दोष नहीं है। पिंगलक (अपने मन में सोचने लगा) कि किसी के बहकाने से दूसरों को दंड न देना चाहिये, परंतु अपने आप जान कर उसे मारे या सम्मान करें। फिर बोला—तो संजीवक को क्या उपदेश करना चाहिए? दमनक ने घबरा कर कहा—महाराज, ऐसा नहीं, इससे गुप्त बात खुल जाती है। पहले यह तो सोच लो कि वह हमारा क्या कर सकता है? सिंह ने कहा-यह कैसे जाना जाए कि वह द्रोह करने लगा है? दमनक ने कहा—जब वह घमंड से सींगों की नोंक को मारने के लिए सामने करता हुआ निडर-सा आवे तब स्वामी आप ही जान जायेंगे। इस प्रकार कह कर संजीवक के पास गया और वहाँ जा कर धीरे-धीरे पास खिसकता हुआ अपने को मन मलीन-सा दिखाया। संजीवक ने आदत से कहा मित्र कुशल तो है? दमनक ने कहा-सेवकों को कुशल कहाँ? संजीवक ने कहा—मित्र, कहो तो यह क्या बात है दमनक ने कहा—मैं मंदभागी क्या कहूँ? एक तरफ राजा का विश्वास और दूसरी तरफ बांधव का विनाश होना क्या करूँ? इस दुखसागर में पड़ा हँ। यह कह कर लंबी साँस भर कर बैठ गया। तब संजीवक ने कहा—मित्र, तो भी सब विस्तारपूर्वक मनकी बात कहो। दमनक ने बहुत छिपाते-छिपाते कहा—यद्यपि राजा का गुप्त विचार नहीं कहना चाहिये, तो भी तुम मेरे भरोसे से आये हो। अतः मुझे परलोक की अभिलाषा के डर से अवश्य तुम्हारे हित की बात करनी चाहिये। सुनो तुम्हारे ऊपर क्रोधित इस स्वामी ने एकांत में कहा है कि संजीवक को मार कर अपने परिवार को दूँगा। यह सुनते ही संजीवक को बड़ा विषाद हुआ। फिर दमनक बोला—विषाद मत करो, अवसर के अनुसार काम करो। संजीवक छिन भर चित्त में विचार कर कहने लगा—निश्चय यह ठीक कहता है, संजीवक छिन भर चित्त में विचार कर कहने लगा—निश्चय यह ठीक कहता है, अथवा दुर्जन का यह काम है या नहीं है, यह व्यवहार से निर्णय नहीं हो सकता है। संजीवक फिर सांस भरकर बोला—अरे, बड़े कष्ट की बात है, कैसे सिंह मुझ घास के चरने वाले को मारेगा? विजय होने से स्वामित्व और मरने पर स्वर्ग मिलता है, यह काया क्षणभंगुर है, फिर संग्राम में मरने की क्या चिंता है? यह सोच कर संजीवक बोला—हे मित्र, वह मुझे मारने वाला कैसे समझ पड़ेगा? तब दमनक बोला—जब यह पिंगलक पूँछ फटकार कर उँचे पंजे करके और मुख फाड़ कर देखे तब तुम भी अपना पराक्रम दिखलाना। परंतु यंह सब बात गुप्त रखने योग्य है। नहीं तो न तुम और न मैं। यह कहकर दमनक करटक के पास गया। तब करटक ने पूछा—क्या हुआ? दमनक ने कहा—दोनों के आपस में फूट फैल गई. करटक बोला—इसमें क्या संदेह है? तब दमनक ने पिंगलक के पास जा कर कहा—महाराज, वह पापी आ पहुँचा है, इसलिये सम्हाल कर बैठ जाइये, यह कह कर पहले जताए हुए आकार को करा दिया, संजीवक ने भी आ कर वैसे ही बदली हुई चेष्ठा वाले सिंह को देखकर अपने योग्य पराक्रम किया। फिर उन दोनों की लड़ाई में संजीवक को सिंह ने मार डाला।

बाद में सिंह, संजीवक सेवक को मार कर थका हुआ और शोक-सा मारा बैठ गया। और बोला"—कैसा मैंने दुष्ट कर्म किया है? दमनक बोला—स्वामी, यह कौन—सा न्याय है कि शत्रु को मार कर पछतावा करते हो? इस प्रकार जब दमनक ने संतोष दिलाया तब पिंगलक का जी में जी आया और सिंहासन पर बैठा। दमनक प्रसन्न चित्त होकर" "जय हो महाराज की" , "" सब संसार का कल्याण हो, " यह कहकर आनंद से रहने लगा।

16-पुरुषार्थ और विद्या

पुरुषार्थ दो शब्दों से बना है-पुरुष तथा अर्थ। पुरुष का अर्थ है विवेकशील प्राणी तथा अर्थ का मतलब है लक्ष्य। इसलिए पुरुषार्थ का अर्थ हुआ विवेकशील प्राणी का लक्ष्य। एक विवेकशील प्राणी का लक्ष्य होता है परमात्मा से मिलन। इसके लिए वह जिन उपायों को अपनाता है वे ही पुरुषार्थ हैं। हिंदू चिंतन के अनुसार इस पुरुषार्थ के चार अंग हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। हमारे महान ऋषियों ने मानव जीवन में इन अंगों को अनिवार्य मानते हुए इन्हें अपनाने का उपदेश दिया है। पुरुषार्थों में पहला स्थान धर्म का है। जीवन में जो भी धारण किया जाता है वही धर्म कहलाता है। धर्म मनुष्य को अच्छे कार्यों की ओर ले जाता है। वह व्यक्ति की विभिन्न रुचियों, इच्छाओं और आवश्यकताओं के बीच एक संतुलन बनाए रखता है। 'महाभारत' के अनुसार धर्म वही है जो किसी को कष्ट नहीं देता। धर्म में लोककल्याण की भावना निहित है। मनु के अनुसार जो व्यक्ति धर्म का सम्मान करता है, धर्म उस व्यक्ति की सदैव रक्षा करता है। धर्म के मार्ग पर चलकर व्यक्ति इस संसार में तथा परलोक में शांति प्राप्त कर सकता है। मनुष्य समाज में रहकर अनेक प्रकार के क्रियाकलाप करता है। धर्म उसके सामाजिक आचरण को एक निश्चित और सकारात्मक रूप देता है। अर्थ का सीधा सम्बंध जीवनयापन करने में सहायक भौतिक उपादानों से है। अधिकांश लोगों का मानना है कि भारतीय संस्कृति में परलोक एवं मोक्ष को ही प्रमुखता दी गई है, इहलोक (सांसारिक जीवन) वहाँ उपेक्षित है। यह एक ग़लत धारणा है। वास्तव में भारतीय संस्कृति में इहलोक एवं परलोक दोनों को समान महत्त्व दिया गया है। मनुष्य के इहलौकिक एवं पारलौकिक उद्देश्यों के मध्य जितना उदात्त एवं उत्कृष्ट सामंजस्य भारतीय संस्कृति में है उतना किसी अन्य संस्कृति में नहीं। इसी सामंजस्य के कारण ही भारत जहाँ दर्शन के क्षेत्र में ऊंचाई पर पहुंचा, वहीं उसकी भौतिक उपलब्धियाँ भी विशिष्ट रहीं। यह सही है कि भारतीय संस्कृति में मनुष्य का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है, किंतु अर्थ का महत्त्व भी इस संस्कृति में कम नहीं है। अर्थ को यदि जीवन का अंतिम लक्ष्य माना जाता तो भारत संभवत: अर्थ का दास बनकर ही रह जाता। भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थों के अंतर्गत काम की भी गणना की गई है। मनुष्य के जीवन में काम का भी उतना ही महत्त्व है, जितना धर्म व अर्थ का। मनुष्य की रागात्मक प्रवृत्ति का नाम है-काम। आहार, निदा, भय एवं काम मनुष्य एवं पशुओं में सामान्य रूप से पाए जाते हैं, मगर मनुष्य एक सामाजिक एवं बुद्धिसंपन्न प्राणी है। वह प्रत्येक कार्य बुद्धि की सहायता से करता है। पशुओं में काम स्वाभाविक रूप से होता है। उनमें विचार तथा भावना नहीं होती है। मनुष्य का काम सम्बंध शिष्ट एवं नियंत्रित होता है। मनुष्य के इस व्यवहार को मर्यादित करने के लिए स्त्री-पुरुष सम्बंध को स्थायी, सभ्य एवं सुसंस्कृत रूप दिया गया। विवाह द्वारा मनुष्य की उच्छृंखल काम वासना को मर्यादित किया गया। भारतीय परंपरा में काम का उद्देश्य संतानोत्पत्ति माना गया है, काम वासना की पूर्ति नहीं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-इन चारों पुरुषार्थों में गहरा सम्बंध है। मोक्ष से धर्म का प्रत्यक्ष सम्बंध है। सभी प्राणी केवल धर्म का आश्रय ग्रहण कर तथा उसी के अनुसार आचरण कर मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसलिए कहा गया है कि मनुष्य अर्थ एवं काम का सेवन करता हुआ मोक्ष को प्राप्त करे। कौटिल्य ने कहा है कि व्यक्ति संसार में रहकर सारे ऐश्वर्य प्राप्त करे, उपभोग

करे, धन संचय करे, किंतु सब धर्मानुकूल हो। उनके मूल में धर्म का अनुष्ठान हो। काम के लिए भी वात्स्यायन ने कामसूत्र में कहा है कि वही काम प्रवृत्ति पुरुषार्थ के अंतर्गत आ सकती है जो धर्म के अनुरूप हो। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि धर्मपूर्ण काम में ईश्वर विद्यमान रहता है। इस प्रकार धर्मानुकूल अर्थ व काम का सेवन करने से मनुष्य परम पुरुषार्थ-मोक्ष के समीप पहुंचता है। पुरुषार्थ की अवधारणा भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत के बीच संतुलन स्थापित करती है। पुरुषार्थों के माध्यम से ही मनुष्य के जीवन का सर्वांगीण विकास हो पाता है। पुरुषार्थ का सिद्धांत भारतीय संस्कृति की आत्मा है।

जो ज्ञान वान या विद्यावान है वहीं आत्मवान है इसके विपरित अज्ञानवान जो आत्मा की सत्ता को नकारता है जिसमें अविद्या है जो अज्ञान का प्रचार करता है जैसा की ईश्वर उपदेश करता है कि सत्य का ज्ञान का सभी प्रकार की विद्यायों को पहले अर्जन करों फिर उनका प्रचार करों लोगों को उपदेश करों।

अविद्या शब्द का प्रयोग माया के अर्थ में होता है। भ्रम एवं अज्ञान भी इसके पर्याय है। यह चेतनता की स्थिति तो हो सकती है, लेकिन इसमें जिस वस्तु का ज्ञान होता है, वह मिथ्या होती है। सांसारिक जीव अहंकार अविद्याग्रस्त होने के कारण जगत् को सत्य मान लेता है और अपने वास्तविक रूप, ब्रह्म या आत्मा का अनुभव नहीं कर पाता। एक सत्य को अनेक रूपों में देखना एवं मैं, तू, तेरा, मेरा, यह, वह, इत्यादि का भ्रम उसे अविद्या के कारण होता है। आचार्य शंकर के अनुसार प्रथम देखी हुई वस्तु की स्मृतिछाया को दूसरी वस्तु पर आरोपित करना भ्रम या अध्यास है। रस्सी में साँप का भ्रम इसी अविद्या के कारण होता है। इसी प्रकार माया या अविद्या आत्मा में अनात्म वस्तु का आरोप करती है। आचार्य शंकर के अनुसार इस तरह के अध्यास को अविद्या कहते हैं। संसार के सारा आचार व्यवहार एवं सम्बंध अविद्याग्रस्त संसार में ही संभव है। अत: संसार व्यवहार रूप से ही सत्य है, परमार्थत: वह मिथ्या है, माया है। माया की कल्पना ऋग्वेद में मिलती है। यह इंद्र की शक्ति मानी गई है, जिससे वह विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। उपनिषदों में इन्हें ब्रह्म की शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। किंतु इसे ईश्वर की शक्ति के रूप में अद्वैत वेदांत में भी स्वीकार किया गया है। माया अचितद्य तत्व है, इसलिए ब्रह्म से उसका सम्बंध नहीं हो सकता। अविद्या भी माया की समानधर्मिणी है। यदि माया सर्वदेशीय भ्रम का कारण है तो अविद्या व्यक्तिगत भ्रम का करण है। दूसरे शब्दों में समष्टि रूप में अविद्या माया है और माय व्यष्टि रूप में अविद्या है। शुक्ति में रजत का आभास या रस्सी में साँप का भ्रम उत्पन्न होने पर हम अधिष्ठान के मूल रूप का नहीं देख पाते। अविद्या दो प्रकार से अधिष्ठान का "आवरण" करती है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह अधिष्ठान के वास्तविक रूप को ढँक देती है। द्वितीय, विक्षेप कर देती है, अर्थात् उसपर दूसरी वस्तु का आरोप कर देती है। अविद्या के कारण ही हम एक अद्वैत ब्रह्म के स्थान पर नामरूप से परिपूर्ण जगत् का दर्शन करते हैं। इसीलिए अविद्या को "भावरूप" कहा गया है, क्योंकि वह अपनी विक्षेप शक्ति के कारण ब्रह्म के स्थान पर नानात्य को आभासित करती है। अनिर्वचनीय ख्याति के अनुसार अविद्या न तो सत् है और न असत्। वह सद्सद्विलक्षण है। अविद्या को अनादि तत्व माना गा है। अविद्या ही बंधन का कारण है, क्योंकि इसी के प्रभाव से अहंकार की उत्पत्ति होती है।

वास्तविकता एवं भ्रम को ठीक-ठीक जानना, वेदांत में ज्ञान कहा गया है। फलत: ब्रह्म और अविद्या का ज्ञान ही विद्या कहा जाता है। अद्वैत वेदांत में ज्ञान ही मोक्ष का साधन माना गया है, अतएव विद्या इस साधन का एक अनिवार्य अंग है। विद्या का मूल अर्थ है, सत्य का ज्ञान, परमार्थ तत्व का ज्ञान या आत्मज्ञान। अद्वैत वेदांत में परमार्थ तत्व या सत्य मात्र ब्रह्म को स्वीकार किया गया है। ब्रह्म एव आत्मा में कोई अंतर नहीं है। यह आत्मा ही ब्रह्म है। अस्तु, विद्या को विशिष्ट रूप से आत्मविद्या या ब्रह्मविद्या भी कह सकते हैं। विद्या के दो रूप कहे गए हैं-अपरा विद्या, जो निम्न केटि की विद्या मानी गई है, सगुण ज्ञान से सम्बंध रखती है। इससे मोक्ष नहीं प्राप्त किया जा सकता। मोक्ष प्राप्त करने का एकमात्र साधन पराविद्या है। इसी को आत्मविद्या या ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। अविद्याग्रसत जीवन से मुक्ति पाने के लिए एवं अपने रूप का साक्षात्कार करने के लिए परा विद्या के अंग हैं। यदि अपना विद्या प्रथम सोपान है, तो परा विद्या द्वितीय सोपान है। साधन चतुष्टय से प्रारंभ करके, मुमुक्षु श्रवण, मनन एवं निधिध्यासन, इन त्रिविध

मानसिक क्रियाओं का क्रमिक नियमन करता है। वह "तत्वमसि" वाक्य का श्रवण करने के बाद, मनन की प्रक्रिया से गुजरते हुए, ध्यान या समाधि अवस्था में प्रवेश कर जाता है, जहाँ उसे "मैं ही ब्रह्म हूँ" का बोध हो उठता है। यही ज्ञान परा विद्या कहलाता है।

सुखार्थिनः कुतोविद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्। सुखार्थी वा त्यजेद् विद्याँ विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्॥

जिसे सुख की अभिलाषा हो (कष्ट उठाना न हो) उसे विद्या कहाँ से? और विद्यार्थी को सुख कहाँ से? सुख की ईच्छा रखनेवाले को विद्या की आशा छोडनी चाहिए और विद्यार्थी को सुख की।

न चोरहार्यं न च राजहार्यंन भ्रातृभाज्यं न च भारकारी। व्यये कृते वर्धते एव नित्यं विद्याधनं सर्वधन प्रधानम्॥

विद्यारुपी धन को कोई चुरा नहीं सकता, राजा ले नहीं सकता, भाईयों में उसका भाग नहीं होता, उसका भार नहीं लगता, (और) खर्च करने से बढता है। सचमुच, विद्यारुप धन सर्वश्रेष्ठ है।

नास्ति विद्यासमो बन्धुर्नास्ति विद्यासमः सुहृत्। नास्ति विद्यासमं वित्तं नास्ति विद्यासमं सुखम्॥

विद्या जैसा बंधु नहीं, विद्या जैसा मित्र नहीं, (और) विद्या जैसा अन्य कोई धन या सुख नहीं।

ज्ञातिभि र्वण्टयते नैव चोरेणापि न नीयते। दाने नैव क्षयं याति विद्यारत्नं महाधनम्॥

यह विद्यारुपी रत्न महान धन है, जिसका वितरण ज्ञातिजनों द्वारा हो नहीं सकता, जिसे चोर ले जा नहीं सकते और जिसका दान करने से क्षय नहीं होता।

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्। अहार्यत्वादनर्ध्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा॥

सब द्रव्यों में विद्यारुपी द्रव्य सर्वोत्तम है, क्योंकि वह किसी से हरा नहीं जा सकता; उसका मूल्य नहीं हो सकता और उसका कभी नाश नहीं होता।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम् विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः। विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम् विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः॥

विद्या इन्सान का विशिष्ट रूप है, गुप्त धन है। वह भोग देनेवाली, यशदात्री और सुखकारक है। विद्या गुरुओं का गुरु है, विदेश में वह इन्सान की बंधु है। विद्या बडी देवता है; राजाओं में विद्या की पूजा होती है, धन की नहीं। इसलिए विद्याविहीन पशु हि है।

अलसस्य कुतो विद्या अविद्यस्य कुतो धनम्। अधनस्य कुतो मित्रममित्रस्य कुतः सुखम्॥

आलसी इन्सान को विद्या कहाँ? विद्याविहीन को धन कहाँ? धनविहीन को मित्र कहाँ? और मित्रविहीन को सुख कहाँ?

रूपयौवनसंपन्ना विशाल कुलसम्भवाः। विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः॥

रुपसंपन्न, यौवनसंपन्न और चाहे विशाल कुल में पैदा क्यों न हुए हों, पर जो विद्याहीन हों, तो वे सुगंधरहित केसुडे के फूल की भाँति शोभा नहीं देते।

विद्याभ्यास स्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः। अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम्॥

विद्याभ्यास, तप, ज्ञान, इंद्रिय-संयम, अहिंसा और गुरुसेवा–ये परम् कल्याणकारक हैं।

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्। पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

विद्या से विनय (नम्रता) आती है, विनय से पात्रता (सजनता) आती है पात्रता से धन की प्राप्ति होती है, धन से धर्म और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है।

दानानां च समस्तानां चत्वार्येतानि भूतले। श्रेष्ठानि कन्यागोभूमिविद्या दानानि सर्वदा॥

सब दानों में कन्यादान, गोदान, भूमिदान और विद्यादान सर्वश्रेष्ठ है।

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्। क्षणे नष्टे कुतो विद्या कणे नष्टे कुतो धनम्॥

एक एक क्षण गवाये बिना विद्या पानी चाहिए; और एक-एक कण बचा करके धन ईकट्ठा करना चाहिए. क्षण गवानेवाले को विद्या कहाँ और कण को क्षुद्र समजनेवाले को धन कहाँ?

विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो धेनुः कामदुधा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च-सा। सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणम् तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरु॥

विद्या अनुपम कीर्ति है; भाग्य का नाश होने पर वह आश्रय देती है, कामधेनु है, विरह में रति समान है, तीसरा नेत्र है, सत्कार का मंदिर है, कुल-महिमा है, बगैर रत्न का आभूषण है; इस लिए अन्य सब विषयों को छोडकर विद्या का अधिकारी बन।

17 - पंचतन्त्र कि कहानी मित्र लाभ

गोदावरी के तीर पर एक बड़ा सैमर का पेड़ है। वहाँ अनेक दिशाओं के देशों से आकर रात में पक्षी बसेरा करते हैं। एक दिन जब थोड़ी रात रह गई ओर भगवान कुमुदिनी के नायक चंद्रमा ने अस्ताचल की चोटी की शरण ली तब लघुपतनक नामक काग जगा और सामने से यमराज के समान एक बहेलिए को आते हुए देखा, उसको देखकर सोचने लगा कि आज प्रातःकाल ही बुरे का मुख देखा है। मैं नहीं जानता हूँ कि क्या बुराई दिखावेगा।

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च। दिवसे-दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम॥

सहस्रों शोक की और सैकड़ों भय की बातें मूर्ख पुरुष को दिन पर दिन दुख देती है और पण्डित को नहीं।

फिर उस व्याध ने चावलों की कनकी को बिखेर कर जाल फैलाया और खदु वहाँ छुप कर बैठ गया। उसी समय में परिवार सहित आकाश में उड़ते हुए चित्रग्रीव नामक कबूतरों के राजा ने चावलों की कनकी को देखा, फिर कपोतराज चावल के लोभी कबूतरों से बोला—इस निर्जन वन में चावल की कनकी कहाँ से आई? पहले इसका निश्चय

करो। मैं इसको कल्याणकारी नहीं देखता हूँ। अवश्य इन चावलों की कनकी के लोभ से हमारी बुरी गति हो सकती है।

सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः, सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः। सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं, सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्॥

अच्छी रीति से पका हुआ भोजन, विद्यावान पुत्र, सुशिक्षित अर्थात आज्ञाकारिणी स्त्री, अच्छे प्रकार से सेवा किया हुआ राजा, सोच कर कहा हुआ वचन और विचार कर किया हुआ काम ये बहुत काल तक भी नहीं बिछड़ते हैं।

यह सुनकर एक कबूतर घमंड से बोला, "" अजी, तुम क्या कहते हो

वृद्धानां वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते। सर्वत्रैवं विचारे तु भोजनेऽप्यप्रवर्तनम्॥

जब आपत्तिकाल आए तब वृद्धों की बात माननी चाहिए, परंतु उस समय सब जगह मानने से तो भोजन भी न मिले।

शंकाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले। प्रवृत्तिः कुत्र कर्त जीवितव्यं कथं नू वा?

इस पृथ्वी तल पर अन्न और पान संदेहों से भरा है, किस वस्तु में खाने-पीने की ईच्छा करे या कैसे जिये?

ईर्ष्यी घृणी त्वसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः। परभाग्योपजीवी च षडेते दुखभागिनः॥

ईष्या करने वाला, घृणा करने वाला, असंतोषी, क्रोधी, सदा संदेह करने वाला और पराये आसरे जीने वाला ये छः प्रकार के मनुष्य हमेशा दुखी होते हैं।

यह सुनकर भी सब कबुतर बहेलिये के चावल के कण जहाँ छीटे थे, वहाँ बैठ गये।

सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्तो बहुश्रुतः। छेत्तारः संशयानां च क्लिश्यन्ते लोभमोहितः॥

क्योंकि अच्छे बड़े-बड़े शास्त्रों को पढ़ने तथा सुनने वाले और संदेहों को दूर करने वाले भी लोभ के वश में पड़ कर दुख भोगते हैं।

लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते।

लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम।

लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, लोभ से विषय भोग की इच्छा होती है और लोभ से मोह और नाश होता है, इसलिए लोभ ही पाप की जड़ है।

असंभव हेममृगस्य जन्म, तथापि रामो लुलुभे मृगाय। प्रायः समापन्नविपत्तिकाले, धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति॥

सोने के मृग का होना असंभव है, तब भी रामचंद्रजी सोने के मृग के पीछे लुभा गये, इसलिये विपत्तिकाल आने पर महापुरुषों की बुद्धियाँ भी बहुधा मलिन हो जाती है।

दाना पाने के लालच से उतरे सब कबूतर जाल में फँस गये और फिर जिसके वचन से वहाँ उतरे से उसका तिरस्कार करने लगे।

न गणस्याग्रतो गच्छेत्सिध्दे कार्ये समं फलम। यदि कार्यविपत्ति: स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते॥

समूह के आगे मुखिया होकर न जाना चाहिये। क्योंकि यदि काम सिद्ध हो गया तो फल सबों को बराबर प्राप्त होगा और अगर काम बिगड़ गया तो मुखिया ही मारा जाएगा। सबको उसकी निंदा करते देख चित्रग्रीव बोला— "" इसका कुछ दोष नहीं है। " हितकारक पदार्थ भी आने वाली आपत्तियों का कारण हो जाती है, जैसे गोदोहन के समय माता की जाँघ ही बछड़े के बाँधने का खूँटा हो जाती है।

स बंधुर्यो विपन्नानामापदुद्धरणक्षमः। न तु भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः॥

बंधु वह है, जो आपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों को निकालने में समर्थ हो और जो दुखियों की रक्षा करने के उपाय बताने की बजाय उलाहना देने में चतुराई समझे, वह बंधु नहीं है।

आपत्ति से घबरा जाना तो कायर पुरुष का चिह्न है, इसलिये इस काम में धीरज धर कर उपाय सोचना चाहिए.

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः। यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम।

आपदा में धीरज, बढ़ती में क्षमा, सभा में वाणी की चतुरता, युद्ध में पराक्रम, यश में रुचि और शास्त्र में अनुराग ये बातें महात्माओं में स्वाभाव से ही होती है। जिसे संपत्ति में हर्ष और आपत्ति में खेद न हो और संग्राम में धीरता हो, ऐसा तीनों लोक में तिलक का जन्म विरला होता है और उसको विरली माता ही जनती है। इस संसार में अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को निद्रा, तंद्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता ये छः अवगुण छोड़ देने चाहिए। अब भी ऐसा करो, सब एक मत होकर जाल को ले उड़ो।

अल्पानामपि वस्तूनां संहति: कार्यसाधिका। तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः॥

छोटी-छोटी वस्तुओं के समूह से भी कार्य सिद्ध हो जाता है, जैसे घास की बटी हुई रस्सियों से मतवाला हाथी भी बाँधे जाते हैं। अपने कुल के थोड़े मनुष्यों का समूह भी कल्याण का करने वाला होता है, क्योंकि तुस (छिलके) से अलग हुए चावल फिर नहीं उगते हैं। यह सोच कर सब कबूतर जाल को लेकर उड़े और वह बहेलिया जाल को लेकर उड़ने वाले कबूतरों को दूर से देख कर पीछे दौड़ता हुआ सोचने लगा, ये पक्षी मिल कर मेरे जाल को लेकर उड़ रहे हैं, परंतु जब ये गिरेंगे तब मेरे वश में हो जायेंगे। फिर जब वे पक्षी आँखों से ओझल हो गये तब व्याध लौट गया। जब कबूतर ने देखा कि लोभी व्याध लौट रहा है तब कबूतर ने कहा कि अब क्या करना चाहिए।

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्रितयं हितम्। कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः॥

माता, पिता और मित्र ये तीनों स्वभाव से हितकारी होते हैं और दूसरे लोग कार्य और किसी कारण से हित की इच्छा करने वाले होता हैं। इसलिए मेरा मित्र हिरण्यक नामक चूहों का राजा गंडकी नदी के तीर पर चित्रवन में रहता है, वह हमारे फंदों को काटेगा। यह विचार कर सह हिरण्यक के बिल के पास गये। हिरण्यक सदा आपत्ति आने की आशंका से अपना बिल सौ द्वार का बना कर रहता था। फिर हिरण्यक कबूतरों के उतरने की आहट से डर कर चुपके से बैठ गया। चित्रग्रीव बोला—हे मित्र हिरण्यक, हमसे क्यों नहीं बोलते हो? फिर हिरण्यक उसकी बोली पहचान कर शीघ्रता से बाहर निकल कर बोला—अहा! मैं पुण्यवान हूँ कि मेरा प्यारा मित्र चित्रग्रीव आया है।

यस्य मित्रेण संभाषो यस्य मित्रेण संस्थिति:। यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यवान॥

जिसकी मित्र के साथ बोल-चाल है, जिसका मित्र के साथ रहना-सहना हो और जिसकी मित्र के साथ गुप्त बात-चीत हो, उसके समान कोई इस संसार में पुण्यवान नहीं है। अपने मित्र को जाल में फँसा देखकर आश्चर्य से क्षण भर ठहर कर बोला"—मित्र, यह क्या है? चित्रग्रीव बोला"—मित्र, यह हमारे पूर्वजन्म के कर्मो का फल है।

यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च, यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म। तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च, तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति।

जिस कारण से, जिसके करने से, जिस प्रकार से, जिस समय में, जिस काल तक और जिस स्थान में जो कुछ भला और बुरा अपना कर्म है, उसी कारण से, उसी के द्वारा, उसी प्रकार से, उसी समय में, वही कर्म, उसी काल तक, उसी स्थान में, प्रारब्ध के वश से पाता है।

रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि च। आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि दहिनाम्।

रोग, शोक, पछतावा, बंधन और आपत्ति ये देहधारियों (प्राणियों) के लिए अपने अपराधरुपी वृक्ष के फल हैं।

यह सुनकर हिरण्यक चित्रग्रीव के बंधन काटने के लिए शीघ्र पास आया। चित्रग्रीव बोला—मित्र, ऐसा मत करो, पहले मेरे उन आश्रितों के बंधन काटो, मेरा बंधन बाद में काटना। हिरण्यक ने भी कहा—मित्र, मैं निर्बल हूँ और मेरे दाँत भी कोमल हैं, इसलिए इन सबका बंधन काटने के लिए कैसे समर्थ हूँ? इसलिए जब तक मेरे दाँत नहीं टूटेंगे, तब तक तुम्हारा फंदा काटता हूँ। बाद में इनके भी बंधन जहाँ तक कट सकेंगे तब तक काटूँगा। चित्रग्रीव बोला—यह ठीक है, तो भी यथाशक्ति पहले इनके काटो। हिरण्यक ने कहा—अपने को छोड़कर अपने आश्रितों की रक्षा करना यह नीति जानने वालों को संमत नहीं है। क्योंकि मनुष्य को आपत्ति के लिए धन की, धन देकर स्त्री की और धन और स्त्री देकर अपनी रक्षा सर्वदा करनी चाहिए.

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणा: संस्थितिहेतवः। तान्निघ्रता किं न हतं, रक्षता किं न रक्षितम्?

दूसरे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों की रक्षा के लिए प्राण कारण हैं, इसलिए जिसने इन प्राणों का घात किया, उसने क्या घात नहीं किया? अर्थात सब कुछ घात किया और जिसने प्राणों का रक्षण किया उसने क्या रक्षण न किया? अर्थात सबका रक्षण किया।

चित्रग्रीव बोला—मित्र, नीति तो ऐसी ही है, परंतु मैं अपने आश्रितोंका दुख सहने को सब प्रकार से असमर्थ हूँ।

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत। सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति॥

चित्रग्रीव कहता है कि पण्डित को पराये उपकार के लिए अपना धन और प्राणों को भी छोड़ देना चाहिए, क्योंकि विनाश तो अवश्य होगा, इसलिये अच्छे पुरुषों के लिए प्राण त्यागना अच्छा है। दूसरा यह भी एक विशेष कारण है कि इन कबूतरों का और मेरा जाति, द्रव्य और बल समान है, तो मेरी प्रभुता का फल कहो, जो अब न होगा तो किस काल में और क्या होगा? आजीविका के बिना भी ये मेरा साथ नहीं छोड़ते हैं, इसलिए प्राणों के बदले भी इन मेरे आश्रितों को जीवनदान दो। हे मित्र, मांस, मल, मूत्र तथ हड्डी से बने हुए इस विनाशी शरीर में आस्था को छोड़ कर मेरे यश को बढ़ाओ. जो अनित्य और मल-मूत्र से भरे हुए शरीर से निर्मल और नित्य यश मिले तो क्या नहीं मिला? अर्थात सब कुछ मिला।

शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम। शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनों गुणा:॥

शरीर और दयादि गुणों में बड़ा अंतर है। शरीर तो क्षणभंगुर है और गुण कल्प के अंत तक रहने वाले हैं।

यह सुनकर हिरण्यक प्रसन्नचित्त तथा पुलकित होकर बोला—धन्य है, मित्र, धन्य है। इन आश्रितों पर दया विचारने से तो तुम तीनों लोक की ही प्रभुता के योग्य हो। ऐसा कह कर उसने सबका बंधन काट डाला। बाद में हिरण्यक सबका आदर-सत्कार कर बोला—मित्र चित्रग्रीव, इस जाल बंधन के विषय में दोष की शंका कर अपनी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए।

योऽधिकाद्योजनशतात्पश्यतीहामिषं खगः। स एव प्राप्तकालस्तु पाशबंध न पश्यति॥

जो पक्षी सैकड़ों योजना से भी अधिक दूर से अन्न के दाने को या माँस को देखता है, वही बुरा समय आने पर जाल की बड़ी गाँठ नहीं देखता है। चंद्रमा तथा सूर्य को ग्रहण की पीड़ा, हाथी और सपं का बंधन और पण्डित की दरिद्रता, देख कर मेरी तो समझ में यह आता है कि प्रारब्ध ही बलवान है और आकाश के एकांत स्थान में विहार करने वाले पक्षी भी विपत्ति में पड़ जाते हैं और चतुर धीवर मछलियों को अथाह समुद्र में भी पकड़ लेते हैं। इस संसार में दुर्नीति क्या है और सुनीति क्या है और विपत्तिरहित स्थान के लाभ में क्या गण है? अर्थात कुछ नहीं है। क्योंकि काल आपत्तिरुप अपने हाथ फैला कर बैठा है और कुछ समय आने पर दूर ही से ग्रहण कर झपट लेता है। यों समझा कर और अतिथि सत्कार कर तथा मिल भेटकर उसने चित्रग्रीव को विदा किया और वह अपने परिवार समेत अपने देश को गया। हिरण्यक भी अपने बिल में घुस गया।

इसके बाद लघुपतनक नामक कौवा सब वृत्तांत को जानने वाला आश्चर्य से यह बोला—हे हिरण्यक, तुम प्रशंसा के योग्य हो, इसलिए कृपा करके मुझसे भी मित्रता कर लो। यह सुन कर हिरण्यक भी बिल के भीतर से बोला—तू कौन है? वह बोला—मैं लघुपतनक नामक कौवा हूँ। हिरण्यक हँस कर कहने लगा—तेरे संग कैसी मित्रता? क्योंकि पंडित को चाहिए कि जो वस्तु संसार में जिस वस्तु के योग्य हो उसका उससे मेल आपस में कर दें, मैं तो अन्न हूँ और तुम खाने वाले हो। इस लिए भक्ष्य और भक्षक की प्रीति कैसी होगी? कौवा बोला—तुझे खा लेने से भी तो मेरा बहुत आहार नहीं होगा, मैं निष्कपट चित्रग्रीव के समान तेरे जीने से जीता रहूँगा। पुण्यात्मा मृग-पक्षियों का भी विश्वास देखा जाता है, क्योंकि पुण्य ही करने वाले सज्जनों का स्वभाव सज्जनता के कारण कभी नहीं पलटता है।

साधोः प्रकोपितस्यापि मनो नायाति विक्रियाम। न हि तापयितु शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया॥

चाहे जैसे क्रोध में क्यों न हो सज्जन का स्वभाव कभी डामाडोल न होगा, जैसे जलते हुए तनकों की आँच से समुद्र का जल कौन गरम कर सकता है? हिरण्यक ने कहा—तू चंचल है, ऐसे चंचल के साथ स्नेह कभी नहीं करना चाहिए. दूसरा तुम मेरे वैरियों के पक्ष के हो।

शत्रुणा न हि संदध्यात सुश्लिष्टेनापि संधिना। सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम्॥

और यह कहा है कि वैरी चाहे जितना मीठा बन कर मेल करे, परंतु उसके साथ मेल न करना चाहिये, क्योंकि पानी चाहे जितना भी गरम हो आग को बुझा ही देता है।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन। मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकर॥

दुर्जन विद्यावान भी हो, परंतु उसे छोड़ देना चाहिये, क्योंकि रत्न से शोभायमान सपं क्या भयंकर नहीं होता है।

जो बात नहीं हो सकती, वह कदापि नहीं हो सकती है और जो हो सकती है, वह हो ही सकती है, जैसे पानी पर गाड़ी नहीं चलती और जमीन पर नाव नहीं चल सकती है। लघुपतनक कौवा बोला—मैंने सब सुन लिया, तो भी मेरा इतना संकल्प है कि तेरे संग मित्रता अवश्य करनी चाहिए. नहीं तो भूखा मर अपघात करूँगा। दुर्जनों के मन में कुछ, वचन में और काम में कुछ और सज्जनों के जी में, बचन में और काम में एक बात होती है। इसलिये तेरा भी मनोरथ हो। यह कह कर हिरण्यक मित्रता करके विविध प्रकार के भोजन से कौवे को संतुष्ट करके बिल में घुस गया

और कौवा भी अपने स्थान को चला गया। उस दिन से उन दोनों का आपस में भोजन के देने-लेने से, कुशल पूछने से और विश्वासयुक्त बातचीत से समय कटने लगा।

एक दिन लघुपतनक ने हिरण्यक से कहा—मित्र, इस स्थान में बड़ी मुश्किल से भोजन मिलता है, इसलिए इस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में जाना चाहता हूँ। हिरण्यक ने कहा—मित्र, कहाँ जाओगे? बुद्धिमान एक पैर से चलता है और दूसरे से ठहरता है। इसलिए दूसरा स्थान निश्चत किये बिना पहला स्थान नहीं छोड़ना चाहिये। कौवा बोला—एक अच्छी भांति देखा भाला स्थान है। हिरण्यक बोला—कौन-सा है? कौआ बोला—दण्डकवन में कर्पूरगौर नाम का एक सरोवर है, उसमें मन्थरनामक एक धर्मशील कछुआ मेरा बहुत पुराना और प्यारा मित्र रहता है। वह विविध प्रकार के भोजन से मेरा सत्कार करेगा। हिरण्यक भी बोला—तो मैं यहाँ रह कर क्या करूँगा

यस्मिन्देशे न संमानो न वृत्तिर्न च बांधवः। न च विद्यागमः कश्चित्तं देशं परिवर्जयेत्॥

क्योंकि जिस देश में न सन्मान, न जीविका का साधन, न भाई या सम्बंधी और कुछ विद्या का भी लाभ न हो, उस देश को छोड़ देना चाहिये। अर्थात दूसरे शब्दों में जीविका, अभय, लज्जा, सज्जनता और उदारता ये पाँचों बातें जहाँ न हो, वहाँ नहीं रहना चाहिये। साथ ही, जहाँ ऋण देने वाला, वैद्य, वेदपाठी और सुंदर जल से भरी नदी, ये चारों न हो, वहाँ नहीं रहना चाहिए. इसलिये मुझे भी वहाँ ले चलो। बाद में कौवा उस मित्र के साथ अच्छी-अच्छी बातें करता हुआ बेखटके उस सरोवर के पास पहुँचा। फिर मन्थर ने उसे दूर से देखते ही लघुपतनक का यथोचित अतिथिसत्कार करके चूहे का भी अतिथिसत्कार किया। क्योंकि बालक, बूढ़ा और युवा इनमें से घर पर कोई आया हो, उसका आदर सत्कार करना चाहिये, क्योंकि अभ्यागत सब वर्णो का पूज्य है। ब्राह्मणों को अग्नि, चारों वर्णो को ब्राह्मण, स्त्रियों को पति और सबको अभ्यागत सर्वदा पूजनीय है। कौवा बोला—मित्र मन्थर, इसका अधिक सत्कार करो, क्योंकि यह पुण्यात्माओं का मुखिया और करुणा का समुद्र हिरण्यक नामक चूहों का राजा है। इसके गुणों की बड़ाई दो सहस्र जीभों से शेष नाग भी कभी नहीं कर सकता है। यह कह कर चित्रग्रीव का वृत्तांत कह सुनाया। मन्थर बड़े आदर से हिरण्यक का सत्कार करके पूछने लगा—हे मित्र, यह निर्जन वन में अपने आने का भेद तो कहो। विपत्तियों के आ जाने पर निर्णय करके काम करना ही चतुराई है, क्योंकि बिना विचारे काम करने वालों को पद में विपत्तियाँ हैं। कुल की मर्यादा के लिए एक हो, गाँवभर के लिए कुल को, देश के लिए गाँव को और अपने लिये पृथ्वी को छोड़ देना चाहिये। अनायास मिला हुआ जल और भय से मिला मीठा भोजन उन दोनों में विचार कर देखता हूँ, तो जिसमें चित्त बेखटक रहे उसी में सुख है या पराधीन भोजने से सवाधीन जल का मिलना उत्तम है। यह विचार कर मैं निर्जन वन में आया हूँ।

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं, द्रुमालयं पक्कफलाम्बुभोजनम्। तृणानि शय्या परिधानवल्कलं, न बंधुमध्ये धनहीनजीवनम्॥

सिंह और हाथियों से भरे हुए वन के नीचे रहना, पके हुए कंद मूल फल खाकर जल पान करना तथा घास के बिछौने पर सोना और छाल के वस्र पहनना अच्छा है, पर भाई बंधुओं के बीच धनहीन जीना अच्छा नहीं है। फिर मेरे पुण्य से उदय से इस मित्र ने परम स्नेह से मेरा आदर किया और अब पुण्य की रीति से तुम्हारा आश्रय मुझे स्वर्ग के समान मिल गया। मंथन बोला—धन तो चरणों की धूलि के समान है, यौवन पहाड़ की नदी के वेग के समान है, आयु चंचल जल की बिंदु के समान चपल है और जीवन फेन के समान है, इसलिए जो निर्बुद्धि स्वर्ग की आगल को खोलने वाले धर्म को नहीं करता है, वह पीछे बुढ़ापे में पछता कर शोक की अग्नि में जलाया जाता है।

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्। तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्॥

गंभीर सरोवर में भरे हुए जल के चारों ओर निकलने के (बार-बार जल निकाल देना जैसा सरोवर की शुद्धि का कारण है, उसी के) समान कमाये हुए धन का सत्पात्र में दान करना ही रक्षा है। लोभी जिस धन को धरती में अधिक नीचे गाड़ता है, वह धन पाताल में जाने के लिए पहले से ही मार्ग कर लेता है और जो मनुष्य अपने सुख को रोक

कर धनसंचय करने की इच्छा करता है, वह दूसरों के लिए बोझ ढोने वाले मजदूर के समान क्लेश ही भोगने वाला है।

दानोपभोगहीनेन धनेन धनिनो यदि। भवामः किं न तेनैव धनेन धनिनो वयम्।

दान और उपभोग हीन धन से जो धनी होते हैं, तो क्या उसी धन से हम धनी नहीं हैं? अर्थात अवश्य है।

न देवाय न विप्राय न बंधुभ्यो न चात्मने। कृपणस्य धनं याति वह्नितस्करपार्थिवैः॥

जो मनुष्य धन को देवता के, ब्राह्मण के तथा भाई बंधु के काम में नहीं लाता है, उसे कृपण का धन तो जल जाता है या चोर चुरा ले जाते हैं अथवा राजा छीन लेता है।

दानं प्रियवाकसहितं ज्ञानमगर्वे क्षमान्वितं शौर्यम। वित्तं त्यागनियुक्तं दुर्लभमेतंचतुष्टयं लोके॥

प्रिय वाणी के सहित दान, अहंकाररहित ज्ञान, क्षमायुक्त शूरता और दानयुक्त धन, ये चार बातें दुनिया में दुर्लभ हैं। इनका संचय नित्य करना चाहिये, पर अति संचय करना योग्य नहीं है।

आमरणान्ताः प्रणयाः कोपास्तत्क्षणभङ्गराः। परित्यागाश्च निः सङ्गा भवन्ति हि महात्मनाम्॥

महात्माओं का स्नेह मरने तक, क्रोध केवल क्षणमात्र और परित्याग केवल संगरहित होता है अर्थात वे कुछ बुराई नहीं करते हैं।

यह सुनकर लघुपतनक बोला—हे मन्थर, तुम धन्य हो और तुम प्रशंसनीय गुणवाले हो।

सन्त एव सतां नित्यमापदुद्धरणक्षमाः। गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरंधराः॥

सज्जन ही सज्जनों की आपत्ति को सर्वदा दूर करने के योग्य होते हैं। जैसे कीचड़ में फँसे हाथियों के निकालने के लिए हाथी ही समर्थ होते हैं। तब वे इस प्रकार अपनी इच्छानुसार खाते-पीते, खेलते-कूदते संतोष कर सुख से रहने लगे।

एक दिन चित्रांग नामक मृग किसी के डर के मारे उनसे आ कर मिला, इसके पीछे मृग को आता हुआ देख भय को समझ मन्थर तो पानी में घुस गया, चूहा बिल में चला गया और काक भी उड़ कर पेड़ पर बैठ गया। फिर लघुपतनक ने दूसरे से निर्णय किया कि भय का कोई भी कारण नहीं है, यह सोचकर बाद में सब मिल कर वहाँ ही बैठ गये। मन्थरने कहा—कुशल हो? हे मृग, तुम्हारा आना अच्छा हुआ। अपनी इच्छानुसार जल आहार आदि भोग करो अर्थात खाओ, पीयो, और यहाँ रह कर इस वन को सनाथ करो। चित्रांग बोला—व्याध के डर से मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ और तुम्हारे साथ मित्रता करनी चाहता हूँ। हिरण्य बोला—मित्रता तो हमारे साथ तुम्हारी अनायास हो गई है। 0क्योंकि मित्र चार प्रकार के होते हैं, एक तो वह जिनका जन्म से ही जैसे पुत्रादि, दूसरे विवाहादि सम्बंध से हो गये हो, तीसरे कुल परंपरा से आए हुए हों तथा चौथे वे जो आपत्तियों से बचावें। इसलिए यहाँ तुम अपने घर से भी अधिक आनंद से रहो। यह सुन कर मृग प्रसन्न हो अपनी इच्छानुसार भोजन करके तथा जल पी कर जल के पास वृक्ष की छाया में बैठ गया। मन्थर ने कहा कि—हे मित्र मृग, इस निर्जन वन में तुम्हें किसने डराया है क्या कभी-कभी व्याध आ जाते हैं मृग ने कहा—कलिंग देश में रुक्मांगद नामक राजा है और वह दिग्विजिय करने के लिये आ कर चंद्रभागा नदी के तीर पर अपनी सेना को टिका कर ठहरा है और प्रातःकाल वह यहाँ आ कर कर्पूर सरोवर के पास ठहरेगा, यह उड़ती हुई बात शिकारियों के मुख से सुनी जाती है। इसलिये प्रातःकाल यहाँ रहना भी भय का कारण है। यह सोच कर समय के अनुसार काम करना चाहिये। यह सुन कर कछुआ डर कर बोला—मैं तो दूसरे सरोवर

को जाता हूँ। काग और मृग ने भी कहा—ऐसा ही हो अर्थात चलो। फिर हिरण्यक हँस कर बोला—दूसरे सरोवर तक पहुँचने पर मंथर जीता बचेगा। परंतु इसके पटपड़ में चलने का कौन-सा उपाय है।

अम्भांसि जलजन्तुनां दुर्गे दुर्गनिवासिनाम्। स्वभूमि: श्वापदादीनां राज्ञां मंत्री परं बलम्॥

जल के जंतुओं को जल का, गढ़ में रहने वालों को गढ़ का, सिंहादि वनचरों को अपनी भूमि का और राजाओं को अपने मंत्री का परम बल होता है। उसके हितकारक वचनों को न मान कर बड़े भय से मूर्ख की भांति वह मन्थर उस सरोवर को छोड़ कर चला। वे हिरण्यक आदि भी स्नेह से विपत्ति की शंका करते हुए मन्थर के पीछे-पीछे चले।

फिर पटपड़ में जाते हुए मन्थर को, वन में घूमते हुए किसी व्याध ने पाया। वह उसे पा कर धनुष में बांध घुमता हुआ क्लेस से उत्पन्न हुई क्षुधा ओर प्यास से व्याकुल, अपने घर की ओर चला। पीछे मृग, काग और चूहा वे बड़ा विषाद करते हुए उसके पीछे-पीछे चले। हिरण्यक विलाप करने लगा—समुद्र के पार के समान नि: सीमा एक दुख के पार जब तक मैं नहीं जाता हूँ, तब तक मेरे लिए दूसरा दुःख आ कर उपस्थित हो जाता है, क्योंकि अनर्थ के साथ बहुत से अनर्थ आ पड़ते हैं। स्वभाव से स्नेह करने वाला मित्र तो प्रारब्ध से ही मिलता है कि जो सच्ची मित्रता को आपत्तियों में भी नहीं छोड़ता है।

न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मजे. विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे स्वभावजे॥

न माता, न स्त्री में, न सगे भाई में, न पुत्र में ऐसा विश्वास होता है कि जैसा स्वाभाविक मित्र में होता है।

इस संसार में अपने पाप-पुण्यों से किये गये और समय के उलट-पलट से बदलने वाले सुख-दुख, पुर्वजन्म के किये हुए पाप-पुण्यों के फल मैंने यहाँ ही देख लिये।

कायः संनिहितापायः संपद: पदमापदाम्। समागमा: सापगमा: सर्वमुत्पादि भङ्गरम्॥

अथवा यह ऐसे ही है—शरीर के पास ही उसका नाथ है और संपत्तियाँ आपत्तियों का मुख्य स्थान है और संयोग के साथ वियोग है, अर्थात अस्थिर है और उत्पन्न हुआ सब-सब साथ होने वाला है।

और विचार कर बोला—शोक और शत्रु के भय से बचाने वाला तथा प्रीति और विश्वास का पात्र, यह दो अक्षर का मित्र रुपी रत्न किसने रचा है? और अंजन के समान नेत्रों को प्रसन्न करने वाला, चित्त को आनंद देने वाला और मित्र के साथ सुख दुख में साथ देने वाला, अर्थात दुख में दुखी, सुख में सुखी हो ऐसा मित्र होना दुर्लभ है और संपत्ति के समय में धन हरने वाले मित्र हर जगह मिलते हैं। परंतु विपत्काल ही उनके परखने की कसौटी है। इस प्रकार बहुत—सा विलास करके हिरण्यने चित्रांग और लघुपतनक से कहा—जब तक यह व्याध वन से न निकल जाए, तब तक मन्थर को छुड़ाने का यत्न करो। वे दोनों बोले—शीघ्र कार्य को कहिये। हिरण्यक बोला—चित्रांग जल के पास जा कर मरे के समान अपना शरीर दिखावे और काक उस पर बैठ के चोंच से कुछ-कुछ खोदे। यह व्याध कछुए को अवश्य वहाँ छोड़ कर मृगमाँस के लोभ से शीघ्र जाएगा। फिर मैं मन्थर के बंधन काट डालूँगा और जब व्याध तुम्हारे पास आवे तब भाग जाना। तब चित्रांग और लघुपतनक ने शीघ्र जा कर वैसा ही किया तो वह व्याध पानी पी कर एक पेड़ के नीचे बैठा मृग को उस प्रकार देख पाया। फिर छुरी लेकर आनंदित होता हुआ मृग के पास जाने लगा। इतने ही में हिरण्यक ने आ कर कछुए को बंधन काट डाला। तब वह कछुआ शीघ्र सरोवर में घुस गया। वह मृग उस व्याध को पास आता हुआ देख उठ कर भाग गया। जब व्याध लौट कर पेड़ के नीचे आया, तब कछुए को न देखकर सोचने लगा—मेरे समान बिना विचार करने वाले के लिए यही उचित था।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते। ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि॥

जो निश्चित को छोड़ कर अनिश्चित पदार्थ का आसरा करता है, उसके निश्चित पदार्थ नष्ट हो जाते हैं और अनिश्चित भी जाता रहता है। फिर वह अपने प्रारब्ध को दोष लगाता हुआ निराश होकर अपने घर गया। मन्थर आदि भी सब आपत्ति से निकल अपने-अपने स्थान पर जा कर सुख से रहने लगे।

18-श्रेष्ट मनुष्य समझ बूझकर चलता है"

एक श्रेष्ट इंसान काम-काज में कुशल और मुश्किलों का हल करने में माहिर होता है। उसमें सही फैसले करने और हर बात को फौरन समजने की काबिलीयत होती है। साथ ही, वह समझदार, होशियार और अक्लमंद वुद्धिमान होता है। वह मक्कार या छली नहीं होता। जो इसके विपरीत होते है वह दुष्ट प्रकृति के मुर्ख किश्म के लोग होते है अपने अज्ञान पूर्ण कर्म के कारण दूसरे सज्जन लोगों को मुसिबत में डाल कर स्वंय को आन्नदित महशुस करते है। सब वुद्धिमान समझदार श्रेषेट पुरुष तो ज्ञान से काम करते हैं। " जी हाँ, चतुराई या होशियारी एक मनभावना गुण है, जिसे अपने अंदर पैदा करने की हमें ज़रूरत है।

हम रोज़मर्रा ज़िंदगी में चतुराई समझदारी से कैसे काम कर सकते हैं? हम ज़िंदगी के फैसले करने में, दूसरों के साथ पेश आने में और अलग-अलग हालात से निपटने में चतुर कैसे हो सकते हैं? होशियार लोगों को क्या प्रतिफल मिलता है? वे किन-किन मुसीबतों से बचते हैं? इन सवालों के जवाब प्राचीन मंत्रों में परमेश्वर ने उपदेश के रूप में दिए हैं। इनकी जाँच और समझने से हमें बहुत फायदा हो सकता है।

अपना रास्ता वुद्धि से विचार करके चुनिए

ज़िंदगी के फैसले बुद्धिमानी से करने और कामयाब होने के लिए ज़रूरी है कि हमारे अंदर सही-गलत के बीच फर्क करने की काबिलीयत हो। मगर इस बारे में वेद मंत्र हमें आगाह एक चेतावनी देती है: "ऐसा मार्ग है, जो मनुष्य को ठीक देख पड़ता है, परन्तु उसके अन्त में एक भयानक और कष्ट पूर्ण मृत्यु मिलती है। इसलिए हमें यह फर्क करना सीखना चाहिए कि कौन-सी बात वाकई सही है और कौन-सी बात सिर्फ़ देखने में सही लगती है, मगर होती नहीं। वेद मंत्रो और उनके शब्दों से पता चलता है कि ऐसे कई ग़लत रास्ते हैं जिन्हें इख्तियार करने से हम धोखा खा सकते हैं। आइए ऐसे कुछ रास्तों पर गौर करें जिनके बारे में हमें पता होना चाहिए और जिनसे हमें दूर रहना चाहिए. आम तौर पर दुनिया के दौलतमंदों और नामी-गिरामी लोगों को बहुत इज़्ज़तदार माना जाता है और उनकी खूब तारीफ की जाती है। समाज में उनके ओहदे और उनकी दौलत को देखकर लग सकता है कि वे जिस रास्ते पर हैं या उनके जीने का तरीका बिलकुल सही है। लेकिन वे दौलत या शोहरत कमाने के लिए जो रास्ते अपनाते हैं, उनके बारे में क्या? क्या वे ईमानदारी और सच्चाई के रास्ते पर चलकर इस मुकाम तक पहुँचे हैं? और अगर धर्म की बात करें, तो वहाँ भी ऐसे रास्ते हैं जो सिर्फ़ दिखने में सही लगते हैं और कुछ लोग अपने धर्म को सही मानकर उसके लिए काफी जोश दिखाते हैं। मगर क्या उनकी नेक-नीयत से यह साबित होता है कि वे जिस रास्ते पर हैं, वह सही है? कोई रास्ता शायद हमें इसलिए भी सही जान पड़े क्योंकि हमने खुद को धोखे में रखा है। जो हमें सही लगता है उसकी बिना पर फैसला करना, अपने दिल पर भरोसा करना है और हमारा दिल हमें ग़लत राह दिखा सकता है। अगर हमारे विवेक को सही-गलत की अच्छी समझ नहीं है और उसे सही तालीम न दी गयी हो, तो हम इसके बहकावे में आकर ग़लत रास्ते को भी सही मान बैठेंगे। इसलिए सही रास्ता चुनने में क्या बात हमारी मदद

कर सकती है? परमेश्वर के-के वेद वचन की गूढ़ सच्चाइयों का मन लगाकर अध्ययन करना निहायत ज़रूरी है। तभी हम 'अपनी ज्ञानेंद्रियों को भले बुरे में भेद करने के लिये पक्का' कर सकेंगे। इतना ही नहीं, हमें इन ज्ञानेंद्रियों का" अभ्यास" भी करना चाहिए यानी की वेद मंत्रों के सिद्धांतों को अपने जीवन में लागू करना चाहिए. हमें चौकन्ना रहना है कि जो डगर सिर्फ़ देखने में सही लगती है, कहीं उसकी तरफ कदम बढ़ाकर हम 'जीवन को पहुंचानेवाले सकरे मार्ग' से भटक न भटक जाए।

क्या यह मुमकिन है कि हमारा मन दुःख से दबा हो, फिर भी हम हँसते-मुस्कराते रहें? क्या खिलखिलाकर हँसने और मौज-मस्ती करने से दिल का दर्द कम हो सकता है? क्या अपनी मायूसी से उबरने के लिए शराब का सहारा लेना, ड्रग्स का नशा या अपना गम भुलाने के लिए बदचलन ज़िंदगी जीना चतुराई है? जवाब है नहीं। बुद्धिमान पुरुष कहता है: "हंसी के समय भी मन उदास होता है। हँसने से दिल का दर्द छिप सकता है, मगर यह मिटता नहीं। वेद मंत्र कहते पुर्षाथ करों और यह निश्चय करों क्या श्रेष्ठ है और क्या मिकृष्ट है श्रेष्ठ को जीवन में अस्थान दो और निकृष्टता का दुष्टता का समुल नाश करें 'हर एक बात का एक अवसर होता है।' यहाँ तक कि" रोने का समय और हंसने का भी समय; छाती पीटने का समय और नाचने का भी समय है। इसलिए अगर हम किसी वजह से मायूस हैं, तो अपनी भावनाओं पर काबू पाने के लिए हमें कुछ कदम उठाने चाहिए और ज़रूरत पड़ने पर दूसरों से "बुद्धि की सलाह" लेनी चाहिए. हँसने और मन बहलाने से अपना दर्द सहने में थोड़ी-बहुत मदद मिल सकती है, मगर इनसे ज़्यादा फायदा नहीं होता। मंत्र हमें खबरदार करता है कि हम ग़लत किस्म के मन-बहलाव से और हद-से-ज़्यादा मनोरंजन करने से दुष्टतापूर्ण कर्मों से दूर रहें। मंत्र कहता है: " कि जो निकृष्ट कर्मों और दुष्ट कर्मों के आनन्द के अन्त में शोक होता है।

परमेश्वर मंत्र के माध्यम से आगे कहता है: " जिसका मन ईश्वर की ओर से हट जाता है, वह अपनी चालचलन का फल भोगता है, परन्तु भला मनुष्य आप ही आप सन्तुष्ट होता है। जिनका मन परमेश्वर से हट जाता है, ऐसे अविश्वासी लोग, साथ ही भले इंसान, दोनों अपनी-अपनी करनी के फल से कैसे संतुष्ट होते हैं? अविश्वासी को इस बात की फिक्र नहीं रहती कि उसे परमेश्वर को लेखा देना पड़ेगा। इसलिए उसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह जो कर रहा है, वह परमेश्वर की नज़र में सही है या गलत। वह बस अपनी ऐशो-आराम की ज़िंदगी से संतुष्ट रहता है। दूसरी तरफ, एक भला इंसान हमेशा ऐसे काम करने की कोशिश करता है जो परमेश्वर की नज़रों में सही हैं। वह अपने हर काम में परमेश्वर के धर्मी स्तरों को मानने की भरसक कोशिश करता है और इससे मिलने वाले अच्छे नतीजों से वह संतुष्ट होता है, क्योंकि परमेश्वर का आदेश सर्वोपरि है। वह परमप्रधान परमेश्वर की सेवा से बेइंतिहा खुशी पाता है। मंत्र बताता है कि एक अनाड़ी और होशियार इंसान में क्या फर्क होता है, भोला तो हर एक बात को सच मानता है, परन्तु वुद्धिमान मनुष्य समझ बूझकर चलता है। एक समझदार वुद्धिमान इंसान को आसानी से बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता। वह देखी-सुनी हर बात पर यकीन नहीं कर लेता, ना ही आँख मूँदकर दूसरों की राय अपना लेता है। इसके बजाय, वह फूँक-फूँककर कदम रखता है। वह पहले पूरी जानकारी हासिल करता है और फिर उसके मुताबिक सोच-समझकर कदम उठाता है। जैसे, इस सवाल को लीजिए क्या कोई परमेश्वर है? इस बारे में एक अनाड़ी वही धारणाएँ अपनाता है जो दुनिया में मशहूर हैं या जो बड़े-बड़े लोग मानते हैं। लेकिन चतुर इंसान समय निकालकर सबूतों को जाँचता है। वह वेद मंत्रों पर गहराई से सोचता विचार करता है। एक होशियार इंसान आध्यात्मिक मामलों में धर्म-गुरुओं की बात को आँख बंद करके नहीं मान लेता। वह 'आध्यात्मिक संदेशों को परखता है कि वे परमेश्वर की ओर से हैं कि नहीं। वेद मंत्रो की इस सलाह को मानना कितनी अक्लमंदी है कि हम' हर एक बात को सच मानने' की गलती न करें पहले विचार करके यह निश्चय करें क्या ग़लत है और क्या सही है इस

बात पर खासकर उन लोगों को ध्यान देना चाहिए जिन्हें मंत्रो कोसमझने और में दूसरों को सलाह देने की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी है। किसी को सलाह देने से पहले एक व्यक्ति को मामले की पूरी-पूरी जानकारी होनी चाहिए. उसे सामने वाले की बात ध्यान से सुननी चाहिए और हर जगह से सबूत इकट्ठे करने चाहिए ताकि उसकी सलाह ग़लत या एकतरफा न हो।

वेद मंत्र बुद्धिमान और मूर्ख के बीच एक और फर्क बताता है: वह कहता है कि जो दुष्ट है दया हिन है छल कपट पूर्ण कर्म करते है और सत्य ज्ञान विद्या के विरोधी है। " बुद्धिमान डरकर बुराई से हटता है, परन्तु मूर्ख दुष्ट ढीठ होकर निडर रहता है। जो झट क्रोध करे, वह मूढ़ता का काम भी करेगा और जो बुरी युक्तियाँ निकालता है जो सोचने-समझने की काबिलीयत रखत है वुद्धिमान जन उस से दुष्ट लोग बैर रखते हैं।

बुद्धिमान को इस बात का डर रहता है कि ग़लत रास्ते पर चलने से उसे बुरे अंजाम भुगतने पड़ेंगे। इसलिए वह एहतियात बरतता है और उसे बुराई से दूर रहने की जो भी सलाह दी जाती है, उसकी वह कदर करता है। मगर एक बेवकूफ को ऐसा डर नहीं रहता। उसे अपने ऊपर कुछ ज़्यादा ही भरोसा होता है, इसलिए वह मगरूर होकर दूसरों की सलाह को अनसुना कर देता है। वह गरम-मिज़ाज होता है, इसलिए वह मूर्खता के ही काम करता है। लेकिन परमेश्वर ने यह क्यों कहा कि सोचने-समझने की काबिलीयत रखनेवाले इंसान से लोग नफरत करते हैं? मूल मंत्र के जिस शब्द का अनुवाद "सोचने-समझने की काबिलीयत" किया गया है, उसके दो मतलब हैं। एक का इस्तेमाल परख-शक्ति या चतुराई के लिए हो सकता है, जो कि एक अच्छा गुण है। दूसरा, दुष्ट विचारों या मंसूबों के लिए इस्तेमाल हो सकता है। "सोचने-समझने की काबिलीयत रखनेवाले," ये शब्द अगर बुरे मंसूबे रखनेवाले दुष्ट के लिए इस्तेमाल किए गए हैं, तो यह समझना आसान है कि उससे नफरत क्यों की जाती है। लेकिन यह भी सच है कि जिस इंसान में परख-शक्ति होती है, वह ऐसे लोगों की नफरत का शिकार बनता है जिनमें परख-शक्ति नहीं होती। उदाहरण के लिए, जो अपनी दिमागी काबिलीयत का सही इस्तेमाल करके संसार को सुधारने सही मार्ग पर चलने का चुनाव करते हैं। उनसे संसार बैर करता है। जब महर्षि स्वामी दयान्नद जवान थे अपनी सोचने-समझने की काबिलीयत का अच्छा इस्तेमाल करने की वजह से साथियों के दबाव में नहीं आते और ग़लत चालचलन से दूर रहते हैं, तो उनका मज़ाक उड़ाया जाता है। हकीकत तो यह है कि जो सच्ची उपासना करते हैं, उनसे पूरी दुनिया नफरत करती है, क्योंकि यह दुनिया दष्ट शैतान किस्म के लोगों से भरी है। वुद्धिमान होशियार या चतुर इंसान और अनाड़ी के बीच एक और फर्क है। " भोलों का भाग मूढ़ता ही होता है, परन्तु चतुरों को ज्ञानरूपी मुकुट बान्धा जाता है। अनाड़ी लोगों में समझ नहीं होती, इसलिए वे मूर्खता के काम करना पसंद करते हैं। ऐसे ही काम करना उनकी आदत बन जाती है। दूसरी तरफ, एक चतुर इंसान को ज्ञान होता है और यह ज्ञान उसकी शोभा बढ़ाता है, ठीक जैसे एक मुकुट, राजा का सम्मान बढ़ाता है। इसलिए परमेश्वर उन श्रेष्ट लोगों को आदेश मंत्रो के माध्यम से देता है और कहता है कि दुष्टों का समुल नाश अपनी वुद्धिमत्ता से करों। क्योंकि कहा गया है कि वुद्धि यस्य बलम् तस्य जहा वुद्धि है बल वही है वुद्धि हिनस्य कुतस्य बल् आर्थात वुद्धिहिन के पास कैसा बल।

बुद्धिमान परमेश्वर कहता है: "दुष्ट, भले लोगों के सम्मुख और कुटिल, धर्मियों के फाटकों पर सिर झुकाएंगे। दूसरे शब्दों में, आखिरकार दुष्टों पर भले लोगों की ही जीत होगी। ज़रा गौर कीजिए कि आज परमेश्वर की आशीष से उसके लोगों की गिनती में कितनी बढ़ोतरी हो रही है और वे दुनिया के मुकाबले कितनी बेहतरीन और कामयाब ज़िंदगी जी रहे हैं। हमें मिलने वाली ये आशीषें देखकर हमारे कुछ विरोधियों को परमेश्वर की लाक्षणिक स्वर्गीय ज्ञान के सामने 'झुकना' पड़ेगा, जिसके प्रतिनिधि आज धरती पर बचे हुए अभिषिक्त जन हैं। उन्हें कैसे झुकना पड़ेगा? चाहे अब नहीं तो भविष्य में ही सही, इन विरोधियों को कबूल करना पड़ेगा कि परमेश्वर के संगठन का जो हिस्सा धरती पर है, वह सचमुच स्वर्गीय संगठन का ही प्रतिनिधित्व करता है। परमेश्वर इंसान की एक फितरत के बारे में कहता है

निर्धन का पड़ोसी भी उस से घृणा करता है, परन्तु धनी के बहु तेरे प्रेमी होते हैं।" इसलिये परमेश्वर कहता है कि अपार सुख की कामना करों यह बात असिद्ध इंसानों के मामले में कितनी सच है! उनके अंदर स्वार्थ भरा होता है, इसलिए वे गरीबों के बजाय हमेशा अमीरों के साथ होना पसंद करते हैं। मगर एक अमीर इंसान के पास चाहे कितने ही दोस्त हों, पैसे की तरह वे भी कुछ समय बाद पंख लगाकर उड़ जाते हैं। इसलिए हमें न तो दूसरों पर पैसे लुटाकर, ना ही अमीरों की चापलूसी करके उन्हें दोस्त बनाना चाहिए।

अगर यदि ईमानदारी से खुद की जाँच करें तो हम पाते हैं कि हमें अमीरों की खुशामद करने और गरीबों को नीचा दिखाने की आदत है, तो हमें क्या करना चाहिए? हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि वेद मंत्र ऐसी तरफदारी की निंदा करती है। यह बताता है जो अपने पड़ोसी को तुच्छ जानता, वह पाप करता है, परन्तु जो दीन लोगों पर अनुग्रह करता, वह धन्य होता है। वह सब को श्रेष्ठ वनाने कि बात करता है। हमें ऐसे लोगों का लिहाज़ करना चाहिए जो मुश्किल हालात से गुज़र रहे हैं। यह हम कैसे कर सकते हैं? उन्हें "संसार की संपत्ति" देकर, जिसमें खाना, कपड़ा, पैसा या सिर छिपाने की जगह देना और उनकी देखभाल करना शामिल है। जो मुसीबत के मारों की मदद करता है उसे खुशी मिलती है, क्योंकि "लेने से देने में अधिक सुख है। मनुष्य जो कुछ बोता है, वही काटेगा यह सिद्धांत वुद्धिमान चतुर और मूर्ख दोनों पर लागू होता है। चतुर इंसान भले काम करता है, जबकि मूर्ख बुरे काम करने की साज़िश रचता है। बुद्धिमान राजा पूछता है:" जो बुरी युक्ति निकालते हैं, क्या वे भ्रम में नहीं पड़ते? "जवाब है, हाँ; वे ' भटक जाते हैं। परन्तु भली युक्ति निकालनेवालों से करुणा और सच्चाई का व्यवहार किया जाता है। भले काम करनेवाले दूसरों की नज़रों में अच्छा नाम कमाते हैं, साथ ही परमेश्वर की करुणा भी पाते हैं। कड़ी मेहनत से सफलता मिलती है, जबकि लंबी-चौड़ी बातें करने और काम न करने से नाकामी हाथ लगती है। इस सच्चाई को वेद मंत्र पुरुषार्थ के इन शब्दों में बताता है:" परिश्रम से सदा लाभ होता है, परन्तु बकवाद करने से केवल घटी होती है। "बेशक यह सिद्धांत आध्यात्मिक मामलों पर भी लागू होता है। जब हम परमेश्वर सेवा में कड़ी मेहनत करते हैं, तो हमें अच्छे नतीजे मिलते हैं। हम परमेश्वर के वचन की जीवन देनेवाली सच्चाई बहुत-से लोगों को सिखा पाते हैं। परमेश्वर के संगठन में जो भी काम हमें सौंपा जाता है, उसे बेहतर ढंग से पूरा करने से हमें खुशी और संतोष मिलता है। बुद्धिमानों का धन उनका मुकुट ठहरता है, परन्तु मूर्खों की मूढ़ता निरी मूढ़ता है।" इसका यह मतलब हो सकता है कि बुद्धिमानों को अपनी मेहनत से जो बुद्धि हासिल होती है, वह उनके लिए धन के बराबर अनमोल है। बुद्धि एक मुकुट की तरह उन्हें सम्मानित करती है। दूसरी तरफ, एक मूर्ख को सिर्फ़ मूर्खता ही हासिल होती है। एक किताब के मुताबिक, इस मंत्र वचन का यह मतलब भी हो सकता है कि जो धन का सही इस्तेमाल करते हैं अर्थात दान करते है उनका धन एक गहने की तरह उनका रूप निखारता है जबकि मूर्खों के हिस्से में सिर्फ़ मूर्खता होती है। इस मंत्र का अर्थ चाहे जो भी मतलब हो, मगर यह तय है कि एक बुद्धिमान, मूर्ख के मुकाबले ज़्यादा कामयाब होता है। मंत्र आगे कहता है: " सच्चा साक्षी बहुतों के प्राण बचाता है, परन्तु जो झूठी बातें उड़ाया करता है उस से धोखा ही होता है। हालाँकि यह बात अदालती मामलों में सोलह आने सच है, मगर ध्यान दीजिए कि यह हमारी सेवा पर कैसे लागू होती है। वेद मंत्रो के प्रचार शिष्य बनाने के काम में हम परमेश्वर के वचन की सच्चाई की साक्षी देते हैं। हमारा साक्षी, नेकदिल लोगों को झूठे धर्म के चंगुल से छुटकारा दिलाकर उनकी जान बचाती है। अगर हम खुद पर और अपने सिखाने के तरीके पर हमेशा ध्यान देते रहें, तो हम अपनी और अपने सुननेवालों की जान बचा पाएँगे। इसलिए आइए हम यह काम जारी रखें, साथ ही ज़िंदगी के हर दायरे में चतुराई से काम लें।

मनुष्य अपने बहुत कर्म लोभ के वशी भुत हो कर करता है जिसका कारण उसका अज्ञान होता है, जैसा कि यह काल्पनिक कहानी कहती है।

एक समय दक्षिण दिशा में एक वृद्ध बाघ स्नान करके कुशों को हाथ में लिए हुए कह रहा था-वह मार्ग के चलने वाले पथिकों! मेरे हाथ में रखे हुए इस सुवर्ण के कड्कण (कड़ा) को ले लो, इसे सुनकर लालच के वशीभूत होकर किसी बटोही ने (मन में) विचारा—ऐसी वस्तु, (सुवर्ण कड्क) भाग्य से उपलब्ध होती है। परंतु इसे लेने के लिये, बाघ के पास जाना उचित नहीं, क्योंकि इसमें प्राणों का संदेह है। अनिष्ट स्थान बाघ इत्यादि से सुवर्ण, कड्क सदृश अभीष्ट वस्तु के लाभ की संभावना होते हुए भी कल्याण होना न नहीं आता, क्योंकि जिस अमृत में जहर का संपर्क है, वह अमृत भी मौत का कारण है, न कि अमरता का। किंतु धन पैदा करने की सभी क्रियाओं में संदेह की संभावना रहती ही है।

कोई भी व्यक्ति संदेहपूर्ण कार्य में बिना पग बढ़ाये कल्याण के दर्शन में असमर्थ ही रहता है। हाँ, फिर संदेहपूर्ण कार्य करने पर यदि वह जीता रहता है, तो कल्याण का दर्शन करता है। इस कारण से सर्वप्रथम मैं इसके वाक्य के तथ्य सत्य, अतथ्य असत्य का परीक्षण करता हूँ। वह उच्चस्वर में बोलता है—कहाँ है तुम्हारा कंगन? बाघ हाथ फैला कर देखाता है। पथिक बोला मारने वाले तुम में कैसे विश्वास करु?

मुझे इतना भी लोभ नहीं है, जिससे मैं अपने हाथ में रखे हुए सुवर्ण कंगन को जिस किसी रास्ता चलता अपरिचित व्यक्ति को दे देना चाहता हूँ। परंतु बाघ मनुष्य को भक्षक है, इस लोकापवाद को हटाया नहीं जा सकता। अंधपरंपरा पर चलने वाला लोक धर्म के विषय में गोवध करने वाले ब्राह्मण को जैसे प्रमाण मानता है, वैसे उपदेश देनेवाली कुट्ठिनी को प्रमाणता से स्वीकार नहीं करता। अर्थात संसार कुट्ठिनी के वाक्य को धर्म के विषय में प्रमाण नहीं मानता।

हे युधिष्ठिर! जिस प्रकार मरुप्रदेश में वृष्टि सफल होती है, जिस प्रकार भूख से पीड़ित को भोजन देना सफल होता है, उसी तरह दरिद्र को दिया गया दान सफल होता है। प्राणा यथात्मनोभीष्टा भूतानामपि ते तथा। आत्मौपम्येन भूतानां दयाँ कुर्वन्ति साधवः। प्राण जैसे अपने लिए प्रिय हैं, उसी तरह अन्य प्राणियों को भी अपने प्राण प्रिय होंगे। इस कारण से सज्जन जीवनमात्र पर दया करते हैं। निषेध में तथा दान में, सुख अथवा दुः ख में, प्रिय एवं अप्रिय में सज्जन पुरुष अपनी तुलना से अनुभव करता है, अर्थात मुझे किसी ने कुछ दिया तो हर्ष होता है, यदि अनादर किया तो दुख होता है। इस तरह मैं भी किसी को कुछ दूँगा तो हर्ष होगा, निषेध करूँगा तो दुख होगा। मातृवत्परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत्। आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्चति स पण्डितः॥

जो पुरुष दूसरे की स्त्रियों को अपनी माता की तरह एवं अन्य के धन को मिट्टी के ढेले के समान तथा प्राणिमात्र को अपने समान देखता है, वह पंडित है, अर्थात सत असत के विवेक करने वाली बुद्धि वाला है और चंद्रमा जो आकाश में विचरता है, अंधकार दूर करता है, सहस्र किरणों को धारण करता है और नक्षत्रों में बीच में चलता है उस चंद्रमा को भी भाग्य से राहु ग्रस्त होता है, इसलिए जो कुछ भाग्य (ललाट) में विधाता ने लिख दिया है उसे कौन मिटा सकता है। यह बात वह सोच ही रहा था जब उसको बाघ ने मार डाला और खा गया। इसी से कहा जाता है कंगन के लोभ से इत्यादि बिना विचारे काम कभी नहीं करना चाहिए.

19- कहानि क्षुद्रवुद्धि गिदण की

मगध देश में चंपकवती नामक एक महान अरण्य था, उसमें बहुत दिनों में मृग और कौवा बड़े स्नेह से रहते थे। किसी गीदड़ ने उस मृग को हट्ठा-कट्ठा और अपनी इच्छा से इधर-उधर घूमता हुआ देखा, इसको देख कर गीदड़ सोचने लगा अरे, कैसे इस सुंदर (मीठा) माँस खाऊँ? जो हो, पहले इसे विश्वास उत्पन्न कराऊँ। यह विचार कर उसके पास जाकर बोला हे मित्र, तुम कुशल हो? मृग ने कहा " तू कौन है? ' वह बोला मैं क्षुद्रबुद्धि नामक गीदड़ हूँ। इस वन में बंधुहीन मरे के समान रहता हूँ और सब प्रकार से तुम्हारा सेवक बन कर रहूँगा। मृग ने कहा-ऐसा ही हो, अर्थात रहा कर। इसके अनंतर किरणों की मालासे भगवान सूर्य के अस्त हो जाने पर वे दोनों मृग के घर को गये और वहाँ चंपा के वृक्ष की डाल पर मृग का परम मित्र सुबुद्धि नामक कौवा रहता था। कौए ने इन दोनों को देखकर कहा-मित्र, यह चितकवरा दूसरा कौन है? मृग ने कहा-यह गीदड़ है। हमारे साथ मित्रता करने की इच्छा से आया है। कौवा बोला-मित्र, अनायास आए हुए के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये।

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्। मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृध्रो जरद्गवः॥

कहा भी गया है कि-जिसका कुल और स्वभाव नहीं जाना है, उसको घर में कभी न ठहराना चाहिए, क्योंकि बिलाव के अपराध में एक बूढ़ा गिद्ध मारा गया। यह सुनकर सियार झुंझलाकर बोला-मृग से पहले ही मिलने के दिन तुम्हारी भी तो कुल और स्वभाव नहीं जाना गया था। फिर कैसे तुम्हारे साथ इसकी गाढ़ी मित्रता हो गई.

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्रलाघ्यस्तत्राल्पधीरपि। निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते॥

जहाँ पंडित नहीं होता है, वहाँ थोड़े पढ़े की भी बड़ाई होती है। जैसे कि जिस देश में पेड़ नहीं होता है, वहाँ अरण्डाका वृक्ष ही पेड़ गिना जाता है और दूसरे यह अपना है या पराया है, यह अल्पबुद्धियों की गिनती है। उदारचरित वालों को तो सब पृथ्वी ही कुटुंब है। जैसा यह मृग मेरा बंधु है, वैसे ही तुम भी हो। मृग बोला-इस उत्तर-प्रत्युत्तर से क्या है? सब एक स्थान में विश्वास की बातचीत कर सुख से रहो। क्योंकि न तो कोई किसी का मित्र है, न कोई किसी का शत्रु है। व्यवहार से मित्र और शत्रु बन जाते हैं। कौवे ने कहा-ठीक है। फिर प्रातःकाल सब अपने-अपने मनमाने देश को गये।

एक दिन एकांत में सियार ने कहा-मित्र मृग, इस वन में एक दूसरे स्थान में अनाज से भरा हुआ खेत है, सो चल कर तुझे दिखाऊँ। वैसा करने पर मृग वहाँ जा कर नित्य अनाज खाता रहा। एक दिन उसे खेत वाले ने देख कर फँदा लगाया। इसके बाद जब वहाँ मृग फिर चरने को आया सो ही जाल में फँस गया और सोचने लगा-मुझे इस काल की फाँसी के समान व्याध के फंदे से मित्र को छोड़कर कौन बचा सकता है? इस बीच में सियार वहाँ आकर उपस्थित हुआ और सोचने लगा—मेरे छल की चाल से मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ और इस उभड़े हुए माँस और लहू लगी हुई हड्डियाँ मुझे अवश्य मिलेंगी और वे मनमानी खाने के लिए होंगी। मृग उसे देख प्रसन्न होकर बोला-ओ मित्र मेरा बंधन काटो और मुझे शीघ्र बचाओ.

आपत्सु मित्रं जानीयाद्युध्दे शूरमृणे शुचिम्। भार्यो क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बांधवान्॥

आपत्ति में मित्र, युद्ध में शूर, उधार में सच्चा व्यवहार, निर्धनता में स्री और दु: ख में भाई (या कुटुंबी) परखे जाते हैं और दूसरे विवाहादि उत्सव में, आपत्ति में, अकाल में, राज्य के पलटने में, राजद्वार में तथा श्मशान में, जो साथ रहता है, वह बांधव है। सियार जाल को बार-बार देख सोचने लगा-यह बड़ा कड़ा बंध है और बोला— "" मित्र, ये फँदे तांत के बने हुए हैं, इसलिए आज रविवार के दिन इन्हें दाँतों से कैसे छुऊँ मित्र जो बुरा न मानो तो प्रातः काल जो कहोगे, सो

करूँगा"। ऐसा कह कर उसके पास ही वह अपने को छिपा कर बैठ गया। पीछे वह कौवा सांझ होने पर मृग को नहीं आया देख कर इधर-उधर ढूढ़ते-ढूंढ़ते उस प्रकार उसे (बंधन में) देख कर बोला—" "मित्र, यह क्या है?" मृग ने कहा-"मित्र का वचन नहीं मानने का फल है"।

सुहृदां हितकामानां यः श्रृणोति न भाषितम्। विपत्संनिहिता तस्य स नरः शत्रुनंदन॥

जैसा कहा गया है कि जो मनुष्य अपने हितकारी मित्रो का वचन नहीं सुनता है, उसके पास ही विपत्ति है और अपने शत्रुओं को प्रसन्न करने वाला है। कौवा बोला-"वह ठग कहाँ है? मृग ने कहा-" मेरे मांस का लोभी यहाँ ही कहीं बैठा होगा? कौवा बोला-मैंने पहले ही कहा था। मृग ने कहा मेरा कुछ अपराध नहीं है, अर्थात मैंने इसका कुछ नहीं बिगाड़ा है, अतएव यह भी मेरे संग विश्वासघात न करेगा, यह बात कुछ विश्वास का कारण नहीं है, क्योंकि गुण और दोष को बिना सोचे शत्रुता करने वाले नीचों से सज्जनों को अवश्य भय होता ही है और जिनकी मृत्यु पास आ गयी है, ऐसे मनुष्य न तो बुझे हुए दिये की चिरांद सूंघ सकते हैं, न मित्रता का वचन सुनते हैं और न अरूँधती के तारे को देख सकते हैं।

परोक्ष कार्यहंतारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्। वर्जयेत्तादृशं मित्र विषकुम्भं पयोमुखम्।

पीठ पीछे काम बिगाड़ने वाले और मुख पर मीठी-मीठी बातें करने वाले मित्र को, मुख पर दूध वाले विष के घड़े के समान छोड़ देना चाहिए। कौवे ने लंबी सांस भर कर कहा कि-"अरे ठग, तुझ पापी ने यह क्या किया?" क्योंकि अच्छे प्रकार से बोलने वालों को, मीठे-मीठे वचनों तथा मित्र कपट से वश में किये हुओं को, आशा करने वालों को, भरोसा रखने वालों को और धन के याचकों को, ठगना क्या बड़ी बात है? और हे पृथ्वी, जो मनुष्य उपकारी, विश्वासी तथा भोले-भाले मनुष्य के साथ छल करता है उस ठग पुरुष को हे भगवति पृथ्वी, तू कैसे धारण करती है

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत्। उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्।

दुष्ट के साथ मित्रता और प्रीति नहीं करनी चाहिये, क्योंकि गरम अंगारा हाथ को जलाता है और ठंढ़ा हाथ को काला कर देता है। दुर्जनों का यही आचरण है। मच्छर दुष्ट के समान सब चरित्र करता है, अर्थात् जैसे दुष्ट पहले पैरों पर गिरता है, वैसे ही यह भी गिरता है। जैसे दुष्ट पीठ पीछे बुराई करता है, वैसे ही यह भी पीठ में काटता है। जैसे दुष्ट कान के पास मीठी-मीठी बात करता है, वैसे ही यह भी कान के पास मधुर विचित्र शब्द करता है और जैसे दुष्ट आपत्ति को देखकर निडर हो बुराई करता है, वैसे ही मच्छर भी छिद्र अर्थात् रोम के छेद में प्रवेश कर काटता है।

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम्। मधु तिष्ठति जिह्मवाग्रे हृदि हालाहलं विषम्।

और दुष्ट मनुष्य का प्रियवादी होना यह विश्वास का कारण नहीं है। उसकी जीभ के आगे मिठास और हृदय में हालाहल विष भरा है। प्रातःकाल कौवे ने उस खेत वाले को लकड़ी हाथ में लिये उस स्थान पर आता हुआ देखा, उसे देख कर कौवे ने मृग से कहा-" मित्र हरिण, तू अपने शरीर को मरे के समान दिखा कर पेट को हवा से फुला कर और पैरों को ठिठिया कर बैठ जा। जब मैं शब्द करूँ तब तू झट उठ कर जल्दी भाग जाना। मृग उसी प्रकार कौवे के वचन से पड़ गया। फिर खेत वाले ने प्रसन्नता से आँख खोल कर उस मृग को इस प्रकार देखा, आहा, यह तो आप ही मर गया। ऐसा कह कर मृग की फाँसी को खोल कर जाल को समेटने का प्रयत्न करने लगा, पीछे कौवे का शब्द सुन कर मृग तुरंत उठ कर भाग गया। इसको देख उस खेत वाले ने ऐसी फेंक कर लकड़ी मारी कि उससे सियार मारा गया।

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः। अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते॥

जैसा कहा गया है कि प्राणी तीन वर्ष, तीन मास, तीन पक्ष और तीन दिन में, अधिक पाप और पुण्य का फल यहाँ ही भोगता है।

20 - दयालु हृदय रुरु

रुरु नाम एक मृग था। सोने के रंग में ढला उसका सुंदर सजीला बदन; माणिक, नीलम और पन्ने की कांति की चित्रांगता से शोभायमान था। मखमल से मुलायम उसके रेशमी बाल, आसमानी आँखें तथा तराशे स्फटिक-से उसके खुर और सींग सहज ही किसी का मन मोह लेने वाले थे। तभी तो जब भी वह वन में चौकडियाँ भरता तो उसे देखने वाला हर कोई आह भर उठता। जाहिर है कि रुरु एक साधारण मृग नहीं था। उसकी अप्रतिम सुन्दरता उसकी विशेषता थी। लेकिन उससे भी बड़ी उसकी विशेषता यह थी कि वह विवेकशील था; और मनुष्य की तरह बात-चीत करने में भी समर्थ था। पूर्व जन्म के संस्कार से उसे ज्ञात था कि मनुष्य स्वभावत: एक लोभी प्राणी है और लोभ-वश वह मानवीय करुणा का भी प्रतिकार करता आया है। फिर भी सभी प्राणियों के लिए उसकी करुणा प्रबल थी और मनुष्य उसके करुणा-भाव के लिए कोई अपवाद नहीं था। यही करुणा रुरु की सबसे बड़ी विशिष्टता थी। एक दिन रुरु जब वन में स्वच्छंद विहार कर रहा था तो उसे किसी मनुष्य की चीत्कार सुनायी दी। अनुसरण करता हुआ जब वह घटना-स्थल पर पहुँचा तो उसने वहाँ की पहाड़ी नदी की धारा में एक आदमी को बहता पाया। रुरु की करुणा सहज ही फूट पड़ी। वह तत्काल पानी में कूद पड़ा और डूबते व्यक्ति को अपने पैरों को पकड़ने कि सलाह दी। डूबता व्यक्ति अपनी घबराहट में रुरु के पैरों को न पकड़ उसके ऊपर की सवार हो गया। नाजुक रुरु उसे झटक कर अलग कर सकता था मगर उसने ऐसा नहीं किया। अपितु अनेक कठिनाइयों के बाद भी उस व्यक्ति को अपनी पीठ पर लाद बड़े संयम और मनोबल के साथ किनारे पर ला खड़ा किया। सुरक्षित आदमी ने जब रुरु को धन्यवाद देना चाहा तो रुरु ने उससे कहा, "अगर तू सच में मुझे धन्यवाद देना चाहता है तो यह बात किसी को ही नहीं बताना कि तूने एक ऐसे मृग द्वारा पुनर्जीवन पाया है जो एक विशिष्ट स्वर्ण-मृग है; क्योंकि तुम्हारी दुनिया के लोग जब मेरे अस्तित्व को जानेंगे तो वे निस्सन्देह मेरा शिकार करना चाहेंगे।" इस प्रकार उस मनुष्य को विदा कर रुरु पुन: अपने निवास-स्थान को चला गया। कालांतर में उस राज्य की रानी को एक स्वप्न आया। उसने स्वप्न में रुरु साक्षात् दर्शन कर लिए. रुरु की सुन्दरता पर मुग्ध; और हर सुन्दर वस्तु को प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा से रुरु को अपने पास रखने की उसकी लालसा प्रबल हुई. तत्काल उसने राजा से रुरु को ढूँढकर लाने का आग्रह किया। सत्ता में मद में चूर राजा उसकी याचना को ठुकरा नहीं सका। उसने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई-भी रानी द्वारा कल्पित मृग को ढूँढने में सहायक होगा उसे वह एक गाँव तथा दस सुन्दर युवतियाँ पुरस्कार में देगा। राजा के ढिंढोरे की आवाज उस व्यक्ति ने भी सुनी जिसे रुरु ने बचाया था। उस व्यक्ति को रुरु का निवास स्थान मालूम था। बिना एक क्षण गँवाये वह दौड़ता हुआ राजा के दरबार में पहुँचा। फिर हाँफते हुए उसने रुरु का सारा भेद राजा के सामने उगल डाला। राजा और उसके सिपाही उस व्यक्ति के साथ तत्काल उस वन में पहुँचे और रुरु के निवास-स्थल को चारों ओर से घेर लिया। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा जब उन्होंने रुरु को रानी की बतायी छवि के बिल्कुल अनुरुप पाया। राजा ने तब धनुष साधा और रुरु उसके ठीक निशाने पर था। चारों तरफ से घिरे रुरु ने तब राजा से मनुष्य की भाषा में यह कहा "राजन्! तुम मुझे मार डालो मगर उससे पहले यह बताओ कि तुम्हें मेरा ठिकाना कैसे मालूम हुआ?" उत्तर में राजा ने अपने तीर को घुमाते हुए उस व्यक्ति के सामने रोक दिया जिसकी जान रुरु ने बचायी थी। रुरु के मुख से तभी यह वाक्य हठात् फूट पड़ा

"निकाल लो लकड़ी के कुन्दे को पानी से न निकालना कभी एक अकृतज्ञ इंसान को।"

राजा ने जब रुरु से उसके संवाद का आशय पूछा तो रुरु ने राजा को उस व्यक्ति के डूबने और बचाये जाने की पूरी कहानी कह सुनायी। रुरु की करुणा ने राजा की करुणा को भी जगा दिया था। उस व्यक्ति की कृतघ्नता पर उसे रोष भी आया। राजा ने उसी तीर से जब उस व्यक्ति का संहार करना चाहा तो करुणावतार मृग ने उस व्यक्ति का वध न करने की प्रार्थना की। रुरु की विशिष्टताओं से प्रभावित राजा ने उसे अपने साथ अपने राज्य में आने का निमंत्रण दिया। रुरु ने राजा के अनुग्रह का नहीं ठुकराया और कुछ दिनों तक वह राजा के आतिथ्य को स्वीकार कर पुन: अपने निवास-स्थल को लौट गया।

कुटिलता रहित कर्मों अर्थात शुद्ध भाव से जिन-जिन पदार्थों से हवन भौतिक यज्ञ किया जाता है उन सभी पदार्थों को एकत्रित करके स्वयं के पास भारी मात्रा में संग्रहित करें और निरंतर इस भौतिक यज्ञ को करके इसका निरंतर विस्तार किजीये। क्योकि यज्ञ यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिय है जिससे हमारा भुमंडल पूर्णतः शुद्ध निर्मल और पवित्र होता है। इसका किसी भी परिस्थिति में त्याग मत किजीये जो गुरु है उनके लिए परमेश्वर उपदेश कर रहा है। आगे मंत्र कहता है कि तुम्हारे यज्ञमान भी कभी इस यज्ञ के अनुष्ठान का त्याग कभी ना करें ऐसा करने से वह जो सब जो गंदगी करते है जिससे हमारा वातवरण अपवित्र शुद्ध और प्रदुषित होता है वह नहीं होगा। यज्ञ को पांच प्रकार का बताया गया है। जिसको यहाँ पाच प्रकार कि चेष्टाये कहा जा रहा है।

कल्याणकटक बस्ती में एक भैरव नामक व्याध (शिकारी) रहता था। वह एक दिन मृग को ढूढ़ता-ढूंढ़ता विंध्याचल की ओर गया, फिर मारे हुए मृग को ले कर जाते हुए उसने एक भयंकर शूकर को देखा। तब उस व्याध ने मृग को भूमि पर रख कर शूकर को बाण से मारा। शूकर ने भी भयंकर गर्जना करके उस व्याध के मुष्कदेश में ऐसी टक्कर मारी कि वह कटे पेड़ के समान जमीन पर गिर पड़ा। क्योंकि जल, अग्नि, विष, शस्त्र, भूख, रोग और पहाड़ से गिरना इसमें से किसी-न-किसी बहाने को पा कर प्राणी प्राणों से छूटता है। उन दोनों के पैरों की रगड़ से एक सर्प भी मर गया। इसके पीछे आहार को चाहने वाले दीर्घराव नामक गीदड़ ने घूमते-घूमते उन मृग, व्याध, सर्प और शूकर को मरे पड़े हुए देखा और विचारा कि आहा, आज तो मेरे लिए बड़ा भोजन तैयार है। अथवा, जैसे देहधारियों को अनायास दु: ख मिलते हैं वैसे ही सुख भी मिलते हैं, परंतु इसमें प्रारब्ध बलवान है, ऐसा मानता हूँ। जो कुछ हो, इनके माँसों से मेरे तीन महीने तो सुख से कटेंगे। एक महीने को मनुष्य होगा, दो महीने को हरिण और शूकर होंगे और एक दिन को सर्प होगा और आज धनुष की डोरी चाबनी चाहिये। फिर पहले भूख में यह स्वादरहित, धनुष में लगा हुआ तांत का बंधन खाउँ। यह कह कर वैसा करने पर तांत के बंधन के टूटते ही उछटे हुए धनुष से हृदय फट कर वह दीर्घराव मर गया। इसलिए कहा गया है, ज्ञान संचय नित्य करना चाहिये।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा, यस्तु क्रियावान पुरुषः स विद्वान्। सुचिन्तितं चौषधमातुराणां, न नाममात्रेण करोत्यरोगम्॥

शास्त्र पढ़ कर भी मूर्ख होते हैं, परंतु जो क्रिया में चतुर हैं, वहीं सच्चा पण्डित है, जैसे अच्छे प्रकार से निर्णय की हुई औषधि भी रोगियों को केवल नाममात्र से अच्छा नहीं कर देती है। शास्त्र की विधि, पराक्रम से डरे हुए मनुष्य को कुछ गुण नहीं करती है, जैसे इस संसार में हाथ पर धरा हुआ भी दीपक अंधे को वस्तु नहीं दिखा सकती है। इस शेष दशा में शांति करनी चाहिए और इसे भी अधिक क्लेश तुमको नहीं मानना चाहिये। क्योंकि राजा, कुल की वधु, ब्राह्मण, मंत्री, स्तन, दंत, केश, नख और मनुष्य ये अपने स्थान से अलग हुए शोभा नहीं देते हैं। यह जान कर बुद्धिमान को अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहिये। यह कायर पुरुष का वचन है।

स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति: सिंहा: सत्पुरुषा गजा:। तत्रैव निधनं यान्ति काका: कापुरुषा मृगा:॥

क्योंकि, सिंह, सज्जन पुरुष और हाथी ये स्थान को छोड़ कर जाते हैं और काक, कायर पुरुष और मृग ये वहाँ ही नाश होते हैं। वीर और उद्योगी पुरुषों को देश और विदेश क्या है? अर्थात जैसा देश वैसा ही विदेश। वे तो जिस देश

में रहते हैं, उसी को अपने बाहु के प्रताप से जीत लेते हैं। जैसे सिंह वन में दांत, नख, पूँछ के प्रहार करता हुआ फिरता है, उसी वन में (अपने बल से) मारे हुए हाथियों के रुधिर से अपने प्यास बुझाता है और जैसे मैण्डक कूप के पास पानी के गड्ढ़े में और पक्षी भरे हुए सरोवर को आते हैं, वैसे ही सब संपत्तियाँ अपने आप उद्योगी पुरुष के पास आती हैं।

सुखमापतितं सेव्यं दु: खमापतितं तथा। चक्रवत् परिवर्तन्ते दु: खानि च सुखानि च॥

आए हुए सुख और दु: ख को भोगना चाहिये। क्योंकि सुख और दु: ख पहिये की तरह घुमते हैं (यानि सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आता जाता है।) और दूसरे-उत्साही तथा आलस्यहीन, कार्य की रीति को जानने वाला, द्यूतक्रीड़ा आदि व्यसन से रहित, शूर, उपकार को मानने वाला और पक्की मित्रता वाला ऐसे पुरुष के पास रहने के लिए लक्ष्मी आप ही जाती है।

21-कनफ्यूशियस के शिष्य चीनी विद्वान के शब्द।

सूरत नगर में एक कहवाघर था, जहाँ अनेकानेक यात्री और विदेशी दुनियाभर से आते थे और विचारों का आदान-प्रदान करते थे। एक दिन वहाँ फारस का एक विद्वान आया। पूरी ज़िन्दगी 'प्रथम कारण' के बारे में चर्चा करते-करते उसका दिमाग ही चल गया था। उसने यह सोचना शुरू कर दिया था कि सृष्टि को नियंत्रण में रखने वाली कोई उच्च सत्ता नहीं है। इस व्यक्ति के साथ एक अफ्रीकी गुलाम भी था, जिससे उसने पूछा-बताओ, क्या तुम्हारे ख्याल में भगवान है? गुलाम ने अपनी कमरबंद में से किसी देवता की लकड़ी की मूर्ति निकाली और बोला-यही है मेरा भगवान, जिसने ज़िन्दगी भर मेरी रक्षा की है। गुलाम का जवाब सुनकर सभी चकरा गए. उनमें से एक ब्राह्मण था। वह गुलाम की ओर घूमा और बोला-ब्रह्म ही सच्चा भगवान है। एक यहूदी भी वहाँ बैठा था। उसका दावा था-इस्राइल वासियों का भगवान ही सच्चा भगवान है, वे ही उसकी चुनी हुई प्रजा हैं। एक कैथोलिक ने दावा किया-भगवान तक रोम के कैथोलिक चर्च द्वारा ही पहुंचा जा सकता है। लेकिन तभी एक प्रोटेस्टेंट पादरी जो वहाँ मौजूद था, बोल उठा-केवल गॉस्पेल के अनुसार प्रभु की सेवा करने वाले प्रोटेस्टेंट ही बचेंगे। कहवाघर में बैठे एक तुर्क ने कहा-सच्चा धर्म मुहम्मद और उमर के अनुयायियों का ही है, अली के अनुयायियों का नहीं। हर कोई दलीलें रख रहा था और चिल्ला रहा था। केवल एक चीनी ही, जो कि कनफ्यूशियस का शिष्य था, कहवाघर के एक कोने में चुपचाप बैठा था और विवाद में हिस्सा नहीं ले रहा था। तब सभी लोग उस चीनी की ओर घूमे और उन्होंने उससे अपने विचार प्रकट करने को कहा।

कनफ्यूशियस के शिष्य उस चीनी ने अपनी आंखें बंद कर लीं और क्षण भर सोचता रहा। तब उसने आंखें खोलीं, अपने वस्त्र की चौड़ी आस्तीनों में से हाथ बाहर निकाले, हाथ को सीने पर बांधा और बड़े शांत स्वर में कहने लगा-मित्रगण, मुझे लगता है, लोगों का अहंकार ही धर्म के मामले में एक-दूसरे से सहमत नहीं होने देता। मैं आपको एक कहानी सुनाना चाहता हूं, जिससे ये बात साफ हो जाएगी। मैं यहाँ चीन से एक अंग्रेज़ी स्टीमर से आया। यह स्टीमर दुनिया की सैर को निकला था। ताजा पानी लेने के लिए हम रुके और सुमात्रा द्वीप के पूर्वी किनारे पर उतरे, दोपहर का वक्त था। हममें से कुछ लोग समंदर के किनारे ही नारियल के कुंजों में जा बैठे। निकट ही एक गांव था। हम

सब लोगों की राष्ट्रीयता भिन्न-भिन्न थी। जब हम बैठे हुए थे, तो एक अंधा आदमी हमारे पास आया। बाद में हमें मालूम हुआ कि सूर्य की ओर लगातार देखते रहने के कारण उसकी आंखें चली गई थीं-वह जानना चाहता था कि सूर्य आखिर है क्या, ताकि वह उसके प्रकाश को पकड़ सके. यह जानने के लिए ही वह सूर्य की ओर देखता रहा। परिणाम यही हुआ कि सूर्य की रोशनी से उसकी आंखें दुखने लगीं और वह अंधा हो गया। तब उसने अपने आपसे कहा-सूर्य का प्रकाश द्रव नहीं है, क्योंकि यदि वह द्रव होता, तो इसे एक पात्र से दूसरे पात्र में उड़ेला जा सकता था, तब यह पानी और हवा की तरह चलता। यह आग भी नहीं है, क्योंकि अगर यह आग होता, तो पल भर में बुझ सकता था। यह कोई आत्मा भी नहीं है, क्योंकि आंखें इसे देख सकती हैं। यह कोई पदार्थ भी नहीं है, क्योंकि इसे हिलाया नहीं जा सकता। अत, क्योंकि सूर्य का प्रकाश न द्रव है, न अग्नि है, न आत्मा है और न ही कोई पदार्थ, यह कुछ भी नहीं है। यही था उसका तर्क और हमेशा सूर्य की ओर देखते रहने और उसके बारे में सोचते रहने के कारण वह अपनी आंखें और बुद्धि दोनों ही खो बैठा और जब वह पूरी तरह अंधा हो गया, उसे पूरा विश्वास हो गया कि सूर्य का अस्तित्व ही नहीं है। इस अंधे आदमी के साथ एक गुलाम भी था, उसने अपने स्वामी को नारियल कुंज में बैठाया और जमीन से एक नारियल उठाकर उसका दिया बनाने लगा। उसने नारियल के रेशों से एक बत्ती बनाई, गोले में से थोड़ा तेल निचोड़कर खोल में डाला और बत्ती को उसमें भिगो लिया। जब गुलाम अपने काम में मस्त था, अंधे आदमी ने सांस भरी और उससे बोला-तो दास भाई, क्या मेरी बात सही नहीं थी, जब मैंने तुम्हें बताया था कि सूर्य का अस्तित्व ही नहीं है। क्या तुम्हें दिखाई नहीं देता कि अँधेरा कितना गहरा है? और लोग फिर भी कहते हैं कि सूर्य है। अगर है, तो फिर यह क्या है? मुझे मालूम नहीं है कि सूर्य क्या है-गुलाम ने कहा-मेरा उससे क्या लेना-देना! पर मैं यह जानता हूँ कि प्रकाश क्या है। यह देखिए, मैंने रात्रि के लिए एक दीया बनाया है, जिसकी मदद से मैं आपको देख सकता हूं।

तब गुलाम ने दिया उठाया और बोला-यह है मेरा सूर्य। एक लंगड़ा आदमी, जो अपनी बैसाखियाँ लिए पास ही बैठा था, यह सुनकर हंस पड़ा-लगता है तुम सारी उमर नेत्रहीन ही रहे-उसने अंधे आदमी से कहा-और कभी नहीं जान पाए कि सूर्य क्या है। मैं तुम्हें बताता हूँ कि यह क्या है। सूर्य आग का गोला है, जो हर रोज समंदर में से निकलता है और शाम के समय हर रोज हमारे ही द्वीप की पहाड़ियों के पीछे छुप जाता है। अगर तुम्हारी नजर होती तो तुमने भी देख लिया होता। एक मछुआरा जो यह बातचीत सुन रहा था, बोला-बड़ी साफ बात है कि तुम अपने द्वीप से आगे कहीं नहीं गए हो। अगर तुम लंगड़े न होते और अगर तुम भी मेरी तरह नौका में कहीं दूर गए होते, तो तुम्हें पता चलता कि सूर्य हमारे द्वीप की पहाड़ियों के पीछे अस्त नहीं होता। वह जैसे हर रोज समंदर में से उदय होता है, वैसे ही हर रात समंदर में ही डूब जाता है।

तब एक भारतीय, जो हमारी ही पार्टी का था, यों बोल उठा-मुझे हैरानी हो रही है कि एक अक्लमंद आदमी ऐसी बेवकूफी की बातें कर रहा है। आग का कोई गोला पानी में डूबने पर बुझने से कैसे बच सकता है? सूर्य आग का गोला नहीं है। वह तो देव नाम की दैवीय शक्ति है और वह अपने रथ में बैठकर स्वर्ण-पर्वत मेरू के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। कभी-कभी राहु और केतु नाम के राक्षसी नाग उस पर हमला कर देते हैं और उसे निगल जाते हैं, तब पृथ्वी पर अंधकार छा जाता है। तब हमारे पुजारी प्रार्थना करते हैं, ताकि देव का छुटकारा हो सके. तब यह छोड़ दिया जाता है। केवल आप जैसे अज्ञानी ही ऐसा सोच सकते हैं कि सूर्य केवल उनके देश के लिए ही चमकता है। तब वहाँ उपस्थित एक मिस्री जहाज का मालिक बोलने लगा-नहीं, तुम भी ग़लत कह रहे हो। सूर्य दैवीय शक्ति नहीं है और भारत और स्वर्ण-पर्वत के चारों ओर ही नहीं घूमता। मैं कृष्ण सागर पर यात्राएँ कर चुका हूं। अरब के तट के साथ-साथ भी गया हूं। मड-गास्कर और फिलिपींस तक हो आया हूं। सूर्य पूरी धरती को आलोकित करता है, केवल भारत को ही नहीं, यह केवल एक ही पर्वत के चक्कर नहीं काटता रहता, जबकि दूर पूरब में उगता

है-जापान के द्वीपों से भी परे और दूर पश्चिम में डूब जाता है-इंग्लैंड के द्वीपों से भी आगे कहीं, इसलिए जापानी लोग अपने देश को 'निप्पन' यानी 'उगते सूरज का देश' कहते हैं। मुझे अच्छी तरह मालूम है, क्योंकि मैंने काफी दुनिया देखी है।

वह बोलता चला गया होता अगर हमारे जहाज के अंग्रेज मल्लाह ने उसे रोक न दिया होता। वह कहने लगा-दुनिया में और कोई ऐसा देश नहीं है, जहाँ के लोग सूर्य की गतिविधियों के बारे में इतना जानते हैं, जितना इंग्लैंड के लोग। इंग्लैंड में हर कोई जानता है कि सूर्य न तो कहीं उदय होता है, न ही अस्त। वह हर समय पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। यह सही बात है, क्योंकि जहाँ कहीं भी हम गए, सुबह सूर्य निकलता और रात को डूबता दिखाई दिया-यहाँ की ही तरह। तब एक अंग्रेज ने एक छड़ी ली और रेत पर वृत्त खींचकर समझाने का प्रयास किया कि कैसे सूर्य आसमान में चलता रहता है और पृथ्वी का चक्कर लगाता रहता है। पर वह ठीक तरह समझा नहीं पाया और फिर जहाज के चालक की ओर इशारा करते हुए बोला-वह ठीक तरह समझा सकता है। चालक, जो काफी समझदार था, चुपचाप सुनता रहा था। अब सब लोग उसकी ओर मुड़ गए और वह बोला-आप सब लोग एक-दूसरे को बहका रहे हैं। आप सब धोखे में हैं। सूर्य पृथ्वी के चारों ओर नहीं, पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है और चलते-चलते अपने चारों ओर भी घूमती है और चौबीस घंटों में सूर्य के आगे से पूरी घूम जाती है-केवल जापान, फिलीपींस, सुमात्रा ही नहीं, अफ्रीका, यूरोप और अमेरिका तथा अन्य प्रदेश भी साथ घूमते हैं, सूर्य किसी एक पर्वत के लिए नहीं चमकता, न किसी एक द्वीप या सागर या केवल हमारी पृथ्वी के लिए ही। यह अन्य ग्रहों के लिए भी चमकता है। आस्था के मामलों में भी-कनफ्यूशियस के शिष्य चीनी ने कहा-अहंकार ही है, जो लोगों के मन में दुराव पैदा करता है। जो बात सूर्य के सम्बंध में निकलती है, वही भगवान के मामले में सही है। हर आदमी अपना खुद का एक विशिष्ट भगवान बनाए रखना चाहता है-या ज्यादा से ज्यादा अपने देश के लिए हर राष्ट्र उस शक्ति को उस मंदिर में बंद कर लेना चाहता है। क्या उस मंदिर से किसी भी अन्य मंदिर की तुलना की जा सकती है, जिसकी रचना भगवान ने खुद सभी धर्मों और आस्थाओं के मानने वालों को एक सूत्र में बांधने के लिए की है?

सभी मानवीय मंदिरों का निर्माण इसी मंदिर के अनुरूप हुआ है, जो कि भगवान की अपनी दुनिया है। हर मंदिर के सिंहद्वार होते हैं, गुंबज होते हैं, दीप होते हैं, मूर्तियाँ और चित्र होते हैं, भित्ति-लिपियाँ होती हैं, विधि-विधान-ग्रंथ होते हैं, प्रार्थनाएँ होती हैं, वेदियाँ होती हैं और पुजारी होते हैं। पर कौन-सा ऐसा मंदिर है, जिसमें समंदर जैसा फव्वारा है, आकाश जैसा गुंबज है, सूर्य-चंद्र और तारों जैसे दीप हैं और जीते-जागते, प्रेम करते मनुष्यों जैसी मूर्तियाँ हैं? भगवान द्वारा प्रदत्त खुशियों से बढ़कर उसकी अच्छाईयों के ग्रंथ और कहाँ हैं, जिन्हें आसानी से पढ़ा और समझा जा सके? मनुष्य के हृदय से बड़ी कौन-सी विधान-पुस्तक है? आत्म-बलिदान से बड़ी बलि क्या है? और अच्छे आदमी के हृदय से बड़ी कौन-सी वेदी है, जिस पर स्वयं भगवान भेंट स्वीकार करते हैं? जितना ऊंचा आदमी का विचार भगवान के बारे में होगा, उतना ही बेहतर वह उसे समझ सकेगा और जितनी अच्छी तरह वह उसे समझेगा, उतना ही उसके निकट वह होता जाएगा।

इसीलिए जो आदमी सूर्य की रोशनी को पूरे विश्व में फैला देखता है, उसे अंधविश्वासी को दोष नहीं देना चाहिए, न ही उससे घृणा करनी चाहिए कि वह अपनी मूर्ति में उस रोशनी की एक किरण देखता है। उसे नास्तिक से भी नफरत नहीं करनी चाहिए कि वह अंधा है और सूर्य को नहीं देख सकता। ये थे कनफ्यूशियस के शिष्य चीनी विद्वान के शब्द। कहवाघर में बैठे सभी लोग शांत और खामोश थे। फिर वे धर्म को लेकर नहीं झगड़े। न ही उन्होंने विवाद ही किया।

22-तीन भिक्षु

यह लेव तॉल्स्तॉय की बहुत प्रसिद्द कहानी है। रूस के ऑर्थोडॉक्स चर्च के आर्चबिशप को यह पता चला कि उसके नियमित प्रवचन में भाग लेने वाले बहुत से लोग एक झील के पास जाने लगे हैं। उस झील के बीच में छोटा-सा एक टापू था जहाँ एक पेड़ के नीचे तीन बूढ़े रहते थे। गाँव वालों का यह कहना था कि वे तीनों संत हैं। आर्चबिशप को यह बात बहुत नागवार गुज़री क्योंकि ईसाई धर्म में संत केवल उन्हें ही माना जाता है जिन्हें वेटिकन द्वारा विधिवत संत घोषित किया गया हो। आर्चबिशप क्रोधित हो गया–"वे तीनों संत कैसे हो सकते हैं? मैंने सालों से किसी को भी संतत्व की पदवी के लिए अनुशंसित नहीं किया है! वे कौन हैं और कहाँ से आये हैं?"। लेकिन आम लोग उन तीनों के दर्शनों के लिए जाते रहे और चर्च में आनेवालों की तादाद कम होती गयी। अंततः आर्चबिशप ने यह तय किया कि वह उन तीनों को देखने के लिए जाएगा। वह नाव में बैठकर टापू की ओर गया। वे तीनों वहाँ मिल गए. वे बेहद साधारण अनपढ़ और निष्कपट देहातियों जैसे थे। दूसरी ओर, आर्चबिशप बहुत शक्तिशाली व्यक्ति था। रूस के ज़ार के बाद उस क्षेत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण आदमी था वह। उन तीनों को देखकर वह खीझ उठा–"तुमें संत किसने बनाया?"–उसने पूछा। वे तीनों एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। उनमें से एक ने कहा–"किसी ने नहीं। हम लोग खुद को संत नहीं मानते। हम तो केवल साधारण मनुष्य हैं"।

"तो फिर तुम लोगों को देखने के लिए इतने सारे लोग क्यों आ रहे हैं?" वे बोले–"यह तो आप उन्हीं से पूछिए." "क्या तुम लोगों को चर्च की आधिकारिक प्रार्थना आती है?"–आर्चबिशप ने पूछा। "नहीं। हम तो अनपढ़ हैं और वह प्रार्थना बहुत लंबी है। हम उसे याद नहीं कर सके." "तो फिर तुम लोग कौन-सी प्रार्थना पढ़ते हो?" उन तीनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। "तुम बता दो"–एक ने कहा। "तुम ही बता दो ना"–वे आपस में कहते रहे। आर्चबिशप यह सब देखसुनकर अपना आप खो बैठा। "इन लोगों को प्रार्थना करना भी नहीं आता! कैसे संत हैं ये?"–उसने मन में सोचा। वह बोला–"तुम लोगों में से कोई भी बता सकता है। जल्दी बताओ!" वे बोले–"दरअसल हम आपके सामने बहुत ही साधारण व्यक्ति हैं। हम लोगों ने खुद ही एक प्रार्थना बनाई है पर हमें यह पता नहीं था कि इस प्रार्थना को चर्च की मंजूरी मिलना ज़रूरी है। हमारी प्रार्थना बहुत साधारण है। हमें माफ़ कर दीजिये कि हम आपकी मंजूरी नहीं ले पाए. हम इतने संकोची हैं कि हम आ ही न सके." "हमारी प्रार्थना है–ईश्वर तीन है और हम भी तीन हैं, इसलिए हम प्रार्थना करते हैं–'तुम तीन हो और हम तीन हैं, हम पर दया करो'–यही हमारी प्रार्थना है।" आर्चबिशप बहुत क्रोधित हो गया–"ये प्रार्थना नहीं है! मैंने ऐसी प्रार्थना कभी नहीं सुनी!"–वह ज़ोरों से हंसने लगा। वे बोले–"आप हमें सच्ची प्रार्थना करना सिखा दें। हम तो अब तक यही समझते थे कि हमारी प्रार्थना में कोई कमी नहीं है। 'ईश्वर तीन है और हम तीन हैं' और भला क्या चाहिए? बस ईश्वर की कृपा ही तो चाहिए? उनके अनुरोध पर आर्चबिशप ने उन्हें चर्च की आधिकारिक प्रार्थना बताई और उसे पढ़ने का तरीका भी बताया। प्रार्थना काफी लंबी थी और उसके ख़तम होते-होते उनमें से एक ने कहा–" हम शुरू का भाग भूल गए हैं"। फिर आर्चबिशप ने उन्हें दोबारा बताया। फिर वे आख़िरी का भाग भूल गए... आर्चबिशप बहुत झुंझला गया और बोला–" तुम लोग किस तरह के आदमी हो? तुम एक छोटी-सी प्रार्थना भी याद नहीं कर सकते? "वे बोले–" माफ़ करें लेकिन हम लोग अनपढ़ हैं और हमारे लिए इसे याद करना थोडा मुश्किल है, इसमें बहुत बड़े-बड़े शब्द हैं... कृपया थोड़ा धीरज रखें। यदि आप इसे दो-तीन बार सुना देंगे तो

शायद हम इसे याद कर लेंगे"। आर्चबिशप ने उन्हें तीन बार प्रार्थना सुना दी। वे बोले–" ठीक है, अबसे हम यही प्रार्थना करेंगे, हांलाकि हो सकता है कि हम इसका कुछ हिस्सा कहना भूल जाएँ पर हम पूरी कोशिश करेंगे"। आर्चबिशप संतुष्ट था कि अब वह लोगों को जाकर बताएगा कि उसका पाला कैसे बेवकूफों से पड़ा था। उसने मन में सोचा–'अब लोगों को जाकर बताऊँगा कि वे जिन्हें संत कहते हैं उन्हें तो धर्म का क-ख-ग भी नहीं पता और वे ऐसे जाहिलों के दर्शन करने जाते हैं!'। यही सोचते हुए वह नाव में जाकर बैठ गया। नाव चलने लगी और वह अभी झील में आधे रास्ते पर ही था कि उसे पीछे से उन तीनों की पुकार सुनाई दी। उसने मुड़कर देखा, वे तीनों पानी पर भागते हुए नाव की तरफ आ रहे थे! उसे अपनी आँखों पर यकीन नहीं हुआ! वे लोग पानी पर भागते हुए आये और नाव के पास पानी में खड़े हुए बोले–" माफ़ कीजिये, हमने आपको कष्ट दिया, कृपया चर्च की प्रार्थना एक बार और दोहरा दें, हम कुछ भूल गए हैं"। आर्चबिशप ने कहा–" तुम लोग अपनी प्रार्थना ही पढो। मैंने तुम्हें जो कुछ भी बताया उसपर ध्यान मत दो। मुझे माफ़ कर दो, मैं बहुत दंभी हूँ। मैं तुम्हारी सरलता और पवित्रता को छू भी नहीं सकता। जाओ, लौट जाओ. "लेकिन वे अड़े रहे–" नहीं, ऐसा मत कहिये, आप इतनी दूर से हमारे लिए आये... बस एक बार और दोहरा दें, हम लोग भूलने लगे हैं पर इस बार कोशिश करेंगे कि इसे अच्छे से याद कर लें। "लेकिन आर्चबिशप ने कहा–" नहीं भाइयों, मैं खुद सारी ज़िंदगी अपनी प्रार्थना को पढ़ता रहा पर ईश्वर ने उसे कभी नहीं सुना। हम तो बाइबिल में ही यह पढ़ते थे कि ईसा मसीह पानी पर चल सकते थे पर हम भी उसपर शंका करते रहे। आज तुम्हें पानी पर चलते देखकर मुझे अब ईसा मसीह पर विश्वास हो चला है। तुम लोग लौट जाओ. तुम्हारी प्रार्थना संपूर्ण है। तुम्हें कुछ भी सीखने की ज़रुरत नहीं है"।

23-कहानी माधो चमार की

माधो नामी एक चमार जिसके न घर था, न धरती, अपनी स्त्री और बच्चों सहित एक झोंपड़े में रहकर मेहनत मजदूरी द्वारा पेट पालता था। मजूरी कम थी, अन्न महंगा था। जो कमाता था, खा जाता था। सारा घर एक ही कम्बल ओ़कर जाड़ों के दिन काटता था और वह कम्बल भी फटकर तारतार रह गया था। पूरे एक वर्ष से वह इस विचार में लगा हुआ था कि दूसरा वस्त्र मोल ले। पेट मारमारकर उसने तीन रुपये जमा किए थे और पांच रुपये पास के गांव वालों पर आते थे। एक दिन उसने यह विचारा कि पांच रुपये गांव वालों से उगाहकर वस्त्र ले आऊं। वह घर से चला, गांव में पहुंचकर वह पहले एक किसान के घर गया। किसान तो घर में नहीं था, उसकी स्त्री ने कहा कि इस समय रुपया मौजूद नहीं, फिर दे दूंगी। फिर वह दूसरे के घर पहुंचा, वहाँ से भी रुपया न मिला। फिर वह बनिये की दुकान पर जाकर वस्त्र उधार मांगने लगा। बनिया बोला—हम ऐसे कंगालों को उधार नहीं देते। कौन पीछेपीछे फिरे? जाओ, अपनी राह लो। वह निराश होकर घर को लौट पड़ा। राह में सोचने लगा—कितने अचरज की बात है कि मैं सारे दिन काम करता हूं, उस पर भी पेट नहीं भरता। चलते समय स्त्री ने कहा था कि वस्त्र अवश्य लाना। अब क्या करुं, कोई उधार भी तो नहीं देता। किसानों ने कह दिया, अभी हाथ खाली है, फिर ले लेना। तुम्हारा तो हाथ खाली है, पर मेरा काम कैसे चले? तुम्हारे पास घर, पशु, सबकुछ है, मेरे पास तो यह शरीर ही शरीर है। तुम्हारे पास अनाज के कोठे भरे पड़े हैं, मुझे एकएक दाना मोल लेना पड़ता है। सात दिन में तीन रुपये तो केवल रोटी में खर्च हो जाते हैं। क्या करुं, कहाँ जाऊं? हे भगवान्! सोचता हुआ मन्दिर के पास पहुंचकर देखता क्या है कि धरती पर कोई श्वेत वस्तु पड़ी है। अँधेरा हो गया, साफ न दिखाई देता है। माधो ने समझा कि किसी ने इसके वस्त्र छीन लिये हैं, मुझसे क्या मतलब? ऐसा न हो, इस झगड़े में पड़ने से मुझ पर कोई आपत्ति खड़ी हो जाए, चल दो। थोड़ी दूर गया था कि उसके

मन में पछतावा हुआ। मैं कितना निर्दय हूं। कहीं यह बेचारा भूखों न मर रहा हो। कितने शर्म की बात है कि मैं उसे इस दशा में छोड़, चला जाता हूं। वह लौट पड़ा और उस आदमी के पास जाकर खड़ा हो गया।

पास पहुंचकर माधो ने देखा कि वह मनुष्य भलाचंगा जवान है। केवल शीत से दुःखी हो रहा है। उस मनुष्य को आँख भरकर देखना था कि माधो को उस पर दया आ गई. अपना कोट उतारकर बोला—यह समय बातें करने का नहीं, यह कोट पहन लो और मेरे संग चलो। मनुष्य का शरीर स्वच्छ, मुख दयालु, हाथपांव सुडौल थे। वह प्रसन्न बदन था। माधो ने उसे कोट पहना दिया और बोला—मित्र, अब चलो, बातें पीछे होती रहेंगी। मनुष्य ने प्रेमभाव से माधो को देखा और कुछ न बोला।

माधो—तुम बोलते क्यों नहीं? यहाँ ठंड है, घर चलो। यदि तुम चल नहीं सकते, तो यह लो लकड़ी, इसके सहारे चलो। मनुष्य माधो के पीछेपीछे हो लिया। माधो—तुम कहाँ रहते हो? मनुष्य—मैं यहाँ का रहने वाला नहीं हूं। माधो—मैंने भी यही समझा था, क्योंकि यहाँ तो मैं सबको जानता हूं। तुम मन्दिर के पास कैसे आ गए? मनुष्य—यह मैं नहीं बतला सकता। माधो—क्या तुमको किसी ने दुःख दिया है? मनुष्य—मुझे किसी ने दुःख नहीं दिया, अपने कर्मों का भोग है। परमात्मा ने मुझे दंड दिया है। माधो—निस्संदेह परमेश्वर सबका स्वामी है, परन्तु खाने को अन्न और रहने को घर तो चाहिए. तुम अब कहाँ जाना चाहते हो? मनुष्य—जहाँ ईश्वर ले जाए. माधो चकित हो गया। मनुष्य की बातचीत बड़ी प्रिय थी। वह ठग प्रतीत नहीं होता था, पर अपना पता कुछ नहीं बताता था। माधो ने सोचा, अवश्य इस पर कोई बड़ी विपत्ति पड़ी है। बोलो—भाई, घर चलकर ज़रा आराम करो, फिर देखा जायेगा। दोनों वहाँ से चल दिए. राह में माधो विचार करने लगा, मैं तो वस्त्र लेने आया था, यहाँ अपना भी दे बैठा। एक नंगा मनुष्य साथ है, क्या यह सब बातें देखकर मालती परसन्न होगी! कदापि नहीं, मगर चिन्ता ही क्या है? दया करना मनुष्य का परम धर्म है।

उधर माधो की स्त्री मालती उस दिन जल्दी-जल्दी लकड़ी काटकर पानी लायी, फिर भोजन बनाया, बच्चों को खिलाया, आप खाया, पति के लिए भोजन अलग रखकर कुरते में टांका लगाती हुई यह विचार करने लगी—ऐसा न हो, बनिया मेरे पति को ठग ले, वह बड़ा सीधा है, किसी से छल नहीं करता, बालक भी उसे फंसा सकता है। आठ रुपये बहुत होते हैं, इतने रुपये में तो अच्छे वस्त्र मिल सकते हैं। पिछली सर्दी किस कष्ट से कटी. जाते समय उसे देर हो गई थी, परन्तु क्या हुआ, अब तक उसे आ जाना चाहिए था।

इतने में आहट हुई. मालती बाहर आयी, देखा कि माधो है। उसके साथ नंगे सिर एक मनुष्य है। माधो का कोट उसके गले में पड़ा है। पति के हाथों में कोई गठरी नहीं है, वह शर्म से सिर झुकाए खड़ा है। यह देखकर मालती का मन निराशा से व्याकुल हो गया। उसने समझा, कोई ठग है, त्योरी चढ़ाकर खड़ी हो देखने लगी कि वह क्या करता है। माधो बोला—यदि भोजन तैयार हो तो ले आओ. मालती जलकर राख हो गई, कुछ न बोली। चुपचाप वहीं खड़ी रही। माधो ताड़ गया कि स्त्री क्रोधग्नि में जल रही है। माधो—क्या भोजन नहीं बनाया? मालती— (क्रोध से) हां, बनाया है, परन्तु तुम्हारे वास्ते नहीं, तुम तो वस्त्र मोल लेने गए थे? यह क्या किया, अपना कोट भी दूसरे को दे दिया? इस ठग को कहाँ से लाए? यहाँ कोई सदाबरत थोड़े ही चलता है। माधो—मालती, बसबस! बिना सोचेसमझे किसी को बुरा कहना उचित नहीं है। पहले पूछ तो लो कि यह कैसा। मालती—पहले यह बताओ कि रुपये कहाँ फेंके? माधो—यह लो अपने तीनों रुपये, गांव वालों ने कुछ नहीं दिया। मालती— (रुपये लेकर) मेरे पास संसार भर के नंगेलुच्चों के लिए भोजन नहीं है। माधो—फिर वही बात! पहले इससे पूछ तो लो, क्या कहता है। मालती—बसबस! पूछ चुकी। मैं तो विवाह ही करना नहीं चाहती थी, तुम तो घरखोऊ हो। माधो ने बहुतेरा समझाया वह एक न मानी। दस वर्ष के पुराने झगड़े याद करके बकवाद करने लगी, यहाँ तक कि क्रोध में आकर माधो की जाकेट फाड़ डाली और घर से बाहर जाने लगी। पर रास्ते में रुक गई और पति से बोली—अगर यह भलामानस होता तो नंगा न होता। भला तुम्हारी भेंट इससे कहाँ हुई? माधो—बस, यही तो मैं तुमको बतलाना चाहता हूं। यह गांव के बाहर मन्दिर के पास नंगा बैठा था।

भला विचार तो कर, यह ऋतु बाहर नंगा बैठने की है? दैवगति से मैं वहाँ जा पहुंचा, नहीं तो क्या जाने यह मरता या जीता। हम क्या जानते हैं कि इस पर क्या विपत्ति पड़ी है। मैं अपना कोट पहनाकर इसे यहाँ ले आया हूं। देख, क्रोध मत कर, क्रोध पाप का मूल है। एक दिन हम सबको यह संसार छोड़ना है। मालती कुछ कहना चाहती थी, पर मनुष्य को देखकर चुप हो गई. वह आंखें मूंदे, घुटनों पर हाथ रखे, मौन धारण किए स्थिर बैठा था। माधो—प्यारी! क्या तुममें ईश्वर का प्रेम नहीं? यह वचन सुन, मनुष्य को देखकर मालती का चित्त तुरन्त पिघल गया, झट से उठी और भोजन लाकर उसके सामने रख दिया और बोली—खाइए. मालती की यह दशा देखकर मनुष्य का मुखारविंद खिल गया और वह हंसा। भोजन कर लेने पर मालती बोली—तुम कहाँ से आये हो? मनुष्य—मैं यहाँ का रहने वाला नहीं।

मालती—तुम मन्दिर के पास किस प्रकार पहुंचे? मनुष्य—मैं कुछ नहीं बता सकता। मालती—क्या किसी ने तुम्हारा माल चुरा लिया? मनुष्य—किसी ने नहीं। परमेश्वर ने यह दंड दिया है! मालती—क्या तुम वहाँ नंगे बैठे थे? मनुष्य—हां, शीत के मारे ठिठुर रहा था। माधो ने देखकर दया की, कोट पहनाकर मुझे यहाँ ले आया, तुमने तरस खाकर मुझे भोजन खिला दिया। भगवान तुम दोनों का भला करे। मालती ने एक कुरता और दे दिया। रात को जब वह अपने पति के पास जाकर लेटी तो यह बातें करने लगी—मालती—सुनते हो? माधो—हां। मालती—अन्न तो चुक गया। कल भोजन कहाँ से करेंगे? शायद पड़ोसिन से मांगना पड़े। माधो—जिएंगे तो अन्न भी कहीं से मिल ही जाएगा। मालती—वह मनुष्य अच्छा आदमी मालूम होता है। अपना पता क्यों नहीं बतलाता? माधो—क्या जानूं। कोई कारण होगा। मालती—हम औरों को देते हैं, पर हमको कोई नहीं देता? माधो ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया, मुंह फेरकर सो गया।

प्रातःकाल हो गया। माधो जागा, बच्चे अभी सोये पड़े थे। मालती पड़ोसिन से अन्न मांगने गयी थी। अजनबी मनुष्य भूमि पर बैठा आकाश की ओर देख रहा था, परन्तु उसका मुख अब परसन्न था। माधो—मित्र, पेट रोटी मांगता है, शरीर वस्त्र; अतएव काम करना आवश्यक है। तुम कोई काम जानते हो? मनुष्य—मैं कोई काम नहीं जानता। माधो—अभ्यास बड़ी वस्तु है, मनुष्य यदि चाहे तो सबकुछ सीख सकता है।

मनुष्य—मैं सीखने को तैयार हूं, आप सिखा दीजिए. माधो—तुम्हारा नाम क्या है? मनुष्य—मैकू। माधो—भाई मैकू, यदि तुम अपना हाल सुनाना नहीं चाहते तो न सुनाओ, परन्तु कुछ काम अवश्य करो। जूते बनाना सीख लो और यहीं रहो। मैकू—बहुत अच्छा। अब माधो ने मैकू को सूत बांटना, उस पर मोम च़ाना, जूते सीना आदि काम सिखाना शुरू कर दिया। मैकू तीन दिन में ही ऐसे जूते बनाने लगा, मानो सदा से चमार का ही काम करता रहा हो। वह घर से बाहर नहीं निकलता था, बोलता भी बहुत कम था। अब तक वह केवल एक बार उस समय हंसा था जब मालती ने उसे भोजन कराया था, फिर वह कभी नहीं हंसा।

धीरे-धीरे एक वर्ष बीत गया। चारों ओर धूम मच गई कि माधो का नौकर मैकू जैसे पक्के मजबूत जूते बनाता है, दूसरा कोई नहीं बना सकता। माधो के पास बहुत काम आने लगा और उसकी आमदनी बहुत बढ़ गई। एक दिन माधो और मैकू बैठे काम कर रहे थे कि एक गाड़ी आयी, उसमें से एक धनी पुरुष उतरकर झोंपड़े के पास आया। मालती ने झट से किवाड़ खोल दिए; वह भीतर आ गया। माधो ने उठकर प्रणाम किया। उसने ऐसा सुन्दर पुरुष पहले कभी नहीं देखा था। वह स्वयं दुबला था, मैकू और भी दुबला और मालती तो हिड्डयों का पिंजरा थी। यह पुरुष तो किसी दूसरे ही लोक का वासी जान पड़ता था—लाल मुंह, चौड़ी छाती, तनी हुई गर्दन; मानो सारा शरीर लोहे में ला हुआ है।

पुरुष—तुममें उस्ताद कौन है? माधो—हुजूर, मैं। पुरुष— (चमड़ा दिखाकर) तुम यह चमड़ा देखते हो? माधो—हां, हुजूर। पुरुष—तुम जानते हो कि यह किस जात का चमड़ा है? माधो—महाराज, यह चमड़ा बहुत अच्छा है। पुरुष—अच्छा, मूर्ख कहीं का! तुमने शायद ऐसा चमड़ा कभी नहीं देखा होगा। यह जर्मन देश का चमड़ा है, इसका मोल बीस रुपये है। माधो— (भय से) भला महाराज, ऐसा चमड़ा मैं कहाँ से देख सकता था? पुरुष—अच्छा, तुम इसका बूट बना

सकते हो। माधो—हां, हुजूर, बना सकता हूं। पुरुष—हां, हुजूर की बात नहीं, समझ लो कि चमड़ा कैसा है और बनवाने वाला कौन है। यदि साल भर के अन्दर कोई टांका उखड़ गया अथवा जूते का रूप बिगड़ गया तो तुझे बंदीखाने जाना पड़ेगा, नहीं तो दस रुपये मजूरी मिलेगी। माधो ने मैकू की ओर कनखियों से देखकर धीरे से पूछा कि काम ले लूं? उसने कहा—हां, ले लो। माधो नाप लेने लगा। पुरुष—देखो, नाप ठीक लेना, बूट छोटा न पड़ जाए। (मैकू की तरफ देखकर) यह कौन है? माधो—मेरा कारीगर। पुरुष— (मैकू से) होहो, देखो बूट एक वर्ष चलना चाहिए। पूरा एक वर्ष, कम नहीं। मैकू का उस पुरुष की ओर ध्यान ही नहीं था। वह किसी और ही धुन में मस्त बैठा हंस रहा था। पुरुष— (क्रोध से) मूर्ख! बात सुनता है कि हंसता है। देखो, बूट बहुत जल्दी तैयार करना, देर न होने पाए. बाहर निकलते समय पुरुष का मस्तक द्वार से टकरा गया। माधो बोला सिर है कि लोहा, किवाड़ ही तोड़ डाला था। मालती बोली— धनवान ही बलवान होते हैं। इस पुरुष को यमराज भी हाथ नहीं लगा सकता और की तो बात ही क्या है? उस आदमी के जाने के बाद माधो ने मैकू से कहा—भाई, काम तो ले लिया है, कोई झगड़ा न खड़ा हो जाए. चमड़ा बहुमूल्य है और यह आदमी बड़ा क्रोधी है, भूल न होनी चाहिए. तुम्हारा हाथ साफ हो गया है, बूट काट तुम दो, -सी मैं दूंगा। मैकू बूट काटने लगा। मालती नित्य अपने पति को बूट काटते देखा करती थी। मैकू की काट देखकर चकरायी कि वह यह कर क्या रहा है। शायद बड़े आदमियों के बूट इसी प्रकार काटे जाते हों, यह विचार कर चुप रह गई. मैकू ने चमड़ा काटकर दोपहर तक स्लीपर तैयार कर लिये। माधो जब भोजन करके उठा तो देखता क्या है कि बूट की जगह स्पीलर बने रखे हैं। वह घबरा गया और मन में कहने लगा—इस मैकू को मेरे साथ रहते एक वर्ष हो गया, ऐसी भूल तो उसने कभी नहीं की। आज इसे क्या हो गया! उस पुरुष ने तो बूट बनाने को कहा था, इसने तो स्लीपर बना डाले। अब उसे क्या उत्तर दूंगा, ऐसा चमड़ा और कहाँ से मिल सकता है! (मैकू से) —मित्र, यह तुमने क्या किया? उसने तो बूट बनाने को कहा था न! अब मेरे सिर के बाल न बचेंगे। यह बातें हो ही रही थी कि द्वार पर एक आदमी ने आकर पुकारा। मालती ने किवाड़ खोल दिए. यह उस धनी आदमी का वही नौकर था, जो उसके साथ यहाँ आया था। उसने आते ही कहा—रामराम, तुमने बूट बना तो नहीं डाले?

माधो—हां, बना रहा हूं। नौकर—मेरे स्वामी का देहान्त हो गया, अब बूट बनाना व्यर्थ है। माधो—अरे! नौकर—वह तो घर तक भी पहुंचने नहीं पाये, गाड़ी में ही प्राण त्याग दिए. स्वामिनी ने कहा है कि उस चमड़े के स्लीपर बना दो। माधो— (प्रसन्न होकर) यह लो स्लीपर। आदमी स्लीपर लेकर चलता बना।

मैकू को माधो के साथ रहते-रहते छः वर्ष बीत गए. अब तक वह केवल दो बार हंसा था, नहीं तो चुपचाप बैठा अपना काम किए जाता था। माधो उस पर अति प्रसन्न था और डरता रहता था कि कहीं भाग न जाए. इस भय से फिर माधो ने उससे पताबता कुछ नहीं पूछा। एक दिन मालती चूल्हे में आग जल रही थी, बालक आंगन में खेल रहे थे, माधो और मैकू बैठे जूते बना रहे थे कि एक बालक ने आकर कहा—चाचा मैकू, देखो, वह स्त्री दो लड़कियाँ संग लिये आ रही हैं। मैकू ने देखा कि एक स्त्री चादर ओ़, छोटी-छोटी कन्याएँ संग लिए चली आ रही है। कन्याओं का एकसा रंगरूप है, भेद केवल यह है कि उनमें एक लंगड़ी है। बुढ़ी भीतर आयी तो माधो ने पूछा—माई, क्या काम है? उसने कहा—इन लड़कियों के जूते बना दो। माधो बोला—बहुत अच्छा। वह नाप लेने लगा तो देखा कि मैकू इन लड़कियों को इस प्रकार ताक रहा है, मानो पहले कहीं देखा है। बुढ़ी—इस लड़की का एक पांव लुंजा है, एक नाप इसका ले लो। बाकी तीन पैर एक जैसे हैं। ये लड़कियाँ जुड़वां है। माधो— (नाप लेकर) यह लंगड़ी कैसे हो गई, क्या जन्म से ही ऐसी है? बुढ़ि—नहीं, इसकी माता ने ही इसकी टांग कुचल दी थी। मालती—तो क्या तुम इनकी माता नहीं हो? बुढ़ि—नहीं, बहन, न इनकी माता हूं, न सम्बन्धी। ये मेरी कन्याएँ नहीं। मैंने इन्हें पाला है। मालती—इस पर भी तुम इन्हें बड़ा प्यार करती हो? बुढ़ि—प्यार क्यों न करुं, मैंने अपना दूध पिलापिलाकर इन्हें बड़ा किया है। मेरा अपना भी बालक था, परन्तु उसे परमात्मा ने ले लिया। मुझे इनके साथ उससे भी अधिक प्रेम है। मालती—तो ये किसकी कन्याएँ

हैं? बुढ़ि—छह वर्ष हुए कि एक सप्ताह के अंदर इनके माता-पिता का देहांत हो गया। पिता की मंगल के दिन मृत्यु हुई, माता की शुक्रवार को। पिता के मरने के तीन दिन पीछे ये पैदा हुईं। इनके मां-बाप मेरे पड़ोसी थे। इनका पिता लकड़हारा था। जंगल में लकड़ियाँ काटते-काटते वृक्ष के नीचे गीर कर मर गया। उसी सप्ताह में इनका जन्म हुआ। जन्म होते ही माता भी चल बसी. दूसरे दिन जब मैं उससे मिलने गयी तो देखा कि बेचारी मरी पड़ी है। मरते समय करवट लेते हुए इस कन्या की टांग उसके नीचे दब गई. गांव वालों ने उसका दाह-कर्म किया। इनके माता-पिता रंक थे, कौड़ी पास न थी। सब लोग सोचने लगे कि कन्याओं का कौन पाले। उस समय वहाँ मेरी गोद में दो महीने का बालक था। सबने यही कहा कि जब तक कोई प्रबन्ध न हो, तुम्हीं इनको पालो। मैंने इन्हें संभाल लिया। पहले-पहल मैं इस लंगड़ी को दूध नहीं पिलाया करती थी, कयोंकि मैं समझती थी कि यह मर जायेगी, पर फिर मुझे इस पर दया आ गई और इसे भी दूध पिलाने लगी। उस समय परमात्मा की कृपा से मेरी छाती में इतना दूध था कि तीनों बालकों को पिलाकर भी बह निकलता था। मेरा बालक मर गया, ये दोनों पल गईं। हमारी दशा पहले से अब बहुत अच्छी है। मेरा पति एक बड़े कारखाने में नौकर है। मैं इन्हें प्यार कैसे न करुं, ये तो मेरा जीवन आधार हैं।

यह कहकर बुढ़िया ने दोनों लड़कियों को छाती से लगा लिया। मालती—सत्य है, मनुष्य माता-पिता के बिना जी सकता है, परन्तु ईश्वर के बिना जीता नहीं रह सकता। ये बातें हो रही थीं कि सारा झोंपड़ा प्रकाशित हो गया। सबने देखा कि मैकू कोने में बैठा हंस रहा है।

बुढ़ि लड़कियों को लेकर बाहर चली गयी, तो मैकू ने उठकर माधो और मालती को प्रणाम किया और बोला—स्वामी, अब मैं विदा होता हूं। परमात्मा ने मुझ पर दया की। यदि कोई भूलचूक हुई हो तो क्षमा करना। माधो और मालती ने देखा कि मैकू का शरीर तेजोमय हो रहा है। माधो दंडवत करके बोला—मैं जान गया कि तुम साधारण मनुष्य नहीं। अब मैं तुम्हें नहीं रख सकता, न कुछ पूछ सकता हूं। केवल यह बता दो कि जब मैं तुम्हें अपने घर लाया था तो तुम बहुत उदास थे। जब मेरी स्त्री ने तुम्हें भोजन दिया तो तुम हंसे। जब वह धनी आदमी बूट बनवाने आया था तब तुम हंसे। आज लड़कियों के संग बुढ़ि आयी, तब तुम हंसे। यह क्या भेद है? तुम्हारे मुख पर इतना तेज क्यों है? मैकू—तेज का कारण तो यह है कि परमात्मा ने मुझ पर दया की, मैं अपने कर्मों का फल भोग चुका। ईश्वर ने तीन बातों को समझाने के लिए मुझे इस मृतलोक में भेजा था, तीनों बातें समझ गया। इसलिए मैं तीन बार हंसा। पहली बार जब तुम्हारी स्त्री ने मुझे भोजन दिया, दूसरी बार धनी पुरुष के आने पर, तीसरी बार आज बुढ़ि की बात सुनकर। माधो—परमेश्वर ने यह दंड तुम्हें क्यों दिया था? वे तीन बातें कौनसी हैं, मुझे भी बतलाओ?

मैकू—मैंने भगवान की आज्ञा न मानी थी, इसलिए यह दंड मिला था। मैं देवता हूं, एक समय भगवान ने मुझे एक स्त्री की जान लेने के लिए मृत्युलोक में भेजा। जाकर देखता हूँ कि स्त्री अति दुर्बल है और भूमि पर पड़ी है। पास तुरन्त की जन्मी दो जुड़वां लड़कियाँ रो रही हैं। मुझे यमराज का दूत जानकर वह बोली—मेरा पति वृक्ष के नीचे दबकर मर गया है। मेरे न बहन है, न माता, इन लड़कियों का कौन पालन करेगा? मेरी जान न निकाल, मुझे इन्हें पाल लेने दे। बालक माता-पिता बिना पल नहीं सकता। मुझे उसकी बातों पर दया आ गई. यमराज के पास लौट आकर मैंने निवेदन किया कि महाराज, मुझे स्त्री की बातें सुनकर दया आ गई. उसकी जुड़वां लड़कियों को पालनेवाला कोई नहीं था, इसलिए मैंने उसकी जान नहीं निकाली, क्योंकि बालक माता-पिता के बिना पल नहीं सकता। यमराज बोले—जाओ, अभी उसकी जान निकाल लो और जब तक ये तीन बातें न जान लोगे कि (1) मनुष्य में क्या रहता है, (2) मनुष्य को क्या नहीं मिलता, (3) मनुष्य का जीवन आधार क्या है, तब तक तुम स्वर्ग में न आने पाओगे। मैंने मृत्युलोक में आकर स्त्री की जान निकाल ली। मरते समय करवट लेते हुए उसे एक लड़की की टांग कुचल दी। मैं स्वर्ग को उड़ा, परन्तु आंधी आयी मेरे पंख उखड़ गए और मैं मन्दिर के पास आ गिरा।

अब माधो और मालती समझ गए कि मैकू कौन है? दोनों बड़े प्रसन्न हुए कि अहोभाग्य, हमने देवता के दर्शन किए. मैकू ने फिर कहा—जब तक मनुष्य-मनुष्य शरीर धारण नहीं किया था, मैं शीत-गर्मी, भूख-प्यास का कष्ट न जानता था, परन्तु मृत्यु-लोक में आने पर प्रकट हो गया कि दुःख क्या वस्तु है। मैं भूख और जाड़े का मारा मन्दिर में घुसना चाहता था, लेकिन मंन्दिर बंद था। मैं हवा की आड़ में सड़क पर बैठ गया। संध्या समय एक मनुष्य आता दिखाई दिया। मृत्यु-लोक में जन्म लेने पर यह पहला मनुष्य था, जो मैंने देख था, उसका मुख ऐसा भयंकर था कि मैंने नेत्र मूंद लिये। उसकी ओर देख न सका। वह मनुष्य यह कह रहा था कि स्त्री-पुत्रों का पालन-पोषण किस भांति करें, वस्त्र कहाँ से लाये इत्यादि। मैंने विचारा, देखो, मैं तो भूख और शीत से मर रहा हूं, यह अपना ही रोना रो रहा है, मेरी कुछ सहायता नहीं करता। वह पास से निकल गया। मैं निराश हो गया। इतने में मेरे पास लौट आया, अब दया के कारण उसका मुख सुंदर दिखने लगा। माधो, वह मनुष्य तुम थे। जब तुम मुझे घर लाये, मालती का मुख तुमसे भयंकर था, क्योंकि उसमें दया का लेशमात्र न था, परन्तु जब वह दयालु होकर भोजन लायी तो उसके मुख की कठोरता जाती रही! तब मैंने समझा कि मनुष्य में तत्त्व वस्तु प्रेम है। इसीलिए पहली बार हंसा।

एक वर्ष पीछे वह धनी मनुष्य बूट बनवाने आया। उसे देखकर मैं इस कारण हंसा कि बूट तो एक वर्ष के लिए बनवाता है और यह नहीं जानता कि संध्या होने से पहले मर जाएगा। तब दूसरी बात का ज्ञान हुआ कि मनुष्य जो चाहता है सो नहीं मिलता और मैं दूसरी बार हंसा। छह वर्ष पीछे आज यह बुढ़ि आयी तो मुझे निश्चय हो गया कि सबका जीवन आधार परमात्मा है, दूसरा कोई नहीं, इसलिए तीसरी बार हंसा। मैकू प्रकाशस्वरूप हो रहा था, उस पर आँख नहीं जमती थी। वह फिर कहने लगा—देखो, प्राणि मात्र प्रेम द्वारा जीते हैं, केवल पोषण से कोई नहीं जी सकता। वह स्त्री क्या जानती थी कि उसकी लड़कियों को कौन पालेगा, वह धनी पुरुष क्या जानता था कि गाड़ी में ही मर जाऊंगा, घर पहुंचना कहां! कौन जानता था कि कल क्या होगा, कपड़े की ज़रूरत होगी कि कफन की? मनुष्य शरीर में मैं केवल इस कारण जीता बचा कि तुमने और तुम्हारी स्त्री ने मुझसे प्रेम किया। वे अनाथ लड़कियाँ इस कारण पलीं कि एक बुढ़ि ने प्रेमवश होकर उन्हें दूध पिलाया। मतलब यह है कि प्राणी केवल अपने जतन से नहीं जी सकते। प्रेम ही उन्हें जिलाता है। पहले मैं समझता था कि जीवों का धर्म केवल जीना है, परन्तु अब निश्चय हुआ कि धर्म केवल जीना नहीं, किन्तु प्रेमभाव से जीना है। इसी कारण परमात्मा किसी को यह नहीं बतलाता कि तुम्हें क्या चाहिए, बल्कि हर एक को यही बतलाता है कि सबके लिए क्या चाहिए. वह चाहता है कि प्राणि मात्र प्रेम से मिले रहें। मुझे विश्वास हो गया कि प्राणों का आधार प्रेम है, प्रेमी पुरुष परमात्मा में और परमात्मा प्रेमी पुरुष में सदैव निवास करता है। सारांश यह है कि प्रेम और पमेश्वर में कोई भेद नहीं। यह कहकर देवता स्वर्गलोक को चला गया।

24 पर्मार्थ कि यात्रा के सुक्ष्म सोपान

1 . बहुत पहले की बात है। पाटलिपुत्र नगर के निकट एक दिन एक बौद्ध भिक्षु कहीं से आ रहे थे। एक और व्यक्ति उनके पीछे-पीछे काफी दूर से आ रहा था। वह रास्ते भर उन्हें बेवजह अपशब्द कहता रहा। जब नगर एकदम निकट आ गया और भवन दिखाई देने लगे, तब भिक्षु रुके और अत्यंत प्रेमपूर्वक अपशब्द बोलने वाले व्यक्ति से बोल-देखो प्रिय, अब नगर आने वाला है। इस नगर के निवासी मेरे परम भक्त हैं। जो भी अपशब्द आपको कहने हों, आप मुझे यहीं कह लें। यदि नगर में प्रवेश करने के पश्चात आपने यह शब्द बोले और मेरे किसी शिष्य ने सुन लिया तो वह क्रोध में आपको नुकसान पहुंचा सकता है। मैं नहीं चाहता कि आपको कोई हानि हो। आप मेरे सहयात्री रहे हैं। सात पग साथ चलने के बाद तो कोई भी व्यक्ति मित्र हो जाता है। आप और मैं तो कोसों दूर से साथ ही चले आ रहे हैं। भिक्षु की इस सहृदयता को देखकर अपशब्द कहने वाला बहुत लज्जित हुआ। उसने भिक्षु से तुरंत क्षमा मांगी। इस पर भिक्षु ने कहा कि न तो मैं क्रोध करने का अधिकारी हूँ और न ही क्षमा करने का। क्षमा की स्थिति तो वहाँ उत्पन्न होती है जहाँ मैं आपके प्रति क्रोधित रहूं। मुझे क्रोध ही नहीं आया, आपके प्रति तो मुझमें

करुणा ही विकसित होती रही। मेरा विचार तो यह रहा कि कितना अज्ञानी है कि अपशब्दों से अपने मन और मस्तिष्क को नष्ट किए जा रहा है। मैं तो रास्ते भर आपके कल्याण की कामना करता आया हूं। इसके बाद तो फिर वह व्यक्ति इतना प्रभावित हुआ कि भिक्षुक का परम शिष्य ही हो गया। बाद में उसने आर्यवर्द्धन नाम से ख्याति पाई. आर्यवर्द्धन ने अनेक बौद्ध दार्शनिक ग्रंथों की रचना की। भिक्षुक आर्यवर्द्धन ने अपने साहित्य में जिस बात पर विशेष बल दिया, वह है सर्वभूत हिते रत:। अर्थात् मानव के कल्याण में लीन रहना ही सच्ची साधना और तप होता है।

2 . श्रीराम और वशिष्ठ से जुड़ा प्रसंग इस संदर्भ में बहुत उपयोगी हो सकता है। एक बार श्रीराम ने अपने गुरु वशिष्ठ से पूछा कि मानव के दु: खों की शृंखला बढ़ती जा रही है। ऐसे में हम कैसे दु: खों को कम करके मोक्ष की ओर बढ़ सकते हैं। इस पर ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने जो सूत्र बताए, वे आधुनिक संदर्भों में अधिक उपयोगी हैं। उन्होंने कहा कि संसार में प्राणी मात्र की सेवा करते हुए ही हम मोक्ष के द्वार तक पहुंच सकते हैं। सबसे पहले जीवन को लोक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करें। इसके लिए उन्होंने पहला उपाय चित्त बुद्धि को बताया। बिना आत्मा की बुद्धि के जग और जन की पीड़ा को न तो समझा जा सकता है और न ही उनके प्रति संवेदनशील हुआ जा सकता है। मन को सदा शांत रखें और हमेशा विनम्रता पूर्ण व्यवहार करें। इसके बाद सम के भाव को विकसित करना आवश्यक है। सम यानी शांति का अनुभव करना। सभी के प्रति कल्याण चाहने वाली प्रेम की दृष्टि होनी चाहिए. सभी के प्रति आदर भाव प्रकट करें। किसी प्रकार का कोई भेद मन में न हो। तीसरा उपाय उन्होंने संतोष बताया। न होने पर दुःख न होना और प्राप्त होने पर अति उत्साहित न होना संतोष की स्थिति है। अपरिग्रह का पालन करें। आवश्यकताओं को कम करें, यहीं से जीवन का पवित्र होना आरंभ होता है। चैथा सूत्र वशिष्ठ जी ने अच्छे लोगों की संगत बताया। उन्होंने कहा कि सदा उत्तम चरित्र, सदाचारी और ज्ञानी व्यक्तियों की निकटता में रहना चाहिए. उन्हें सम्मान दें और उनके उत्तम कार्यों में सहयोगी बनें। अंतिम सूत्र विचार बताया। बिना किसी पूर्वाग्रह के उदार मन और मस्तिष्क से सोचना ही विचार कहलाता है। सदा विचारशील रहें। यदि यह सूत्र जीवन में उतार लेते हैं तो सब एक-दूसरे का कल्याण करने में लगे रहेंगे। ऐसे में फिर इस दुनिया में न तो हिंसा होगी और न ही कोई दूसरा दुःख होगा।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः। परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थ मिदं शरीरम्॥ परोपकार के लिए वृक्ष फल देते हैं, नदीयाँ परोपकार के लिए ही बहती हैं और गाय परोपकार के लिए दूध देती हैं, (अर्थात्) यह शरीर भी परोपकार के लिए ही है।

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः। परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति॥ इस जीवलोक में स्वयं के लिए कौन नहीं जीता? परंतु, जो परोपकार के लिए जीता है, वही सच्चा जीना है।

राहिणि नलिनीलक्ष्मी दिवसो निदधाति दिनकराप्रभवाम्। अनपेक्षितगुणदोषः परोपकारः सतां व्यसनम्॥ दिन में जिसे अनुराग है वैसे कमल को, दिन सूर्य से पैदा हुई शोभा देता है। अर्थात् परोपकार करना तो सज्जनों का व्यसन-आदत है, उन्हें गुण-दोष की परवा नहीं होती।

भवन्ति नम्रस्तरवः फलोद्रमैः। नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः। अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः। स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥ वृक्षों पर फल आने से वे झुकते हैं (नम्र बनते हैं) ; पानी में भरे बादल आकाश में नीचे आते हैं; अच्छे लोग समृद्धि से गर्विष्ठ नहीं बनते, परोपकारियों का यह स्वभाव ही होता है।

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥ जो करोडो ग्रंथों में कहा है, वह मैं आधे श्लोक में कहता हूँ; परोपकार पुण्यकारक है और दूसरे को पीडा देना पापकारक है।

जीवितान्मरणं श्रेष्ठ परोपकृतिवर्जितात्। मरणं जीवितं मन्ये यत्परोपकृतिक्षमम्॥ बिना उपकार के जीवन से मृत्यु श्रेष्ठ है; जो परोपकार करने के लिए शक्तिमान है, उस मरण को भी मैं जीवन मानता हूँ।

परोपकारशून्यस्य धिक् मनुष्यस्य जीवितम्। जीवन्तु पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति॥ परोपकार रहित मानव के जीवन को धिक्कार है। वे पशु धन्य है, मरने के बाद जिनका चमडा भी उपयोग में आता है

3. परोपकार सबसे बड़ा पुण्य और परपीड़ा यानी दूसरों को कष्ट देना सबसे बड़ा पाप है। आइये परोपकार से सम्बंधित इस कहानी को पढ़ें और आत्मसात करें। समुद्र के किनारे एक लड़का अपनी माँ के साथ रहता था। उसके पिता नाविक थे। कुछ दिनों पहले उसके पिता जहाज लेकर समुद्री-यात्रा पर गए थे। बहुत दिन बीत गए पर वे लौट कर नहीं आए. लोगों ने समझा की समुद्री तूफान में जहाज डूबने से उनकी मृत्यु हो गए होगी। एक दिन समुद्र में तूफान आया, लोग तट पर खड़े थे। वह लड़का भी अपनी माँ के साथ वहीं खड़ा था। उन्होंने देखा कि एक जहाज तूफान में फँस गया है। जहाज थोड़ी देर में डूबने ही वाला था। जहाज पर बैठे लोग व्याकुल थे यदि तट से कोई नाव जहाज तक चली जाती तो उनके प्राण बच सकते थे। तट पर नाव थी, लेकिन कोई उसे जहाज तक ले जाने का साहस न कर सका, उस लडके ने अपनी माँ से कहा–"माँ! मैं नाव लेकर जाऊंगा, पहले तो माँ के मन में ममता उमड़ी, फिर उसने सोचा कि एक के त्याग से इतने लोगों के प्राण बचा लेना अच्छा है। उसने अपने पुत्र को जाने की आज्ञा दे दी। वह लड़का साहस करके नाव चलाता हुआ जहाज तक पहुंचा, लोग जहाज से उतरकर नाव में आ गए, जहाज डूब गया नाव किनारे की ओर चल दी सबने बालक की प्रशंसा की और उसे आशीर्वाद देने लगे संयोग से उसी नाव में उसके पिता भी थे। उन्होंने अपने पुत्र को पहचाना लडके ने भी अपने पिता को पहचान लिया। किनारे पहुंचते ही बालक दौड़ कर अपनी माँ के पास गया और लिपट कर बोला–" माँ! पिता जी आ गए "माँ की आँखों में हर्ष के आँसू थे। लोगों ने कहा–" परोपकार की भावना ने पुत्र को उसका पिता लौटा दिया। " परोपकार से मन को शांति और सुख मिलता है। परोपकारी व्यक्ति का नाम संसार में अमर हो जाता है। महाराज शिवि, रन्तिदेव आदि ने प्राणों का मोह छोड़ के परोपकार करके दिखलाया था। इसलिए वे अमर हो गए.

पुरुवंशी नरेश शिवि उशीनगर देश के राजा थे। वे बड़े दयालु-परोपकारी शरण में आने वालो की रक्षा करने वाले एक धर्मात्मा राजा थे। इसके यहाँ से कोई पीड़ित, निराश नहीं लौटता था। इनकी सम्पत्ति परोपकार के लिए थी। इनकी भगवान से एकमात्र कामना थी कि मैं दुःख से पीड़ित प्राणियों की पीड़ा का सदा निवारण करता रहूँ। स्वर्ग में इन्द्र को राजा शिवि के धर्म-कर्म से इन्द्रासन छिनने का भय हुआ। उन्होंने राजा की परीक्षा लेने, हो सके तो इन्हें धर्म मार्ग से हटाने के लिए अपने साथ अग्निदेव को लेकर उशीनगर को प्रस्थान किया। इन्द्र ने बाज का रूप धारण किया, अग्नि ने कबूतर का रूप बनाया। बाज ने कबूतर का पीछा किया। बाज के भय से डरता-कांपता कबूतर उड़ता हुआ आकर राजा शिवि की गोद में गिर पड़ा और इनके वस्त्रों में छिप गया। राजा उसे प्रेम से पुचकारने लगे। इतने में पीछा करता हुआ बाज वहाँ आ पहुंचा। बाज ने कहा-'राजन! मैं भूखा हूँ, यह कबूतर मेरा आहार है। इसे मुझे दे दीजिए और मुझ भूखे की प्राणरक्षा कीजिए.' राजा ने का-'यह कबूतर मेरी शरण में आया है। शरण में आये हुए की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। मैंने इसे अभयदानन दिया है। मैं इसे किसी प्रकार तुमको नहीं सौंप सकता हूँ।' बाज ने कहा-'महाराज! जहाँ शरणागत की रक्षा करना आपका धर्म है, वहीं किसी का आहार छीनना भी तो आपके लिए अधर्म है। यहाँ आपका धर्म है कि मुझ भूखे को आहार दें, अन्यथा मेरी हत्या का पाप आपको लगेगा। मर जाने के

बाद मेरे बच्चे भी भूखे मरेंगे, उनकी हत्या का पाप भी आपको लगेगा। अतः आप इतना अधिक पाप न करें और मेरा आहार सौंप कर अपने धर्म का पालन करें।' राजा ने कहा-'मैं शरणागत को तुम्हें कदापि नहीं दे सकता। आहार के लिए इसके स्थान पर मैं अपना मांस तुम्हें देता हूँ। तुम भरपेट खा लो।' बाज बोला-'मैं मांसाहारी हूँ। कबूतर का मांस या अन्य मांस मेरे लिए समान है। आप चाहें तो कबूतर के बराबर अपना मांस मुझे दे सकते हैं। मुझे अधिक की आवश्यकता भी नहीं है।' राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई. उन्होंने कहा-'यह आपने बड़ी कृपा की। आज इस नश्वर शरीर से अविनाशी धर्म की रक्षा हो रही है।' राजधानी में कोलाहल मच गया। आज राजा एक कबूतर की प्राणरक्षा के लिए अपने शरीर का मांस काटकर तराजू पर तोलने जा रहे हैं-यह देखने के लिए नगर की सारी प्रजा एकत्रित हो गयी। तराजू मंगाया गया। एक पलड़े में कबूतर को बैठाया गया और दूसरे पलड़े पर राजा ने अपने शरीर का मांस काट कर रखा। मांस कम पड़ा तो और काटना पड़ा। वह भी कम पड़ गया। इस प्रकार राजा अपने शरीर का मांस काट कर रखते गये और तराजू का पलड़ा हमेशा कबूतर की तरफ झुका रहा वह जैसे राजा का मांस पाकर अधिकाधिक और भारी होता जा रहा था। सारी प्रजा सांस रोक, भीगे आंसूओं के साथ यह दृश्य देख रही थी। राजा को मुखमण्डल में तो तनिक भी शिकन नहीं थी। अन्त में राजा स्वयं तराजू के पलड़े पर बैठ गये। उसी समय आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी। अन्तरिक्ष में प्रकाश व्याप्त हो गया। दोनो पक्षी अदृश्य हो गये। उनके स्थान पर इन्द्र और अग्नि सामने खड़े थे। सभी उन्हें आश्चर्यचकित हो देखने लगे। इन्द्र ने कहा-'महाराज! आपकी परीक्षा के लिए मैंने बाज का और अग्निदेव ने कबूतर का रूप धारण किया था। आप तो सच्चे धर्मात्मा निकले। आप जैसे परोपकारी जगत की रक्षा के लिए ही जन्म लेते हैं।' राजा शिवि तराजू से नीचे उतरे। उनका शरीर सामान्य हो चुका था। दोनो देवता अन्तर्धान हो गये। महाराज शिवि ने परोपकार-धर्म की रक्षा की। ऐसे आदर्श चरित्र राजा अब कहाँ हैं? वर्तमान काल के लिए परहित और दयालुता का वे एक आदर्श उदाहरण हैं।

25. अनुभूतियों का अगम्य सागर

प्राचीन हिन्दी कहानी है, अयोध्या के राजा दिलीप बड़े त्यागी, धर्मात्मा, प्रजा का ध्यान रखने वाले थे। उनके राज्य में प्रजा संतुष्ट और सुखी थी। राजा को प्रौढावस्था तक भी कोई संतान नहीं हुई। अतः एक दिन वे रानी सुदक्षिणा सहित गुरु वसिष्ठ के आश्रम में पहुंचे और उनसे निवेदन किया कि-भगवन्! आप कोई उपाय बतायें, जिससे मुझे कोई संतान हो। गुरु वसिष्ठ ने ध्यानस्थ होकर कुछ देखा। फिर वे बोले-राजन्। यदि आप मेरे आश्रम में स्थित कामधेनु की पुत्री नन्दिनी गौ की सेवा करें तो उसके प्रसाद से आपको संतान अवश्य प्राप्त होगी। राजा ने अपने सेवकों को अयोध्या वापस भेज दिया और स्वयं रानी सुदक्षिणा सहित महर्षि के तपोवन में गो-सेवा करने लगे। प्रतिदिन वे और सुदक्षिणा गाय की पूजा करते। राजा गाय को चरने के लिए स्वछन्द छोड़ देते थे। वह जिधर जाना चाहती, उधर उसके पीछे-पीछे छाया की तरह रहते। उसके जल पीने के पश्चात ही राजा जल पीते थे। उसे स्वादिष्ट घास खिलाते, नहलाते-धुलाते और उसकी समर्पित भाव से सेवा करते। संध्या के समय आश्रम में रानी द्वार पर खड़ी उनकी प्रतिक्षा करती रहती थी। आते ही गौ को तिलक करती, गोदोहन के पश्चात राजा-रानी गाय की सेवा करते, स्थान की सफाई करते, उसके सो जाने पर सोते और प्रातः उसके जागने से पूर्व उठ जाते थे। इक्कीस दिन निरन्तर छाया की भांति गो-सेवा हो चुकी थी। बाईसवें दिन जब राजा गौ चरा रहे थे तब कहीं से आकर अचानक एक शेर गाय पर टूट पड़ा। तुरंत राजा ने धनुष-बाण चढ़ाकर सिंह को खदेड़ने का प्रयास किया। पर आश्चर्य! उनके हाथ की अँगुलियाँ बाण पर चिपग गये। वे जड़वत देखते ही रह गये। उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब सिंह मनुष्य की वाणी में राजा को चकित करते हुए बोला-राजन्। तुम्हारा बाण मुझ पर नहीं चल सकता है। मैं भगवान शंकर का सेवक कुम्भोदर

हूँ। इन वृक्षों की सेवा के लिए भगवान शिव ने मुझे यहाँ नियुक्त किया है और कहा है कि जो भी जीव आयेगा वहीं तुम्हारा आहार होगा। आज मुझे यह गाय आहार मिली है, अतः तुम लौट जाओ. राजा ने कहा-'सिंहराज! जैसे शंकर जी के प्रिय इस वृक्ष की रक्षा करना आपका कर्तव्य है, उसी प्रकार गुरुदेव की गौ की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। आपको आहार चाहिए, उसके लिए मैं गौ के स्थान पर अपना शरीर समर्पित करता हूँ। आप मुझे खाकर क्षुधा शान्त करें। गौ को छोड़ दें। इसका छोटा बछड़ा इसकी प्रतीक्षा कर रहा होगा। सिंह ने राजा को बहुत समझाया, पर राजा ने एक न सुनी। वे अस्त्र-शस्त्र त्याग कर सिंह के समक्ष आंखे बन्द करके बैठ गये। राजा मृत्यु की प्रतिक्षा कर रहे थे, पर उन्हें नन्दिनी की अमृतवाणी सुनाई दी-' वत्स! उठो, तुम्हारी परीक्षा हो चुकी है। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, वरदान मांगो'। राजा ने आंखे खोली तो सामने गौ माता को खड़ी देखा, सिंह का कोई अता-पता नहीं था। राजा ने वंश चलाने के लिए पुत्र की याचना की। गौ ने कहा-' मेरा दूध दोने में दुह कर पी लो। तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। 'राजा ने कहा-' माता! आपके दूख का प्रथम अधिकार आपके बछड़े को है। उसके पश्चात गुरुदेव का, उसे पूर्व व बिना गुरुदेव की आज्ञा से मैं दुग्ध-पान नहीं कर सकता। आप क्षमा करें। 'गौमाता प्रसन्न होकर बोली-' एवमस्तु! 'सांयकाल आश्रम में लौटकर राजा ने गुरुदेव को सारी घटना बतायी। गुरुदेव ने गोदोहन के पश्चात अपने हाथों से राजा और रानी को आशीर्वाद के साथ दूध पीने को दिया। गौसेवा एवं दुग्धपान के पश्चात राजा और रानी राजमहल लौट आये। रानी गर्भवती हुई. उनके पुत्र रघु का जन्म हुआ। इन्हीं रघु के नाम पर आगे चल कर सूर्यवंश' रघुवंश' कहा जाने लगा।

भावनगर के राजा एक बार गर्मियों के दिनों में अपने आम के बागों में आराम कर रहे थे और वह बहुत ही खुश थे की उनके बागों में बहुत अच्छे आम लगे थे और ऐसे ही वह अपने खयालों में खोये हुए थे। तब वहाँ से एक ग़रीब किसान गुज़र रहा था और वह बहुत भूखा था, उसका परिवार पिछले दो दिन से भूखा था तो उसने देखा कि क्या मस्त आम लगे है अगर मैं यहाँ से कुछ आम तोड़ कर ले जाऊँ तो मेरे परिवार के खाने का बंदोबस्त हो जाएगा। यह सोच कर वह उस बाग़ में घुस गया उसे पता नहीं था कि इस बाग़ में भावनगर के राजा आराम कर रहे हैं वह तो चोरी छुपे घुसते ही एक पत्थर उठा कर आम के पेड़ पर लगा दिया और वह पत्थर आम के पेड़ से टकराकर सीधा राजाजी के सर पर लगा। राजाजी का पूरा सर खून से लत पथ हो गया और वह अचानक हुए हमले से अचंभित थे और उन्हें यह समझ ही नहीं आ रहा था कि आखिर उनपर हमला किसने किया। राजा ने अपने सिपाहियों को आवाज़ दी तो सारे सिपाही दोड़े चले आयें और राजाजी का यह हाल देख उन्हें लगा की किसी ने राजाजी पर हमला किया है तो वह बागीचे के चारों तरफ आरोपी को ढूढ़ने लगे। इस शोर शराबे को देखकर ग़रीब किसान समझ गया की कुछ गड़बड़ हो गई वह डर के मारे भागने लगा, सिपाहियों ने जैसे ही इस ग़रीब किसान को भागते देखा तो वह सब भी उसके पीछे भागने लगे और उसे दबोच लिया। इस ग़रीब किसान को सिपाहियों ने पकड़कर कारागार में दाल दिया और उसको दूसरे दिन दरबार में पेश किया, दरबार पूरा भरा हुआ था और सबको यह मालूम हो चुका था कि इस इंसान ने राजाजी को पत्थर मार था, सब बहुत गुस्से में थे और सोच रहे थे की इस गुनाह के लिए उसे मृत्युदंड मिलना चाहिए. सिपाहियों ने इस ग़रीब किसान को दरबार में पेश किया और राजा ने उससे सवाल किया की तू ने मुझ पर हमला क्यों किया? ग़रीब किसान डरते-डरते बोला माई बाप मैंने आप पर हमला नहीं किया है मैं तो सिर्फ़ आम लेने आया था। मैं और मेरा परिवार पिछले दो दिनों से भूखे थे इस लिए मुझे लगा की अगर यहाँ से कुछ फल मिल जाए तो मेरे परिवार की भूख मिट सकेगी। यह सोचकर मैंने वह पत्थर आम के पेड़ को मार था मुझे पता नहीं था कि आप उस पेड़ के नीचे आराम कर रहे थे और वह पत्थर आपको लग गया। यह सुनकर सभी दरबारी बोलने लगे अरे मूर्ख तुझे पता है तू ने कितनी बड़ी भूल करी है तू ने इतने बड़े राजा के सर पर पत्थर मारा है अब देख क्या हाल होता है तेरा। राजाजी ने सभी दरबारीयों को शांत रहने को कहा और वह बोले भला अगर एक पेड़ को कोई पत्थर मरता है और वह फल दे सकता है तो मैं तो भावनगर का राजा हूँ मैं इसे दंड कैसे दे सकता हूँ। अगर एक पेड़ पत्थर खाकर कुछ देता है तो मैंने भी पत्थर खाया है तो मेरा भी फ़र्ज़ है कि मैं भी इस ग़रीब इंसान को कुछ दूँ और उन्होंने अपने मंत्री को आदेश दिया की जाओ और हमारे अनाज के

भंडार से इस इंसान को पूरे एक साल का अनाज दे दो। यह फैसला सुनकर सभी दरबारी चकित हो उठे, उन्हें तो लग रहा था कि इसे दंड मिलेगा लेकिन राजाजी की दया, प्रेम और न्याय देखकर सभी दरबारी राजाजी के प्रशंसक बन गए. वह ग़रीब किसान भी राजाजी की दया और उदारता देख अपने आंसू नहीं रोक पाया और भावनात्मक हो कर राजाजी के सामने झुक कर कहने लगा धन्यभाग है इस भावनगर के जिसे इतना परोपकारी, दयालु राजा मिला और पूरे दरबार में राजा का जय कार नाद गूँजने लगा।

कैसे होंगे वह राजा जिन्होंने पत्थर खाकर भी एक ग़रीब व्यक्ति की पीड़ा, व्यथा समझ पाए, उसके दर्द को जी पाए और उसकी मदद कर पाए. धन्य है वह राजाजी जिन्होंने दया प्रेम और उदारता के साथ न्याय किया और दया का एक अनोखा प्रतीक पेश किया। आज के इस युग मैं हम सब विकसित तो हो गए, हम सब कहने को तो बुद्धिमान भी बन गए, हमने संसाधन भी इकट्ठा कर लिए लेकिन अगर हमारे अंदर वह राजाजी जैसे भाव नहीं है दया नहीं है प्रेम नहीं है फिर तो यह सब बेकार का है इस भाव के बिना हम आज भी जंगली जानवर के समान है। हम ऐसे महान दयावान राजा को तहे दिल से प्रणाम करते है और सभी लोगों से भावभीनी अपील करते है कि अपने दिल में दया, प्रेम और परोपकार की भावना जगाए रखे और सही अर्थों में सफल मानव बने।

(इन्द्रस्य नु०) यहाँ सूर्य का इन्द्र नाम है। उसके किये हुए पराक्रमों को हम लोग कहते हैं, जोकि परम ऐश्वर्य होने का हेतु बड़ा तेजधारी है। वह अपनी किरणों से 'वृत्र' अर्थात मेघ को मारता है। जब वह मरके पृथ्वी में गिर पड़ता है, तब अपने जलरूप शरीर को सब पृथ्वी में फैला देता है। फिर उससे अनेक बड़ी-२ नदी परिपूर्ण होके समुद्र में जा मिलती हैं। कैसी वे नदी हैं कि पर्वत और मेघों से उत्पन्न होके जल ही बहने के लिए होती हैं। जिस समय इन्द्र मेघरूप वृत्रासुर को मार के आकाश से पृथ्वी में गिरा देता है, तब वह पृथ्वी में सो जाता है। फिर वही मेघ आकाश में से नीचे गिरके पर्वत अर्थात मेघमण्डल का पुनः आश्रय लेता है। जिसको सूर्य्य अपनी किरणों से फिर हनन करता है। जैसे कोई लकड़ी को छील के सूक्ष्म कर देता है। वैसे ही वह मेघ को भी बिन्दु-बिन्दु करके पृथ्वी में गिरा देता है और उसके शरीररूप जल सिमट-सिमट कर नदियों के द्वारा समुद्र को ऐसे प्राप्त होते हैं कि जैसे अपने बछड़ों से गाय दौड़ के मिलती हैं। जब सूर्य्य उस अत्यन्त गर्जित मेघ को छिन्न-भिन्न करके पृथ्वी में ऐसे गिरा देता है कि जैसे कोई मनुष्य आदि के शरीर को काट-काट कर गिराता है, तब वह वृत्रासुर भी पृथ्वी पर मृतक के समान शयन करने वाला हो जाता है। 'निघण्टु' में मेघ का नाम वृत्र है (इन्द्रशत्रु) —वृत्र का शत्रु अर्थात निवारक सूर्य्य है, सूर्य्य का नाम त्वष्टा है, उसका संतान मेघ है, क्योंकि सूर्य्य की किरणों के द्वारा जल कण होकर ऊपर को जाकर वाहन मिलके मेघ रूप हो जाता है। तथा मेघ का वृत्र नाम इसलिये है कि वृत्रोवृणोतेः० वह स्वीकार करने योग्य और प्रकाश का आवरण करने वाला है। वृत्र के इस जलरूप शरीर से बड़ी-बड़ी नदियाँ उत्पन्न होके अगाध समुद्र में जाकर मिलती हैं और जितना जल तालाब व कूप आदि में रह जाता है वह मानो पृथ्वी में शयन कर रहा है। वह वृत्र अपने बिजली और गर्जनरूप भय से भी इन्द्र को कभी जीत नहीं सकता। इस प्रकार अलंकाररूप वर्णन से इन्द्र और वृत्र ये दोनों परस्पर युद्ध के सामान करते हैं, अर्थात जब मेघ बढ़ता है, तब तो वह सूर्य्य के प्रकाश को हटाता है और जब सूर्य्य का ताप अर्थात तेज बढ़ता है तब वह वृत्र नाम मेघ को हटा देता है। परन्तु इस युद्ध के अंत में इन्द्र नाम सूर्य्य ही की विजय होती है। (वृत्रो ह वा०) जब-जब मेघ वृद्धि को प्राप्त होकर पृथ्वी और आकाश में विस्तृत होके फैलता है, तब-तब उसको सूर्य्य हनन करके पृथ्वी में गिरा देता है। उसके पश्चात वह शुद्ध भूमि, सड़े हुये वनस्पति, काष्ठ, तृण तथा मलमुत्रादि युक्त होने से कहीं-कहीं दुर्गन्ध रूप भी हो जाता है। तब समुद्र का जल देखने में भयंकर मालूम पड़ने लगता है। इस प्रकार बारम्बार मेघ वर्षता रहता है। (उपर्य्युपर्य्येति०) —अर्थात सब स्थानों से जल उड़-उड़ कर आकाश में बढ़ता है। वहाँ इकट्ठा होकर फिर से वर्षा किया करता है। उसी जल और पृथ्वी के सयोंग से ओषधी आदि अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उसी मेघ को 'वृत्रासुर' के नाम से बोलते हैं। वायु और सूर्य्य का नाम इन्द्र है। वायु

आकाश में और सूर्य्य प्रकाशस्थान में स्थित है। इन्हीं वृत्रासुर और इन्द्र का आकाश में युद्ध हुआ करता है कि जिसके अन्त में मेघ का पराजय और सूर्य्य का विजय निःसंदेह होता है।

युधिष्ठिर द्वारा भीष्म से वृत्रासुर के विषय में प्रश्न करना युधिष्ठिर ने पूछा-दादाजी! अमित तेजस्वी वृत्रासुर की धर्मनिष्ठा अद्भुत थी। उसका विज्ञान भी अनुपम था और भगवान विष्णु के प्रति उसकी भक्ति भी वैसी ही उच्च कोटि की थी। त्तात! अनन्त तेजस्वी श्रीविष्णु के स्वरूप का ज्ञान तो अत्यन्त कठिन है। नृप श्रेष्ठ! उस वृत्रासुर ने उस परमपद का ज्ञान कैसे प्राप्त कर लिया? यह बड़े आश्चर्य की बात है। आपने इस घटना का वर्णन किया है; इसलिये मैं इसे सत्य मानता और इस पर विश्वास करता हूँ; क्योंकि आप कभी सत्य से विचलित नहीं होते हैं तथापि यह बात स्पष्ट रूप से मेरी समझ में नहीं आयी है; अत: पुन: मेरी बुद्धि में प्रश्न उत्पन्न हो गया। पुरुषप्रवर! वृत्रासुर धर्मात्मा, भगवान विष्णु का भक्त और वेदान्त के पदों का अन्वय करके उनके तात्पर्य को ठीक-ठीक समझने में कुशल था तो भी इन्द्र ने उसे कैसे मार डाला? भरतभूषण! नृपश्रेष्ठ! मैं यह बात आपसे पूछता हूँ, आप मेरे इस संशय का समाधान कीजिये। इन्द्र ने वृत्रासुर को कैसे परास्त किया? महाबाहु! पितामह! इन्द्र और वृत्रासुर में किस प्रकार का युद्ध हुआ था, यह विस्तारपूर्वक बताइये; इसे सुनने के लिये मेरे मन में बड़ी उत्सुकता हो रही है। भीष्म का युधिष्ठिर को वृत्रासुर की कथा सुनाना भीष्म जी ने कहा-राजन्! प्राचीन काल की बात है, इन्द्र रथ पर आरूढ हो देवताओं को साथ ले वृत्रासुर से युद्ध करने के लिये चले। उन्होंने अपने सामने खड़े हुए पर्वत के समान विशालकाय वृत्र को देखा। शत्रुदमन नरेश! वह पाँच सौ योजन ऊँचा था और कुछ अधिक तीन सौ योजन उसकी मोटाई थी। वृत्रासुर का वह वैसा रूप, जो तीनों लोकों के लिये भी दुर्जय था, देखकर देवता लोग डर गये। उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी। राजन्! उस समय वृत्रासुर का वह उत्तम एवं विशाल रूप देखकर सहसा भय के मारे इन्द्र की दोनों जाँघें अकड़ गयीं। तदनन्तर वह युद्ध में उपस्थित होने पर समस्त देवताओं और असुरों के दलों में रणवाद्यों का भीषण नाद होने लगा। कुरुनन्दन! इन्द्र को खड़ा देखकर भी वृत्रासुर के मन में न तो घबराहट हुई, न कोई भय हुआ और न इन्द्र के प्रति उसकी कोई युद्ध विषयक चेष्टा ही हुई. फिर तो देवराज इन्द्र और महामनस्वी वृत्रासुर में भारी युद्ध छिड़ गया, जो तीनों लोकों के मन में भय उत्पन्न करने वाला था। उस समय तलवार, पट्टिश, त्रिशूल, शक्ति, तोमर, मुदगर, नाना प्रकार की शिला, भयानक टंकार करने वाले धनुष्, अनेक प्रकार के दिव्य अस्त्र-शस्त्र तथा आग की ज्वालाओं से एवं देवताओं और असुरों की सेनाओं से यह सारा आकाश व्याप्त हो गया। भरतभूषण महाराज! ब्रह्मा आदि समस्त देवता महाभाग ऋषि, सिद्धगण तथा अप्सराओं सहित गन्धर्व-ये सबके सब श्रेष्ठ विमानों पर आरूढ हो उस अद्भुत युद्ध का दृश्य देखने के लिये वहाँ आ गये थे। तब धर्मात्माओं में श्रेष्ठ वृत्रासुर ने आकाश को घेरकर वड़ी उतावली के साथ देवराज इन्द्र पर पत्थरों की वर्षा आरम्भ कर दी। यह सब देख देवगण कुपित हो उठे। उन्होंने युद्ध में सब ओर से बाणों की वर्षा करके वृत्रासुर के चलाये हुए पत्थरों की वर्षा को नष्ट कर दिया। कुरुश्रेष्ठ! महामायावी महाबली वृत्रासुर ने सब ओर से मायामय युद्ध छेड़कर देवराज इन्द्र को मोह में डाल दिया। वृत्रासुर से पीड़ित हुए इन्द्र पर मोह छा गया। तब वसिष्ठ जी ने रथन्तर सामद्वारा वहाँ इन्द्र को सचेत किया। वसिष्ठ जी ने कहा-देवेन्द्र! तुम सब देवताओं में श्रेष्ठ हो। दैत्यों तथा असुरों का संहार करने वाले शक्र! तुम तो त्रिलोकी के बल से सम्पन्न हो; फिर इस प्रकार विषाद में क्यों पड़े हो? ये जगदीश्वर ब्रह्मा, विष्णु और शिव तथा भगवान सोमदेव और समस्त महर्षि तुम्हें उदिग्न देखकर तुम्हारी विजय के लिये स्वस्तिवाचन कर रहे हैं। इन्द्र! किसी साधारण मनुष्य के समान तुम कायरता न प्रकट करो। सुरेश्वर! युद्ध के लिये श्रेष्ठ बुद्धि का सहारा लेकर अपने शत्रुओं का संहार करो। देवराज! ये सर्वलोकवन्दित लोकगुरु भगवान त्रिलोचन शिव तुम्हारी ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं। तुम मोह को त्याग दो। शक्र! ये बृहस्पति आदि महर्षि तुम्हारी विजय के

लिये दिव्य स्तोत्र द्वारा स्तुति कर रहे हैं। -महर्षियों द्वारा भगवान शिव से निवेदन भीष्म जी कहते हैं-राजन्! महात्मा वसिष्ठ के द्वारा इस प्रकार सचेत किये जाने पर महातेजस्वी इन्द्र का बल बहुत बढ गया। तब भगवान पाकशासन ने उत्तम बुद्धि का आश्रय ले महान योग से युक्त हो उस माया को नष्ट कर दिया। तदनन्तर अंगिरा के पुत्र श्रीमान बृहस्पति तथा बड़े-बड़े महर्षियों ने जब वृत्रासुर का पराक्रम देखा, तब महादेवजी के पास आकर लोकहित की कामना से वृत्रासुर के विनाश के लिये उनसे निवेदन किया। तब जगदीश्वर भगवान शिव का रौद्र ज्वर होकर लोकेश्वर वृत्र के शरीर में समा गया। फिर लोकरक्षापरायण सर्वलोकपूजित देवेश्वर भगवान विष्णु ने भी इन्द्र के वज्र में प्रवेश किया। तत्पश्चात बुद्धिमान बृहस्पति, महातेस्वी वसिष्ठ तथा सम्पूर्ण महर्षि वरदायक, लोकपूजित शतक्रतु इन्द्र के पास जाकर एकाग्रचित्त हो इस प्रकार बोले-प्रभो! वृत्रासुर का वध करो '। महेश्वर बोले-इन्द्र! यह महान वृत्रासुर बड़ी भारी सेना से घिरा हुआ तुम्हारे सामने खड़ा है। इसमें सर्वत्र गमन करने की शक्ति है। यह अनेक प्रकार की मायाओं का सुविख्यात ज्ञाता भी है। सुरेश्वर! यह श्रेष्ठ असुर तीनों लोकों के लिये भी दुर्जय है। तुम योग का आश्रय लेकर इसका वध करो। इसकी अवहेलना न करो। अमरेश्वर! इस वृत्रासुर ने बल की प्राप्ति के लिये ही साठ हजार वर्षों तक तप किया था और तब ब्रह्माजी ने इसे मनोवांछित वर दिया था। सुरेन्द्र! उन्होंने इसे योगियों की मीहिमा, महामायावीपन, महान बल-पराक्रम तथा सर्वश्रेष्ठ तेज प्रदान किया है। वासव! लो, यह मेरा तेज तुमहारे शरीर में प्रवेश करता है। इस समय दानव वृत्र ज्वर के कारण बहुत व्यग्र हो रहा है; इसी अवस्था में तुम वज्र से इसे मार डालो। इन्द्र ने कहा-भगवन्! सुरश्रेष्ठ! आपकी कृपा से इस दुर्धर्ष दैत्य को मैं आपके देखते-देखते वज्र से मार डालूँगा। भीष्मजी कहते हैं–राजन्! जब महादैत्य वृत्रासुर के शरीर में ज्वर ने प्रवेश किया, तब देवता और ऋर्षियों का महान हर्षनाद वहाँ गूँज उठा। फिर तो दुन्दुभियाँ, जोर-जोर से बजने वाले शंख, ढोल और नगाड़े आदि सहस्त्रों बाजे बजाये जाने लगे। समस्त असुरों की स्मरण-शक्ति का बड़ा भारी लोप हो गया। क्षणभर में उनकी सारी मायाओं का पूर्णरूप से विनाश हो गया। इस प्रकार वृत्रासुर में महादेव जी के ज्वर का आवेश हुआ जान देवता और ऋषि देवेश्वर इन्द्र की स्तुति करते हुए उन्हें वृत्रवध के लिये प्रेरणा देने लगे। युद्ध के समय रथ पर बैठकर ऋषियों के द्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए महामना इन्द्र का रूप ऐसा तेजस्वी प्रतीत होता था कि उसकी ओर देखना भी अत्यन्त कठिन जान पड़ता था।

ब्रह्मवन में कर्पूरतिलक नामक हाथी था। उसको देखकर सब गीदड़ों ने सोचा, "" यदि यह किसी तरह से मारा जाए तो उसकी देह से हमारा चार महीने का भोजन होगा। " उसमें से एक बूढ़े गीदड़ ने इस बात की प्रतिज्ञा की-मैं इसे बुद्धि के बल से मार दूँगा। फिर उस धूर्त ने कर्पूरतिलक हाथी के पास जा कर साष्टांग प्रणाम करके कहा-महाराज, कृपादृष्टि कीजिये। हाथी बोला-तू कौन है, सब वन के रहने वाले पशुओं ने पंचायत करके आपके पास भेजा है कि बिना राजा के यहाँ रहना योग्य नहीं है, इसलिए इस वन के राज्य पर राजा के सब गुणों से शोभायमान होने के कारण आपको ही राजतिलक करने का निश्चय किया है। जो कुलाचार और लोकाचार में निपुण हो तथा प्रतापी, धर्मशील और नीति में कुशल हो वह पृथ्वी पर राजा होने के योग्य होता है।

राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्या ततो धनम्। राजन्यसति लोकेऽस्मिन्कुतो भार्या कुतो धनम्॥

पहले राजा को ढूंढ़ना चाहिये, फिर स्त्री और उसके बाद धनको ढूंढ़े, क्योंकि राजा के नहीं होने से इस दुनिया में कहाँ स्त्री और कहाँ से धन मिल सकता है? राजा प्राणियों का मेघ के समान जीवन का सहारा है और मेवे के नहीं बरसने से तो लोक जीता रहता है, परंतु राजा के न होने से जी नहीं सकता है। इस राजा के अधीन इस संसार में बहुधा दंड के भय से लोग अपने नियत कार्यों में लगे रहते है और न तो अच्छे आचरण में मनुष्यों का रहना कठिन है, क्योंकि दंड के ही भय से कुल की स्त्री दुबले, विकलांग रोगी या निर्धन भी पति को स्वीकार करती है। इस लिए लग्न की घड़ी टल जाए, आप शीघ्र पधारिये। यह कह उठ कर चला फिर वह कर्पूरतिलक राज्य के लोभ में फँस कर

गीदड़ों के पीछे दौड़ता हुआ गहरी कीचड़ में फँस गया। फिर उस हाथी ने कहा- "" मित्र गीदड़, अब क्या करना चाहिए? कीचड़ में गिर कर मैं मर रहा हूँ। लौट कर देखो। गीदड़ ने हँस कर कहा- "" महाराज, मेरी पूँछ का सहारा पकड़ कर उठो, जैसा मुझ सरीखे की बात पर विश्वास किया, तैसा शरणरहित दुःख का अनुभव करो।

यदासत्सङ्गरहितो भविष्यसि भविष्यसि। तदासज्जनगोष्ठिषु पतिष्यसि पतिष्यसि॥ जैसा कहा गया है-जब बुरे संगत से बचोगे तब जानो जीओगे और जो दुष्टों की संगत में पड़ोगे तो मरोगे। फिर बड़ी कीचड़ में फँसे हुए हाथी को गीदड़ों ने खा लिया।

उत्तर दिशा में अर्बुदशिखर नामक पर्वत पर दुदार्ंत नामक एक बड़ा पराक्रमी सिंह रहता था। उस पर्वत की कंदरा में सोते हुए सिंह की लटाके बालों को एक चूहा नित्य काट जाया करता था, तब लटाओं के छोर को कटा देख कर क्रोध से बिल के भीतर घुसे हुए चूहे को नहीं पा कर सिंह सोचने लगा-

क्षुद्रशत्रुर्भवेद्यस्तु विक्रमान्नैव लभ्यते। तमाहन्तु पुरस्कार्यः सदृशस्तस्य सैनिकः॥ अर्थात, जो छोटा शत्रु हो और पराक्रम से भी न मिले तो उसको मारने के लिए उसके चाल और बल के समान घातक उसके आगे कर देना चाहिए। यह सोचकर उसने गाँव में जा कर भरोसा दे कर दधिकर्ण नामक बिलाव को यत्न से ला कर माँस का आहार दे कर अपनी गुफा में रख लिया। बाद में उसके भय से चूहा भी बिल से नहीं निकलने लगा-जिससे यह सिंह बालों के नहीं कटने के कारण सुख से सोने लगा। जब चूहे का शब्द सुनता था तब-तब माँस के आहार से उस बिलाव को तृप्त करता था। फिर एक दिन भूख के मारे बाहर घूमते हुए उस चूहे को बिलाव ने पकड़ लिया और मार डाला। बाद में उस सिंह ने बहुत समय तक जब चूहे को नहीं देखा और उसका शब्द भी न सुना, तब उसके उपयोगी न होने से बिलाव के भोजन देने में भी कम आदर करने लगा। फिर दधिकर्ण आहारबिहार से दुर्बल हो कर मर गया।

मंदर नामक पर्वत पर दुदार्ंत नामक एक सिंह रहता था और वह सदा पशुओं का वध करता रहता था। तब सब पशुओं ने मिल कर उस सिंह से विनती की, सिंह एक साथ बहुत से पशुओं की क्यों हत्या करते हो? जो प्रसन्न हो तो हम ही तुम्हारे भोजन के लिए नित्य एक पशु को भेज दिया करेंगे। फिर सिंह ने कहा-जो यह तुमको इष्ट है तो यों ही सही। उस दिन से निश्चित किये हुए एक पशु को खाया करता था। फिर एक दिन एक बूढ़े शशक (खरगोश) की बारी आई.

त्रासहेतोर्विनीतिस्तु क्रियते जीविताशया। पंच्त्वं चेद्गमिष्यामि किं सिंहानुनयेन में?

वह सोचने लगा—जीने की आशा से भय के कारण की अर्थात मारने वाले की विनय की जाती है और वह मरना ही ठहरा, फिर मुझे सिंह की विनती से क्या काम है? इसलिए धीरे-धीरे चलता हूँ, पीछे सिंह भी भूख के मारे झुंझला कर उससे बोला—तू किसलिए देर करके आया है? शशक बोला—महाराज, मैं अपराधी नहीं हूँ, मार्ग में आते हुए मुझको दूसरे सिंह ने बल से पकड़ लिया था। उसके सामने फिर लौट आने की सौगंध खा कर स्वामी को जताने के लिए यहाँ आया हूँ। सिंह क्रोधयुक्त हो कर बोला—शीघ्र चल कर दुष्ट को दिखला कि वह दुष्ट कहाँ बैठा है। फिर शशक उसे साथ ले कर एक गहरा कुँआ दिखलाने को ले गया। वहाँ पहुँच कर, स्वामी, आप ही देख लीजिए, यह कह कर उस कुँए के जल में उसी सिंह की परछाई दिखला दी। फिर सिंह क्रोध से दहाड़ कर घमंड से उसके ऊपर अपने को गिरा कर मर गया।

किसी वृक्ष पर काग और कागली रहा करते थे, उनके बच्चे उसके खोड़र में रहने वाला काला सांप खाता था। कागली पुनः गर्भवती हुई और काग से कहने लगी- "" हे स्वामी, इस पेड़ को छोड़ो, इसमें रहने वाला काला साँप हमारे बच्चे सदा खा जाता है।

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः। ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥ अर्थात दुष्ट स्त्री, धूर्त मित्र, उत्तर देने वाला सेवक, सर्प वाले घर में रहना, मानो साक्षात् मृत्यु ही है, इसमें संदेह नहीं है। काग बोला-प्यारी, डरना नहीं चाहिए, बार-बार मैंने इसका अपराध सहा है, अब फिर क्षमा नहीं करूँगा। कागली बोली-किसी प्रकार ऐसे बलवान के साथ तुम लड़ सकते हो? काग बोला-यह शंका मत करो।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुध्देस्तु कुतो बलम्? पश्य सिंहो मदोन्मत्त: शशकेन निपातितः। अर्थात जिसको बुद्धि है उसको बल है और जो निर्बुद्धि है उसका बल कहाँ से आवे? देख मद से उन्मत्त सिंह को शशक ने मार डाला। कागली बोली-जो करना है करो। काग बाला-यहाँ पास ही सरोवर में राजपुत्र नित्य आ कर स्नान करता है। स्नान के समय उसके अंग से उतार कर घाट पर रखे हुए सोने के हार को चोंच में पकड़ कर इस बिल्ले में ला कर धर दीजिये। पीछे एक दिन राजपुत्र के नहाने के लिए जल में उतरने पर कागली ने वही किया। फिर सोने के हार के पीछे ढूंढ़ते हुए खोखल में राजा के सिपाही ने उस वृक्ष के बिल में काले साँप को देखा और मार डाला।

१. पक्षी और बंदरों की कहानी नर्मदा के तीर पर एक बड़ा सेमर का वृक्ष है। उस पर पक्षी घोंसला बनाकर उसके भीतर, सुख से रहा करते थे। फिर एक दिन बरसात में नीले-नीले बादलों से आकाशमंडल के छा जाने पर बड़ी-बड़ी बूँदों से मूसलाधार बारिश बरसने लगा और फिर वृक्ष के नीचे बैठे हुए बंदरों को ठंडी के मारे थर-थर काँपते हुए देख कर पक्षियों ने दया से विचार कहा—अरे भाई बंदरों, सुनों:-

अस्माभिर्निमिता नीडाश्चंचुमात्राहृतैस्तृणै:। हस्तपादादिसंयुक्ता यूयं किमिति सीदथ?

हमने केवल अपनी चोंचों की मदद से इकट्ठा किये हुए तिनकों से घोंसले बनाये हैं और तुम तो हाथ, पाँव आदि से युक्त हो कर भी ऐसा दुःख क्यों भोग रहे हो? यह सुन कर बंदरों ने झुँझला कर विचारा-अरे, पवनरहित घोंसलों के भीतर बैठे हुए सुखी पक्षी हमारी निंदा करते हैं, करने दो। जब तक वर्षा बंद हो बाद जब पानी का बरसना बंद हो गया, तब उन बंदरों ने पेड़ पर चढ़ कर सब घोंसले तोड़ डाले और उनके अंडे नीचे गिरा दिया।

2. हाथियों का झुंड और बूढ़े शशक की कहानी किसी समय वर्षा के मौसम में वर्षा न होने से प्यास के मारे हाथियों का झुंड अपने स्वामी से कहने लगा—हे स्वामी, हमारे जीने के लिए अब कौन—सा उपाय है? छोटे-छोटे जंतुओं को नहाने के लिए भी स्थान नहीं है और हम तो स्नान के लिए स्थान न होने से मरने के समान है। क्या करें? कहाँ जाएँ? हाथियों के राजा ने समीप ही जो एक निर्मल सरोवर था, वहाँ जा कर दिखा दिया। फिर कुछ दिन बाद उस सरोवर के तीर पर रहने वाले छोटे-छोटे शशक हाथियों के पैरों की रेलपेल में खुँद गये। बाद में शिलीमुख नामक शशक सोचने लगा—प्यास के मारे यह हाथियों का झुंड, यहाँ नित्य आएगा। इसलिए हमारा कुल तो नष्ट हो जाएगा। फिर विजय नामक एक बूढ़े शशक ने कहा—खेद मत करो। मैं इसका उपाय करूँगा। फिर वह प्रतिज्ञा करके चला गया और चलते-चलते इसने सोचा—कैसे हाथियों के झुंड के पास खड़े हो कर बातचीत करनी चाहिए.

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नयि भुजंगमः। पालयन्नपि भूपालः प्रहसन्नपि दुर्जनः॥ अर्थात हाथी स्पर्श से ही, साँप सूँघने से ही, राजा रक्षा करता हुआ भी और दुर्जन हँसता हुआ भी मार डालता है। इसलिए मैं पहाड़ की चोटी पर बैठ कर झुंड के स्वामी से अच्छी प्रकार से बोलूँ। ऐसा करने पर झुंड का स्वामी बोला-तू कौन है? कहाँ से आया है? वह बोला-मैं शशक हूँ। भगवान चंद्रमा ने आपके पास भेजा है। झुंड के स्वामी ने कहा-क्या काम है बोल? विजय बोला:-

उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो वदति नान्यथा। सदैवांवध्यभावेन यथार्थस्य हि वाचकः। अर्थात, मारने के लिए शस्त्र उठाने पर भी दूत अनुचित नहीं करता है, क्योंकि सब काल में नहीं मारे जाने से (मृत्यु की भीति न होने से) वह निश्चय करके सच्ची ही बात बोलने वाला होता है। इसलिए मैं उनकी आज्ञा से कहता हूँ, सुनिये-जो ये चंद्रमा के सरोवर के रखवाले शशकों को निकाल दिया है, वह अनुचित किया। वे शशक हमारे बहुत दिन से रक्षित हैं, इसलिये मेरा नाम "" शशांक" प्रसिद्ध है। दूत के ऐसा कहते ही हाथियों का स्वामी भय से यह बोला-सोच लो, यह बात अनजानपन की है। फिर नहीं करुँगा। दूत ने कहा—जो ऐसा है तो उसे सरोवर में क्रोध से काँपते हुए भगवान चंद्रमाजी को प्रणाम कर और प्रसन्न करके चला जा। फिर रात को झुंड के स्वामी को ले जा कर ओर जल में हिलते हुए चंद्रमा के गोले को दिखला कर झुंड के स्वामी से प्रणाम कराया और इसने कहा-हे महाराज, भूल से इसने अपराध किया है, इसलिए क्षमा कीजिये, फिर दूसरी बार नहीं करेगा। यह कह कर विदा लिया।

3 .मानसरोवर, आज जो चीन में स्थित है, कभी ठमानस-सरोवर' के नाम से विश्वविख्यात था और उसमें रहने वाले हंस तो नीले आकाश में सफेद बादलों की छटा से भी अधिक मनोरम थे। उनके कलरव सुन्दर नर्तकियों की नुपुर ध्वनियों से भी अधिक सुमधुर थे। उन्हीं सफेद हंसों के बीच दो स्वर्ण हंस भी रहते थे। दोनों हंस बिल्कुल एक जैसे दिखते थे और दोनों का आकार भी अन्य हंसों की तुलना में थोड़ा बड़ा था। दोनों समान रूप से गुणवान और शीलवान भी थे। फर्क था तो बस इतना कि उनमें एक राजा था और दूसरा उसका वफादार सेनापति। राजा का नाम धृतराष्ट्र था और सेनापति का नाम सुमुख। दोनों हंसों की चर्चा देवों, नागों, यक्षों और विद्याधर ललनाओं के बीच अक्सर हुआ करती थी। कालान्तर में मनुष्य योनि के लोगों को भी उनके गुण-सौन्दर्य का ज्ञान होने लगा। वाराणसी नरेश ने जब उनके विषय में सुना तो उस के मन में उन हंसों को पाने की प्रबल इच्छा जागृत हुई. तत्काल उसने अपने राज्य में मानस-सदृश एक मनोरम-सरोवर का निर्माण करवाया, जिसमें हर प्रकार के आकर्षक जलीय पौधे और विभिन्न प्रकार के कमल जैसे पद्म, उत्पल, कुमुद, पुण्डरीक, सौगन्धिक, तमरस और कहलर विकसित करवाये। मत्स्य और जलीय पक्षियों की सुंदर प्रजातियाँ भी वहाँ बसायी गयीं। साथ ही राजा ने वहाँ बसने वाले सभी पक्षियों की पूर्ण सुरक्षा की भी घोषणा करवायी, जिससे दूर-दूर से आने वाले पंछी स्वच्छंद भाव से वहाँ विचरण करने लगे।

एक बार, वर्षा काल के बाद जब हेमन्त ऋतु प्रारम्भ हुआ और आसमान का रंग बिल्कुल नीला होने लगा तब मानस के दो हंस वाराणसी के ऊपर से उड़ते हुए जा रहे थे। तभी उनकी दृष्टि राजा द्वारा निर्मित सरोवर पर पड़ी। सरोवर की सुन्दरता और उसमें तैरते रमणीक पक्षियों की स्वच्छंदता उन्हें सहज ही आकर्षित कर गयी। तत्काल वे नीचे उतर आये और महीनों तक वहाँ की सुरक्षा, सुंदरता और स्वच्छंदता का आनंद लेते रहे। अन्ततोगत्वा वर्षा ऋतु के प्रारंभ होने से पूर्व वे फिर मानस को प्रस्थान कर गये। मानस पहुँच कर उन्होंने अपने साथियों के बीच वाराणसी के कृत्रिम सरोवर की इतनी प्रशंसा की कि सारे के सारे हंस वर्षा के बाद वाराणसी जाने को तत्पर हो उठे।

हंसों के राजा युधिष्ठिर और उसके सेनापति सुमुख ने अन्य हंसों की इस योजना को समुचित नहीं माना। युधिष्ठिर ने उनके प्रस्ताव का अनुमोदन न करते हुए, यह कहा कि पंछी और जानवरों की एक प्रवृत्ति होती है। वे अपनी संवेदनाओं को अपनी चीखों से प्रकट करते हैं। किन्तु जन्तु जो कहलाता है "मानव" बड़ी चतुराई से करता है अपनी भंगिमाओं को प्रस्तुत जो होता है उनके भावों के ठीक विपरीत। फिर भी कुछ दिनों के बाद हंस-राज को हंसों की ज़िद के आगे झुकना पड़ा और वह वर्षा ऋतु के बाद मानस के समस्त हंसों के साथ वाराणसी को प्रस्थान कर गया। जब मानस के हंसों का आगमन वाराणसी के सरोवर में हुआ और राजा को इसकी सूचना मिली तो उसने अपने एक निषाद को उन दो विशिष्ट हंसों को पकड़ने के लिए नियुक्त किया। एक दिन युधिष्ठिर जब सरोवर की तट पर स्वच्छंद भ्रमण कर रहा था तभी उसके पैर निषाद द्वारा बिछाये गये जाल पर पड़े। अपने पकड़े जाने की चिंता छोड़ उसने अपनी तीव्र चीखों से अपने साथी-हंसों को तत्काल वहाँ से प्रस्थान करने को कहा जिससे मानस के सारे हंस

वहाँ से क्षण मात्र में अंतर्धान हो गये। रह गया तो केवल उसका एकमात्र वफादार हमशक्ल सेनापति-सुमुख। हंसराज ने अपने सेनापति को भी उड़ जाने की आज्ञा दी मगर वह दृढ़ता के साथ अपने राजा के पास ही जीना मरना उचित समझा। निषाद जब उन हंसों के करीब पहुँचा तो वह आश्चर्यचकित रह गया क्योंकि पकड़ा तो उसने एक ही हंस था फिर भी दूसरा उसके सामने निर्भीक खड़ा था। निषाद ने जब दूसरे हंस से इसका कारण पूछा तो वह और भी चकित हो गया, क्योंकि दूसरे हंस ने उसे यह बताया कि उसके जीवन से बढ़कर उसकी वफादारी और स्वामि-भक्ति है। एक पक्षी के मुख से ऐसी बात सुनकर निषाद का हृदय परिवर्तन हो गया। वह एक मानव था; किन्तु मानव-धर्म के लिए वफादार नहीं था। उसने हिंसा का मार्ग अपनाया था और प्राणातिपात से अपना जीवन निर्वाह करता था। शीघ्र ही उस निषाद ने अपनी जागृत मानवता के प्रभाव में आकर दोनों ही हंसों को मुक्त कर दिया। दोनों हंस कोई साधारण हंस तो थे नहीं। उन्होंने अपनी दूरदृष्टि से यह जान लिया था कि वह निषाद निस्सन्देह राजा के कोप का भागी बनेगा। अगर निषाद ने उनकी जान बख़शी थी तो उन्हें भी निषाद की जान बचानी थी। अत: तत्काल वे निषाद के कंधे पर सवार हो गये और उसे राजा के पास चलने को कहा। निषाद के कंधों पर सवार जब वे दोनों हंस राज-दरबार पहुँचे तो समस्त दरबारीगण चकित हो गये। जिन हंसों को पकड़ने के लिए राजा ने इतना प्रयत्न किया था वे स्वयं ही उसके पास आ गये थे। विस्मित राजा ने जब उनकी कहानी सुनी तो उसने तत्काल ही निषाद को राज-दण्ड से मुक्त कर पुरस्कृत किया। उसने फिर उन ज्ञानी हंसों को आतिथ्य प्रदान किया तथा उनकी देशनाओं को राजदरबार में सादर सुनता रहा।

इस प्रकार कुछ दिनों तक राजा का आतिथ्य स्वीकार कर दोनों ही हंस पुन: मानस को वापिस लौट गये।

4. हिमालय के घने वनों में कभी सफेद हाथियों की दो विशिष्ट प्रजातियाँ हुआ करती थीं-छद्दन्त और उपोसथ। छद्दन्त हाथियों का रंग सफेद हुआ करता था और उनके छ: दाँत होते थे। (ऐसा पालि साहित्य में उल्लिखित है।) छद्दन्त हाथियों का राजा एक कंचन गुफा में निवास करता था। उसके मस्तक और पैर माणिक के समान लाल और चमकीले थे। उसकी दो रानियाँ थी-महासुभद्दा और चुल्लसुभद्दा। एक दिन गजराज और उसकी रानियाँ अपने दास-दासियों के साथ एक सरोवर में जल-क्रीड़ा कर रहे थे। सरोवर के तट पर फूलों से लदा एक साल-वृक्ष भी था। गजराज ने खेल-खेल में ही साल वृक्ष की एक शाखा को अपनी सूंड से हिला डाला। संयोगवश वृक्ष के फूल और पराग महासुभद्दा को आच्छादित कर गये। किन्तु वृक्ष की सूखी टहनियाँ और फूल चुल्लसुभद्दा के ऊपर गिरे। चुल्लसुभद्दा ने इस घटना को संयोग न मान, स्वयं को अपमानित माना। नाराज चुल्लसुभद्दा ने उसी समय अपने पति और उनके निवास का त्याग कर कहीं चली गई. तत: छद्दन्तराज के अथक प्रयास के बावजूद वह कहीं ढूंढे नहीं मिली। कालान्तर में चुल्लसुभद्दा मर कर मद्द राज्य की राजकुमारी बनी और विवाहोपरान्त वाराणसी की पटरानी। किन्तु छद्दन्तराज के प्रति उसका विषाद और रोष इतना प्रबल था कि पुनर्जन्म के बाद भी वह प्रतिशोध की आग में जलती रही। अनुकूल अवसर पर उसने राजा से छद्दन्तराज के दन्त प्राप्त करने को उकसाया। फलत: राजा ने उक्त उद्देश्य से कुशल निषादों की एक टोली बनवाई जिसका नेता सोनुत्तर को बनाया। सात वर्ष, सात महीने और सात दिनों के पश्चात् सोनुत्तर छद्दन्तराज के निवास-स्थान पर पहुँचा। उसने वहाँ एक गड्ढा खोदा और उसे लकड़ी और पत्तों से ढँक दिया। फिर वह चुपचाप पेड़ों की झुरमुट में छिप गया। छद्दन्तराज जब उस गड्ढे के करीब आया तो सोनुत्तर ने उस पर विष-बुझा बाण चलाया। बाण से घायल छद्दन्त ने जब झुरमुट में छिपे सोनुत्तर को हाथ में धनुष लिये देखा तो वह उसे मारने के लिए दौड़ा। किन्तु सोनुत्तर ने संन्यासियों का गेरुआ वस्त्र पहना हुआ था जिस के कारण गजराज ने निषाद को जीवन-दान दिया। अपने प्राणों की भीख पाकर सोनुत्तर का हृदय-परिवर्तन हुआ। भाव-विह्मवल सोनुत्तर ने छद्दन्त को सारी बातें बताई कि क्यों वह उसके दांतों को प्राप्त करने के उद्देश्य से वहाँ आया था। चूँकि छद्दुंत के मजबूत दांत सोनुत्तर नहीं काट सकता था इसलिए छद्दुंत ने मृत्यु-पूर्व स्वयं ही अपनी सूँड से अपने दांत काट

कर सोनुत्तर को दे दिये। वाराणसी लौट कर सोनुत्तर ने जब छद्दन्त के दाँत रानी को दिखलाये तो रानी छद्दन्त की मृत्यु के आघात को संभाल न सकी और तत्काल मर गयी।

5. हिमालय के फूल अपनी विशिष्टताओं के लिए सर्वविदित हैं। दुर्भाग्यवश उनकी अनेक प्रजातियाँ विलुप्त होती जा रही हैं। कुछ तो केवल किस्से-कहानियों तक ही सिमट कर रह गयी हैं। यह कहानी उस समय की है, जब हिमालय का एक अनूठा पेड़ अपने फलीय वैशिष्ट्य के साथ एक निर्जन पहाड़ी नदी के तीर पर स्थित था। उसके फूल थाईलैंड के कुरियन से भी बड़े, चेरी से भी अधिक रसीले और आम से भी अधिक मीठे होते थे। उनकी आकृति और सुगंध भी मन को मोह लेने वाली थी। उस पेड़ पर वानरों का एक झुण्ड रहता था, जो बड़ी ही स्वच्छंदता के साथ उन फूलों का रसास्वादन व उपभोग करता था। उन वानरों का एक राजा भी था जो अन्य बन्दरों की तुलना कई गुणा ज़्यादा बड़ा, बलवान्, गुणवान्, प्रज्ञावान् और शीलवान् था, इसलिए वह महाकपि के नाम से जाना जाता था। अपनी दूर-दृष्टि उसने समस्त वानरों को सचेत कर रखा था कि उस वृक्ष का कोई भी फल उन टहनियों पर न छोड़ा जाए जिनके नीचे नदी बहती हो। उसके अनुगामी वानरों ने भी उसकी बातों को पूरा महत्तव दिया क्योंकि अगर कोई फल नदी में गिर कर और बहकर मनुष्य को प्राप्त होता तो उसका परिणाम वानरों के लिए अत्यंत भयंकर होता। एक दिन दुर्भाग्यवश उस पेड़ का एक फल पत्तों के बीचों-बीच पक कर टहनी से टूट, बहती हुई उस नदी की धारा में प्रवाहित हो गया। उन्हीं दिनों उस देश का राजा अपनी औरतों दास-दासीयों तथा के साथ उसी नदी की तीर पर विहार कर रहा था। वह प्रवाहित फल आकर वहीं रुक गया। उस फल की सुगन्ध से राजा की औरतें सम्मोहित होकर आँखें बंद कर आनन्दमग्न हो गयीं। राजा भी उस सुगन्ध से आनन्दित हो उठा। शीघ्र ही उसने अपने आदमी उस सुगन्ध के स्रोत के पीछे दौड़ाये। राजा के आदमी तत्काल उस फल को नदी के तीर पर प्राप्त कर पल भर में राजा के सम्मुख ले आए. फल का परीक्षण कराया गया तो पता चला कि वह एक विषहीन फल था। राजा ने जब उस फल का रसास्वादन किया तो उसके हृदय में वैसे फलों तथा उसके वृक्ष को प्राप्त करने की तीव्र लालसा जगी। क्षण भर में सिपाहियों ने वैसे फलों पेड़ को भी ढूँढ लिया। किन्तु वानरों की उपस्थिति उन्हें वहाँ रास नहीं आयी। तत्काल उन्होंने तीरों से वानरों को मारना प्रारम्भ कर दिया। वीर्यवान् महाकपि ने तब अपने साथियों को बचाने के लिए कूदते हुए उस पेड़ के निकट की एक पहाड़ी पर स्थित एक बेंत की लकड़ी को अपने पैरों से फँसा कर, फिर से उसी पेड़ की टहनी को अपने दोनों हाथों से पकड़ कर लेट अपने साथियों के लिए एक पुल का निर्माण कर लिया। फिर उसने चिल्ला कर अपने साथियों को अपने ऊपर चढ़कर बेतों वाली पहाड़ी पर कूद कर भाग जाने की आज्ञा दी। इस प्रकार महाकपि के बुद्धि कौशल से सारे वानर दूसरी तरफ की पहाड़ी पर कूद कर भाग गये।

राजा ने महाकपि के त्याग को बड़े गौर से देखा और सराहा। उसने अपने आदमियों को महाकपि को जिन्दा पकड़ लाने की आज्ञा दी। उस समय महाकपि की हालत अत्यन्त गंभीर थी। साथी वानरों द्वारा कुचल जाने के कारण उसका सारा शरीर विदीर्ण हो उठा था। राजा ने उसके उपचार की सारी व्यवस्थता भी करवायी, मगर महाकपि की आँखें हमेशा के लिए बंद हो चुकी थीं।

6. हजारों साल पहले मगध जनपद के एक निकटवर्ती वन में हजार हिरणों का एक समूह रहता था जिसके राजा के दो पुत्र थे-लक्खण और काल। जब मृगराज वृद्ध होने लगा तो उसने अपने दोनों पुत्रों को उत्तराधिकारी घोषित किया और प्रत्येक के संरक्षण में पाँच-पाँच सौ मृग प्रदान किए ताकि वे सुरक्षित आहार-विहार का आनंद प्राप्त कर सकें।

उन्हीं दिनों फसल काटने का समय भी निकट था तथा मगधवासी अपने लहलहाते खेतों को आवारा पशुओं से सुरक्षित रखने के लिए अनेक प्रकार के उपक्रम और खाइयों का निर्माण कर रहे थे। मृगों की सुरक्षा के लिए वृद्ध पिता ने अपने दोनों पुत्रों को अपने मृग-समूहों को लेकर किसी सुदूर और सुरक्षित पहाड़ी पर जाने का निर्देश दिया। काला एक स्वेच्छाचारी मृग था। वह तत्काल अपने मृगों को लेकर पहाड़ी की ओर प्रस्थान कर गया। उसने इस बात

की तनिक भी परवाह नहीं की कि लोग सूरज की रोशनी में उनका शिकार भी कर सकते थे। फलत: रास्ते में ही उसके कई साथी मारे गये।

लक्खण एक बुद्धिमान और प्रबुद्ध मृग था। उसे यह ज्ञान था कि मगधवासी दिन के उजाले में उनका शिकार भी कर सकते थे। अत: उसने पिता द्वारा निर्दिष्ट पहाड़ी के लिए रात के अंधेरे में प्रस्थान किया। उसकी इस बुद्धिमानी से उसके सभी साथी सुरक्षित पहाड़ी पर पहुँच गए. चार महीनों के बाद जब लोगों ने फसल काट ली तो दोनों ही मृग-बन्धु अपने-अपने अनुचरों के साथ अपने निवास-स्थान को लौट आये। जब वृद्ध पिता ने लक्खण के सारे साथियों को जीवित और काला के अनेक साथियों के मारे जाने का कारण जाना तो उसने खुले दिल से लक्खण की बुद्धिमत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

7. हिमवंत के वन में कभी एक जंगली भैंसा रहता था। कीचड़ से सना, काला और बदबूदार। किंतु वह एक शीलवान भैंसा था। उसी वन में एक नटखट बंदर भी रहा करता था। शरारत करने में उसे बहुत आनंद आता था। मगर उससे भी अधिक आनंद उसे दूसरों को चिढ़ाने और परेशान करने में आता था। अत: स्वभावत: वह भैंसा को भी परेशान करता रहता था। कभी वह सोते में उसके ऊपर कूद पड़ता; कभी उसे घास चरने से रोकता तो कभी उसके सींगों को पकड़ कर कूदता हुआ नीचे उतर जाता तो कभी उसके ऊपर यमराज की तरह एक छड़ी लेकर सवारी कर लेता। भारतीय मिथक परम्पराओं में यमराज की सवारी भैंसा बतलाई जाती है। उसी वन के एक वृक्ष पर एक यक्ष रहता था। उसे बंदन की छेड़खानी बिल्कुल पसन्द न थी। उसने कई बार बंदर को दंडित करने के लिए भैंसा को प्रेरित किया क्योंकि वह बलवान और बलिष्ठ भी था। किंतु भैंसा ऐसा मानता था कि किसी भी प्राणी को चोट पहुँचाना शीलत्व नहीं है; और दूसरों को चोट पहुँचाना सच्चे सुख का अवरोधक भी है। वह यह भी मानता था कि कोई भी प्राणी अपने कर्मों से मुक्त नहीं हो सकता। कर्मों का फल तो सदा मिलता ही है। अत: बंदर भी अपने बुरे कर्मों का फल एक दिन अवश्य पाएगा और एक दिन ऐसा ही हुआ जबकि वह भैंसा घास चरता हुआ दूर किसी दूसरे वन में चला गया। संयोगवश उसी दिन एक दूसरा भैंसा पहले भैंसा के स्थान पर आकर चरने लगा। तभी उछलता कूदता बंदर भी उधर आ पहुँचा। बंदर ने आव देखी न ताव। पूर्ववत् वह दूसरे भैंसा के ऊपर चढ़ने की वैसी ही धृष्टता कर बैठा। किंतु दूसरे भैंसा ने बंदर की शरारत को सहन नहीं किया और उसी तत्काल जमीन पर पटक कर उसकी छाती में सींग घुसेड़ दिये और पैरों से उसे रौंद डाला। क्षण मात्र में ही बंदर के प्राण पखेरु उड़ गये।

8. कभी हिमालय के घने वनों में एक हाथी रहता था। उसका शरीर चांदी की तरह चमकीला और सफेद था। उसकी आँखें हीरे की तरह चमकदार थीं। उसकी सूंड सुहागा लगे सोने के समान कांतिमय थी। उसके चारों पैर तो मानो लाख के बने हुए थे। वह अस्सी हज़ार गजों का राजा भी था। वन में विचरण करते हुए एक दिन सीलवा ने एक व्यक्ति को विलाप करते हुए देखा। उसकी भंगिमाओं से यह स्पष्ट था कि वह उस निर्जन वन में अपना मार्ग भूल बैठा था। सीलवा को उस व्यक्ति की दशा पर दया आयी। वह उसकी सहायता के लिए आगे बढ़ा। मगर व्यक्ति ने समझा कि हाथी उसे मारने आ रहा था। अत: वह दौड़कर भागने लगा। उसके भय को दूर करने के उद्देश्य से सीलवा बड़ी शालीनता से अपने स्थान पर खड़ा हो गया, जिससे भागता आदमी भी थम गया। सीलवा ने ज्योंही पैर फिर आगे बढ़ाया वह आदमी फिर भाग खड़ा हुआ और जैसे ही सीलवा ने अपने पैर रोके वह आदमी भी रुक गया तीन बार जब सीलवा ने अपने उपक्रम को वैसे ही दो हराया तो भागते आदमी का भय भी भाग गया। वह समझ गया कि सीलवा कोई खतरनाक हाथी नहीं था। तब वह आदमी निर्भीक हो कर अपने स्थान पर स्थिर हो गया। सीलवा ने तब उसके पास पहुँचा कर उसकी सहायता का प्रस्ताव रखा। आदमी ने तत्काल उसके प्रस्ताव को स्वीकार किया। सीलवा ने उसे तब अपनी सूँड के उठाकर पीठ पर बिठा लिया और अपने निवास-स्थान पर ले जाकर नाना

प्रकार के फलों से उसकी आवभगत की। अंतत: जब उस आदमी की भूख-प्यास का निवारण हो गया तो सीलवा ने उसे पुन: अपनी पीठ पर बिठा कर उस निर्जन वन के बाहर उसकी बस्ती के करीब लाकर छोड़ दिया। वह आदमी लोभी और कृतघ्न था। तत्काल ही वह एक शहर के बाज़ार में एक बड़े व्यापारी से हाथी दाँत का सौदा कर आया। कुछ ही दिनों में वह आरी आदि औजार और रास्ते के लिए समुचित भोजन का प्रबन्ध कर सीलवा के निवास स्थान को प्रस्थान कर गया। जब वह व्यक्ति से सीलवा के सामने पहँचा तो सीलवा ने उससे उसके पुनरागमन का उद्देश्य पूछा। उस व्यक्ति ने तब अपनी निर्धनता दूर करने के लिए उसके दाँतों की याचना की। उन दिनों सीलवा दान-पारमी होने की साधना कर रहा था। अत: उसने उस आदमी की याचना को सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा उसकी सहायता के लिए घुटनों पर बैठ गया ताकि वह उसके दाँत काट सके. उस व्यक्ति ने शहर लौटकर सीलवा के दांतों को बेचा और उनकी भरपूर कीमत भी पायी। मगर प्राप्त धन से उसकी तृष्णा और भी बलवती हो गयी। वह महीने भर में फिर सीलवा के पास पहुँच कर उसके शेष दांतों की याँचना कर बैठा। सीलवा ने उस पुन: अनुगृहीत किया। कुछ ही दिनों के बाद वह लोभी फिर से सीलवा के पास पहुँचा और उसके शेष दांतों को भी निकाल कर ले जाने की इच्छा जताई. दान-परायण सीलवा ने उस व्यक्ति की इस याचना को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। फिर क्या था? क्षण भर में वह आदमी सीलवा के मसूढ़ों को काट-छेद कर उसके सारे दांत-समूल निकाल कर और अपने गन्तव्य को तत्काल प्रस्थान कर गया। खून से लथपथ दर्द से व्याकुल कराहता सीलवा फिर जीवित न रह सका और कुछ समयोपरान्त दम तोड़ गया। लौटता लोभी जब वन की सीमा भी नहीं पार कर पाया था तभी घरती अचानक फट गयी और वह आदमी काल के गाल में समा गया। तभी वहाँ वास करती हुई एक वृक्ष यक्षिणी ने यह गान गाया। मांगती है तृष्णा और॥। और—! मिटा नहीं सकता जिसकी भूख को सारा संसार।

9. समुद्र के किनारे खड़े एक पेंगुइन ने जब ऊँचे आसमान में उड़ते बाज को देखा तो सोचने लगा-"बाज भी क्या पक्षी है...कितने शान से खुले आकाश में घूमता है...और एक मैं हूँ जो चाहे जितना भी पंख फड़-फड़ा लूँ ज़मीन से एक इंच ऊपर भी नहीं उठ पाता..." और ऐसा सोच कर वह कुछ उदास हो गया। ठीक इसी पल बाज ने भी पेंगुइन को नीचे समुद्र में तैरते हुए देखा...और सोचने लगा, "ये पेंगुइन भी क्या कमाल का पक्षी है... जो धरती की सैर भी करता है और समुद्र की गहराइयों में गोता भी लगाता है... और यहाँ मैं...बस यूँही इधर-उधर उड़ता फिरता हूँ!" जानते हैं इसके बाद क्या हुआ? कुछ नहीं... बाज आकाश की ऊँचाइयों में खो गया और पेंगुइन समद्र की गहराइयों में... दोनों अपनी मन में आये नेगेटिव थॉट्स को भूल गए और बिना समय गँवाए भगवान की दी हुई उस ताकत को... उस शक्ति को प्रयोग करने लगे जिसके साथ वह पैदा हुए थे। सोचिये अगर वह बाज और पेंगुइन बाज और पेंगुइन न होकर इंसान होते तो क्या होता? बाज यही सोच-सोच कर परेशान होता कि वह पानी के अन्दर तैर नहीं सकता और पेंगुइन दिन-रात बस यही सोचता कि काश वह आकाश में उड़ पाता... और इस चक्कर में वे दोनों ही अपनी-अपनी existing strengths या skills सही ढंग से use नहीं कर पाते। काश हम इंसान भी इन पक्षियों से सीख पाते कि ईश्वर ने हर किसी के अन्दर अलग-अलग गुण दिए हैं... हर किसी ने अलग-अलग क्षमताओं के साथ जन्म लिया है और हर इंसान किसी दुसरे इंसान से किसी ना किसी रूप में बेहतर है। लेकिन दुर्भाग्यवश बहुत से लोगों का ध्यान अपनी प्रतिस्पर्धियों की बजाय दूसरों की उपलब्धियों पर ही लगा रहता है, जिसे देखकर वे जलते हैं और अपनी शक्ति का ग़लत जगह लगाते हैं।

10. हज़ारों साल पहले किसी वन में एक बुद्धिमान बंदर रहता था। वह हज़ार बंदरों का राजा भी था।

एक दिन वह और उसके साथी वन में कूदते-फाँदते ऐसी जगह पर पहुँचे जिसके निकट क्षेत्र में कहीं भी पानी नहीं था। नयी जगह और नये परिवेश में प्यास से व्याकुल नन्हे वानरों के बच्चे और उनकी माताओं को तड़पते देख उसने अपने अनुचरों को तत्काल ही पानी के किसी स्रोत को ढूंढने की आज्ञा दी।

कुछ ही समय के बाद उन लोगों ने एक जलाशय ढूंढ निकाला। प्यासे बंदरों की जलाशय में कूद कर अपनी प्यास बुझाने की आतुरता को देख कर वानरराज ने उन्हें रुकने की चेतावनी दी, क्योंकि वे उस नये स्थान से अनभिज्ञ था। अत: उसने अपने अनुचरों के साथ जलाशय और उसके तटों का सूक्ष्म निरीक्षण व परीक्षण किया। कुछ ही समय बाद उसने कुछ ऐसे पदचिह्नों को देखा जो जलाशय को उन्मुख तो थे मगर जलाशय से बाहर को नहीं लौटे थे। बुद्धिमान् वानर ने तत्काल ही यह निष्कर्ष निकाला कि उस जलाशय में निश्चय ही किसी खतरनाक दैत्य जैसे प्राणी का वास था। जलाशय में दैत्य-वास की सूचना पाकर सारे ही बंदर हताश हो गये। तब बुद्धिमान वानर ने उनकी हिम्मत बंधाते हुए यह कहा कि वे दैत्य के जलाशय से फिर भी अपनी प्यास बुझा सकते हैं क्योंकि जलाशय के चारों ओर बेंत के जंगल थे जिन्हें तोड़कर वे उनकी नली से सुड़क-सुड़क कर पानी पी सकते थे। सारे बंदरों ने ऐसा ही किया और अपनी प्यास बुझा ली।

11. श्रावस्ती के निकट जेतवन में कभी एक जलाशय हुआ करता था। उसमें एक विशाल मत्स्य का वास था। वह शीलवान्, दयावान् और शाकाहारी था।

उन्हीं दिनों सूखे के प्रकोप के उस जलाशय का जल सूखने लगा। फलत: वहाँ रहने वाले समस्त जीव-जन्तु त्राहि-त्राहि करने लगे। उस राज्य के फसल सूख गये। मछलियाँ और कछुए कीचड़ में दबने लगे और सहज ही अकाल-पीड़ित आदमी और पशु-पक्षियों के शिकार होने लगे।

अपने साथियों की दुर्दशा देख उस महान मत्स्य की करुणा मुखर हो उठी। उसने तत्काल ही वर्षा देव पर्जुन का आह्मवान् अपनी सच्छकिरिया' के द्वारा किया। पर्जुन से उसने कहा, "हे पर्जुन अगर मेरा व्रत और मेरे कर्म सत्य-संगत रहे हैं तो कृपया बारिश करें।" उसकी सच्छकिरिया अचूक सिद्ध हुई. वर्षा देव ने उसके आह्मवान् को स्वीकारा और सादर तत्काल भारी बारिश करवायी।

इस प्रकार उस महान और सत्यव्रती मत्स्य के प्रभाव से उस जलाशय के अनेक प्राणियों के प्राण बच गये।